मैं कौन हूं?

प्रवचन-क्रम

1. स्वयं की पहचान क्या?..2
2. स्वयं की असली पहचान..13
3. मन है एक रिक्तता..23
4. अकेला होना बड़ी तपश्चर्या है..32
5. जंजीर तोड़ने के सूत्र..43
6. श्वास का महत्व...56
7. शक्ति का तूफान...61
8. सौंदर्य के अनंत आयाम..71
9. सत्य शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकता..84 10...जीने की कला .... 96 11..मैं विज्ञान की भाषा में बोल रहा हूं 109

मैं कौन हूं?
पहला प्रवचन

स्वयं की पहचान क्या?

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक छोटी सी कहानी से मैं तीन दिनों की इन चर्चाओं को शुरू करना चाहूंगा।
एक व्यक्ति बहुत विस्मरणशील था। छोटी-छोटी बातें भी भूल जाता था। बड़ी कठिनाई थी उसके जीवन में, कुछ भी स्मरण रखना उसे कठिन था। रात वह सोने को जाता तो अपने कपड़े उतारने में भी उसे कठिनाई होती, क्योंकि सुबह उसने टोपी कहां पहन रखी थी और चश्मा कहां लगा रखा था और कोट किस भांति पहन रखा था वह भी सुबह तक भूल जाता था। तो करीब-करीब कपड़े पहन कर ही सो जाता था ताकि सुबह फिर से स्मृति को कष्ट देने की जरूरत न पड़े। पास में ही एक चर्च था और चर्च के पुरोहित ने जब उसके विस्मरण की यह बात सुनी तो बहुत हैरान हुआ। और एक रविवार की सुबह जब वह आदमी चर्च आया तो उसे कहा कि एक किताब पर लिख रखो कि कौन सा कपड़ा कहां पहन रखा था, किस भांति पहन रखा था ताकि तुम रात में कपड़े उतार सको और सुबह उस किताब के आधार पर उन्हें वापस पहन सको। उस रात उसने कपड़े उतार दिए और किसी किताब पर सब लिख लिया। सुबह उठा और सब तो ठीक था। टोपी सिर पर पहननी है यह भी लिखा था। कोट कहां पहनना है यह भी लिखा था। कौन सा मोजा किस पैर में पहनना है यह भी लिखा था, कौन सा जूता किस पैर में डालना है यह भी लिखा था। लेकिन वह यह लिखना भूल गया कि खुद कहां है और तब बहुत परेशान हुआ। सब चीजें तो ठीक थीं, और सब चीजें कहां पहननी हैं यह भी ज्ञात था लेकिन मैं कहां हूं, यह वह रात लिखना भूल गया था। वह सुबह मुंह अंधेरे ही पादरी के घर पहुंच गया। नग्न था बिल्कुल, पादरी भी देख कर घबड़ा गया और पहचान न पाया। हमारी सारी पहचान तो वस्त्रों की है। नग्न व्यक्ति को देख कर शायद हम भी न पहचान पाएं कि वह कौन है।
पादरी बहुत हैरान हुआ, उसने पूछा, आप कौन हैं और कैसे आए? उस व्यक्ति
ने कहाः यही तो पूछने मैं भी आया हूं कि मै कौन हूं और कहां हूं? क्योंकि बाकी सारे वस्त्र तो ठीक हैं लेकिन रात में यह लिखना भूल गया-अपने बाबत लिखना भूल गया। पता नहीं उस धर्म-पुरोहित ने क्या उसे कहा। उससे कोई संबंध भी नहीं। लेकिन इस कहानी से मैं इसलिए इन तीन दिनों की चर्चाओं को शुरू करना चाहता हूं, क्योंकि करीब-करीब इसी हालत में हम सारे लोग हैं। हमें ज्ञात हैं बहुत सी बातें, जीवन का सब कुछ ज्ञात है सिर्फ एक तथ्य को छोड़ कर कि हम कहां हैं और कौन हैं? मैं कौन हूं? इसका हमें कोई भी स्मरण नहीं है। और उस व्यक्ति के साथ बात तो ठीक भी थी, क्योंकि वह और सब बातें भी भूल जाता था इसलिए यह बहुत स्वाभाविक मालूम होता है कि अपने को भी भूल जाए। लेकिन हमारे साथ बड़ी मुश्किल है। हमें और सब बातें तो याद हैं, यह हमें याद नहीं कि हम कौन हैं और कहां है? इसलिए उस पर हंसना उतना उचित नहीं है जितना अपने पर हंसना उचित होगा। विस्मरण उसकी आदत थी। विस्मरण हमारी आदत नहीं है और सब कुछ हमें स्मरण है। सिर्फ एक बात स्मरण नहीं है। इसलिए हम कपड़े भी ठीक से पहन लेते हैं और जूते भी, और घर भी ठीक से बसा लेते हैं, लेकिन जीवन हमारा ठीक नहीं हो पाता है। जीवन हमारा ठीक होगा भी नहीं। जो केंद्रीय है जीवन में उसकी हमें कोई स्मृति नहीं। और मैने कहा कि नग्न जब वह धर्म-पुरोहित के द्वार पर खड़ा हो गया। तो धर्म पुरोहित भी पहचान नहीं पाया कि वह कौन है क्योंकि हम सभी एक दूसरे को वस्त्रों से ही पहचानते हैं। यहां हम इतने लोग आए हैं अगर निर्वस्त्र आ जाएं तो कोई किसी को पहचान भी नहीं सकेगा कि कौन कौन है? लेकिन यह तो ठीक भी है कि हम दूसरों को वस्त्रों से पहचानें। बड़े मजे और आश्चर्य की बात तो यह है कि हम अपने को भी अपने वस्त्रों से पहचानते हैं। अपनी आत्मा का तो हमें कोई स्मरण नहीं, अपने स्वरूप का तो हमें तो कोई बोध नहीं, तो अपने वस्त्रों और बहुत प्रकार के वस्त्र हैं। वस्त्र हम जो पहने हुए हैं वे धन के, पदवियों के, पदों के, सामाजिक प्रतिष्ठा के, अहंकार के, उपाधियों के, वे सारे वस्त्र हैं और उनसे ही हम अपने को भी पहचानते हैं? वस्त्रों से जो अपने को पहचानता है

उसका जीवन यदि अंधकारपूर्ण हो जाए, यदि उसका जीवन दुख से भर जाए, पीड़ा और विपन्नता से, तो आश्चर्य नही है क्योंकि वस्त्र हमारे प्राण नहीं हैं, और वस्त्र हमारी आत्मा नहीं हैं। लेकिन हम अपने को अपने वस्त्रों से ही जानते हैं। उससे गहरी हमारी कोई पहुंच नहीं है।
इन तीन दिनों में इन वस्त्रों के बाहर जो हमारा होना है उस तरफ, उस दिशा में कुछ बातें आपसे कहूंगा और यह स्मरण दिलाना चाहूंगा कि जो वस्त्रों में खोया है वह अपने जीवन को गवां रहा है। और जो केवल वस्त्रों में अपने को पहचान रहा है, वह अपने को पहचान ही नहीं रहा है, वह अपने को पा भी नहीं सकेगा। और जो व्यक्ति अपने को ही ना पा सके उसके और कुछ भी पा लेने का कोई भी मूल्य नहीं है। अपने को खोकर अगर सारी दुनियां भी पाई जा सके तो उसका कोई मूल्य नहीं है।
एक और छोटी कहानी मुझे स्मरण आई वह मैं कहूं और फिर आज की सुबह इस आत्म-विस्मरण के संबंध में जो मुझे कहना है वह आपको कहूंगा। तीन मित्र यात्रा पर निकले। पहली ही रात एक जंगल में उन्हें विश्राम करना पड़ा। खतरनाक स्थान था जंगली जानवरों का डर था। डाकू और लूटेरों का भी भय था। अंधेरी रात थी तो उन तीनों ने तय किया कि एक-एक व्यक्ति जागता रहे, दो सोएं और एक जागा हुआ पहरा दे। एक तो उनमें गांव का पंडित था, एक उनमें गांव का लड़ाका बहादुर क्षत्रिय था, एक गांव का नाई था। नाई को ही सबसे पहले पासा फेंका गया और उसका ही सबसे पहले नाम पड़ा। वह रात पहरा देने के लिए पहले पहर बैठा। नींद उसे जल्दी आने लगी। दिन भर की थकान थी तो किसी भांति अपने को जगाए रखने के लिए उसने बगल में सोए हुए क्षत्रिय मित्र की हजामत बनानी शुरू कर दी। जागे रखने के लिए अपने को उसने अपने मित्र के सारे बाल काट डाले। उसका समय पूरा हुआ। तीसरा जो मित्र था वह था, रात्रि के अंतिम पहर में उस पंडित को पहरा देने को था। उसके तो बाल नहीं थे उसका तो सिर पहले से ही साफ था, उसके सारे बाल गिर गए थे। दूसरे मित्र का जैसे ही मौका आया उस नाई ने उसे उठाया और कहा कि मित्र उठो! तुम्हारा समय आ गया। अब मैं सोऊं। उस क्षत्रिय ने अपने सिर पर हाथ फेरा और देखा बाल बिल्कुल भी नहीं हैं तो उसने कहा कि मालूम होता है कि तुमने मेरी जगह भूल से पंडितजी को उठा दिया है। उसने अपने सिर पर हाथ फेरा और कहा मालूम होता है कि भूल से मेरी जगह पंडितजी को उठा दिया था और वह वापस सो गया। हम अपने को इसी भांति पहचानते हैं। हमारी पहचान हमारे वस्त्रों तक है। अगर बहुत गहरी जाती है तो अपने शरीर तक जाती है। पर वह भी वस्त्र से ज्यादा गहरा नहीं है। और भी गहरी जाती हो तो मन तक जाती है।
मन भी वस्त्रों से ज्यादा गहरा नहीं है। लेकिन उससे गहरी हमारी कोई पहचान नहींं जाती। जीवन में सारा दुख और सारा अंधकार इस आत्म-अज्ञान से पैदा होता है। केंद्र पर, अपने स्वयं के केंद्र पर अंधकार होता है और हम सारे रास्तों पर दीये जलाने की कोशिश करते हैं। वे सब दीये काम नहीं प.ड़ते। क्योंकि मेरे भीतर अंधकार होता है तो मैं जहां भी जाता हूं अपने साथ अंधकार ले जाता हूं। उन रास्तों पर भी जहां कि मैने प्रकाश के दीये जलाए हैं, मेरे पहुंचने से अंधकार हो जाता है क्योंकि मैं अंधकार हूं। जब तक मैं स्वयं को नही जानता तब तक मैं अंधकार हूं। मैं अपने अंधकार को लिए फिरता हूं जीवन में और सारे लोग अपने-अपने अंधकार को लिए फिरते हैं। हम सब जहां इकट्ठे हो जाते हैं वहाँ अंधकार बहुत घना हो जाता है। एक-एक व्यक्ति उतने अंधकार में है और जहां पूरी मनुष्य-जाति इकट्ठी हो वहां अंधकार बहुत घना हो जाता है। मनुष्य-जाति के पिछले तीन-चार हजार वर्षों का इतिहास इसी अंधकार का इतिहास है। फिर इस अंधकार से संघर्ष पैदा होता है, युद्ध पैदा होते हैं, हिंसा पैदा होती है। इस अंधकार से, ईर्ष्या पैदा होती है, घृणा पैदा होती है, क्रोध पैदा होता है। इस अंधकार से विध्वंस पैदा होता है। हम खुद दुखी होते हैं औरों को दुखी करते हैं। ये कोई तीन-चार हजार वर्षों से चला है और अब तक हम सफल नहीं हो पाए हैं इस बात में कि एक ऐसा समाज निर्मित हो सके जिसका जीवन प्रकाश से आलोकित हो, प्रकाश से मंडित हो।
क्या आपको ज्ञात है कि तीन हजार वर्षों में कोई चौदह हजार छह सौ युद्ध हुए। केवल तीन हजार वर्षों में चौदह हजार छह सौ युद्ध, कोई पंद्रह हजार युद्ध। प्रति वर्ष पांच युद्ध। हम शायद लड़ते ही रहे हैं। हमने कुछ और नहीं

किया। और ये तो बड़े-बड़े युद्धों की बात है। रोज हम जो छोटी-छोटी लड़ाइयां लड़ रहे हैं उनकी तो कोई गिनती नहीं है। जो हम रोज छोटी-छोटी हिंसा कर रहे हैं उसका तो कोई आकलन नहीं, कोई गणना नहीं है। अगर तीन हजार वर्षों में पंद्रह हजार युद्ध हमें लड़ने पड़े हों तो क्या इससे यह सूचना नहीं मिलती है कि मनुष्य-जाति का मस्तिष्क किसी बहुत गहरे रोग से पीड़ित है? कोई इन तीन हजार वर्षों में मुश्किल से थोड़े से वर्ष हैं जब युद्ध न हुआ हो और उन वर्षों को भी हम शांति का समय नहीं कह सकते क्योंकि उन क्षणों में हमने नये युद्धों की तैयारियां की हैं। या तो हम लड़ते रहे हैं या हम लड़ने की तैयारियां करते रहे हैं। मनुष्य के पूरे इतिहास को दो खंडों में बांटा जा सकता है। युद्ध के खंड और युद्ध की तैयारियों के खंड। शांति हमने अब तक नहीं जानी। और व्यक्तिगत जीवन में भी हम देखें तो शांति का कहीं भी कोई, कहीं कोई पता नहीं मिलेगा। कोई आनंद की किरण उपलब्ध नहीं होगी। कोई प्रेम का संगीत नहीं सुनाई पड़ेगा। हम सारे लोग यहां इकट्ठे हैं। कौन अपने भीतर प्रेम के संगीत को अनुभव करता है?
कौन अनुभव करता है अपने भीतर सुगंध को जीवन की, कौन अनुभव करता है जीवन की धन्यता को, कृतार्थता को? एक अर्थहीनता, एक मीनिंगलेसनेस हमें पकड़े है। लेकिन किसी भांति हम जीए जाते हैं कल की आशा में। शायद कल सब ठीक हो जाएगा। लेकिन जिसका आज गलत है उसका कल कैसे ठीक होगा? क्योंकि कल तो आज से ही निकलेगा, आज से ही पैदा होगा। अगर आज दुख से भरा है तो स्मरण रखें कल आनंद से भरा हुआ नहीं हो सकता है क्योंकि कल का जन्म तो आज से होगा। कल आने वाला जीवन आप पैदा करेंगे उसे आप प्रतिक्षण पैदा कर रहे हैं। तो यदि आज दुखी हैं तो जान लें कि कल भी दुखी रहेंगे। कल की आशा में, कल की सुख की आशा में आज के दुख को झेला तो जा सकता है। लेकिन कल के सुख को निर्मित नहीं किया जा सकता है। कल के आनंद की कल्पना में आज की पीड़ा को सहा जा सकता है लेकिन कल के आनंद को पैदा नहीं किया जा सकता है। इसलिए आनंद है केवल आशा और जीवन है दुख ऐसा हमारे सबके अनुभव में है। यह कोई सिद्धांत की बात नहीं है। जो भी अपने जीवन को थोड़ा सा खोल कर देखेगा उसे यह दिखाई पड़ेगा ये सीधे तथ्य हैं। जीवन के संबंध में पहला तथ्य यही है कि जिस भांति हम उसे जी रहे हैं उस भांति कहीं कोई, कहीं आनंद का फूल उसमें नहीं लगता है और ना लग सकता है। इसीलिए कल की आशा पर, कल ठीक हो जाएगा, कल आने वाले वर्ष या आने वाली जिंदगी में, परलोक में पुर्नजन्म में सब ठीक हो जाएगा ये सब कल की आशा का विस्तार है। कोई सोचता हो कि इस जन्म के बाद अगले जन्म में सब ठीक हो जाएगा। वह उसी तरह की भ्रांति में है जिस तरह की भ्रांति में जो सोचता है आज दुख है कल शांति, कल सुख हो जाएगा। कोई सोचता हो मोक्ष में सब ठीक हो जाएगा तो भ्रांति में है। क्योंकि कल मुझसे पैदा होगा। आने वाला जन्म भी, मोक्ष भी, जो भी होने वाला है वह मुझ से पैदा होगा। और अगर मेरा आज अंधकारपूर्ण है तो कल मेरा प्रकाशित नहीं हो सकता। फिर क्या हम निराश हो जाएं और कल की सारी आशा छोड़ दें? मैं आपसे कहता हूं कि निश्चित ही कल के प्रति कोई आशा रखने का कारण नहीं है।
लेकिन इससे निराश होने का भी कोई कारण नहीं है। आज के प्रति आशा से भरा जा सकता है। आज को परिवर्तित किया जा सकता है। मैं जो हूं उस होने में क्रांति लाई जा सकती है। मैं कल क्या होऊंगा इसके द्वारा नहीं बल्कि जो मैं अभी हूं उसके ज्ञान, उसके बोध उसके प्रति जागरण से, उसे जान लेने से। आत्म स्मृति से क्रांति उत्पन्न हो सकती है। यदि मैं जान सकूं स्वयं को तो वह दीया उपलब्ध हो जाएगा जो मेरे जीवन से अंधकार को नष्ट कर देगा और स्वयं को जाने बिना और न कोई दीया है और न कोई प्रकाश है, न कोई आशा है। पहली बात हम स्वयं को नहीं जानते हैं। ये जान लेना स्वयं को जानने के प्रति पहला चरण है। कोई सोचता हो कि मैं स्वयं को जानता हूं तो स्वयं को जानने के प्रति द्वार बंद हो जायेंगे और धर्म की बहुत सी शिक्षाओं ने, संस्कृति ने इधर हजारों वर्ष से दोहराए गए सिद्धांतों ने, आत्मा और परमात्मा की बातों ने हम में से बहुतों को यह भ्रम पैदा कर दिया है कि हम अपने को जानते हैं। इस भ्रम ने हमारे आत्म-अज्ञान को गहरा किया है। स्वयं को जानने के भ्रम से बड़ा, इन शब्दों और सिद्धांतों के आधार पर स्वयं को जानने के भ्रम से बड़ा, आत्म-ज्ञान में, और कोई दूसरा अटकाव कोई दूसरी दीवाल, कोई दूसरा अवरोध

नहीं है। छोटे से बच्चे भी जानते हैं कि हम आत्मा हैं और बूढ़े भी दोहराते हैं कि हम आत्मा हैं। यह सत्य है, यह सत्ता का अनुभव हो तो जीवन बिल्कुल दूसरा हो जाएगा। ये सिद्धान्त हैं, ये स्वयं की प्रतीति और साक्षात हो तो जीवन नया हो जाए और जीवन आनंद से भर जाए।
लेकिन इन शब्दों को हमने सहारों की भांति पकड़ा हुआ है। अज्ञान में इन शब्दों से पैदा हुए झूठे ज्ञान को हमने बहुत तीव्रता से पकड़ा है उसे छोड़ने में भी भय मालूम होता है। इसलिए जैसे-जैसे आदमी मृत्यु के करीब पहुंचता है वैसे-वैसे इन शब्दों को और जोर से पकड़ लेता है। वैसे-वैसे गीता, कुरान और बाइबिल उसके मस्तिष्क पर और जोर से बैठते जाते हैं। वैसे-वैसे वह मंदिरों के द्वार खटखटाने लगता है। और साधु-संन्यासियों के सत्संग में बैठने लगता है ताकि इन शब्दों को जोर से पकड़ ले, ताकि आती हुई मौत के विरोध में कोई सुरक्षा का उपाय बना ले। इसलिए जितने लोग मृत्यु से भयभीत होते हैं वे सभी आत्मा की अमरता में विश्वास कर लेते हैं। उनका यह विश्वास उनका ज्ञान नहीं है। कोई विश्वास कभी ज्ञान नहीं होता। सब विश्वास अज्ञान होते हैं। जीवन के प्रति जो भी हम माने हुए बैठे हैं वह सब हमारा अज्ञान है और उस मानने के कारण ज्ञान तक जाने का सारा द्वार बंद है। स्वयं की स्मृति में, स्वयं के संबंध में प्रचलित सिद्धांत सबसे बड़ी बाधाएं हैं। सिद्धांत तो क्या बाधा हैं हम उन पर विश्वास कर लेते हैं ये बाधा है। हमारे विश्वास बाधा हैं। और जो व्यक्ति जितने ज्यादा विश्वासों से ग्रसित हो जाता है उसके जीवन में विवेक के अवतरण का, विवेक के आगमन का, विवेक के उठने और जगने की संभावना का, उतना ही उसी मात्रा में ह्नास हो जाता है। असंभव हो जाती है यह बात कि हम स्वयं को जान सकें। क्योंकि स्वयं को जानने के सिद्धांत हमें यह भ्रम पैदा कर देते हैं कि हम जानते हैं और ये भ्रम बहुत तलों पर हैं। एक संन्यासी एक राजा के घर मेहमान था। उस राजा ने सुबह ही आकर उस संन्यासी को पूछा, मैं सुनता हूं कि आप परमात्मा की बातें करते हैं। क्या मुझे परमात्मा से मिला दे सकेंगे? यह बात उस राजा ने अपने जीवन में और भी न मालूम कितने संन्यासियों से पूछी थी। इस संन्यासी से भी पूछी। और जो अपेक्षा थी और जो संन्यासियों ने बातें कही थीं सोचा वही बातें यह संन्यासी भी कहेगा। करीब-करीब संन्यासी एक ही जैसी बातें दोहराते हैं। सोचा यह भी वही कहेगा, कुछ उपनिषद, कुछ वेदों की, कुछ ग्रंथों की, कुछ उद्धरण देगा, कुछ गीता की, कुछ ज्ञान की बातें समझाएगा। लेकिन उस संन्यासी ने क्या पूछा? उस संन्यासी ने कहाः आप ईश्वर से मिलना चाहते हैं तो थोड़ी देर रुक सकते हैं या बिल्कुल अभी मिलने की इच्छा है?
वह राजा थोड़ा हैरान हुआ। कोई भी हैरान होता। यह खयाल न था कि बात इस भांति पूछी जाएगी। सोचा शायद समझने में भूल हो गई है। उसने कहा कि शायद आप समझे नहीं मैं परमात्मा से, ऊपर जो परमात्मा है उससे मिलने की बात कर रहा हूं। उस संन्यासी ने कहा कि समझने में भूल का कोई कारण नहीं। मैं तो उस परमात्मा के सिवाय और किसी की बात करता ही नहीं। अभी मिलना चाहते हैं या थोड़ी देर ठहर सकते हैं? उस राजा ने कहा कि जब आप कहते ही हैं तो मैं अभी ही मिलना चाहूंगा। ऐसे उसकी कोई तैयारी नहीं थी इतने जल्दी परमात्मा से मिलने की। और किसी की भी इतने जल्दी कोई तैयारी नहीं होती। ईश्वर के खोजियों से पूछा जाए अभी मिलना चाहेंगे। तो वे भी कहेंगे कि हम थोड़ा सोच कर आते हैं विचार करके आते हैं। हम थोड़ा मित्रों से पूछ लें पति हो तो पत्नी से पूछ ले, पत्नी हो तो पति से पूछ ले, हम जरा अपने घर के लोगों से पूछ लें फिर हम लौट कर आते हैं। इसी वक्त तो ईश्वर से मिलने को कौन तैयार होगा। वह राजा भी तैयार नहीं था लेकिन जब बात ही मुसीबत ही आ पड़ी थी सिर पर तो उसने कहा कि ठीक है आप कहते हैं तो मैं अभी मिल लूंगा। संन्यासी ने कहा लेकिन इसके पहले मैं आपको परमात्मा से मिलाऊं यह छोटा सा कागज है इस पर अपना परिचय लिख दें और लिखा उसने जो उसका परिचय था। बड़े राज्य का राजा था, महल का पता, वह सब लिखा।
संन्यासी ने पूछा कि क्या मैं मान लूं कि यही आपका परिचय है? क्या मैं मान लूं कि कल आप भिखारी हो जाएं और राज्य छिन जाए तो बदल जाएंगे?
उस राजा ने कहा कि नहीं, राज्य छिन जाए तो भी मैं तो मैं ही रहूंगा। तो संन्यासी ने कहा कि फिर राजा होना आपका परिचय नहीं हो सकता, क्योंकि राज्य

छिन जाने पर भी आप रहेंगे और आप ही रहेंगे व भिखारी होने पर भी आप ही रहेंगे। तो फिर राजा होना आपका परिचय नहीं हो सकता। और यह जो नाम लिखा है, मां-बाप दूसरा नाम भी दे सकते थे और आप भी चाहें तो दूसरा नाम रख ले सकते हैं, उससे भी बदल नहीं जाएंगे। उस राजा ने कहाः नाम से क्या फर्क पड़ता है, मैं तो मैं ही रहूंगा, नाम कोई भी हो। तो संन्यासी ने कहा कि इसका अर्थ हुआ कि आपका कोई नाम नहीं है। नाम केवल कामचलाऊ बात है। कोई भी नाम काम दे सकता है। इसलिए नाम भी आपका परिचय नहीं है। तो फिर क्या मैं मानूं कि आपको अपना परिचय पता नहीं है? क्योंकि दो ही बातें आपने लिखी हैं राजा होना और अपना नाम। उस राजा ने वह कागज वापस ले लिया और कहाः मुझे क्षमा करें। अगर मेरा नाम, मेरा धन, मेरा पद और मेरी प्रतिष्ठा मेरा परिचय नहीं है तो फिर मुझे पता नहीं कि मैं कौन हूं? उस संन्यासी ने कहा फिर परमात्मा से मिलाना बहुत कठिन है क्योंकि मैं किसको मिलाऊं, मैं किसकी खबर भेजूं, कौन मिलना चाहता है?
जाओ और खोजो कि कौन हो और जिस दिन खोज लोगे उस दिन मेरे पास नहीं आओगे
कि परमात्मा से मिला दो क्योंकि तुम जिस दिन स्वयं को पा लोगे उस दिन उसे भी पा लोगे जो सबके भीतर है। क्योंकि जो मेरे भीतर है और जो किसी और के भीतर है और जो सबके भीतर है, वह बहुत गहरे में संयुक्त है, और एक है और समग्र है। लेकिन इस "मैं" का तो हमें कोई भी पता नही है। तो या तो हम अपने नाम को, अपने घर को, अपने परिवार को समझते हैं कि यह मेरा होना है, अगर किसी भांति इससे हमारा छुटकारा हो जाए और ये हम जान सकें कि मेरा नाम, मेरा घर, मेरा वंश, मेरा राष्ट्र, मेरी जाति, मेरा धर्म यह मेरा होना नहीं है अगर किसी भांति यह बोध भी आ जाए तो फिर हम तोतों कि भांति उन शब्दों को दोहराने लगते हैं जो ग्रंथों में लिखे हैं और शास्त्रों में कहे हैं। तब हम दोहराने लगते हैं कि मैं आत्मा हूं, मैं परमात्मा हूं। अहं-ब्रह्मास्मि और-और न मालूम क्या-क्या हम दोहराने लगते हैं। मैं आपसे कहूं कि जिस भांति नाम आपको सिखाया गया है उसी भांति ये बातें भी आपको सिखाई गईं हैं इनमें भेद नहीं है। जिस भांति यह कहा गया है कि आप का यह नाम है और आपने पकड़ लिया है, उसी भांति यह भी कहा गया है कि आपके भीतर परमात्मा है और आपने यह भी पकड़ लिया है। इन दोनों बातों में कोई फर्क नहीं है। जब तक हम बाहर से आए हुए शब्दों को पकड़ते हैं तब तक हम स्वयं से परिचित नहीं हो सकेंगे वे शब्द चाहे पिता ने दिए हो, चाहे समाज ने, चाहे ऋषियों ने, मुनियों ने, साधु ने, संतों ने किन्हीं ने भी वे शब्द दिए हों, जब तक बाहर से आए हुए परिचय को हम पकड़ेंगे तब तक उस परिचय का जन्म नहीं हो सकेगा जो हमारा परिचय है। तब तक हम उसे नहीं जान सकेंगे। तब तक उसे जानने का कोई मार्ग नहीं है।
तो या तो हम जिसे सांसारिक कहते हैं उस तरह के परिचय को पकड़ लेते हैं
या जिसे आध्यात्मिक कहते हैं उस तरह के परिचय को पकड़ लेते हैं। लेकिन दोनों परिचय पकड़े गए होते हैं। दोनों परिचय बाहर से मिलते हैं। जो परिचय बाहर से मिलता है वह आत्म-परिचय नहीं है। इसलिए यह बात जितनी झूठी है कि मेरा नाम मैं हूं उतनी ही यह बात भी झूठी होगी अगर मैं बाहर से सीखूं कि मैं आत्मा हूं, परमात्मा हूं, मैं अविनाशी हूं, मैं कुछ हूं मैं कुछ हूं ये सारी बातें मैं बाहर से सीखूं तो ये बातें उतनी ही झूठी होंगी। पहली बात झूठी है यह तो हमें समझ में आ जाती है क्योंकि ये बात हजारों वर्ष से दोहराई गई है, लेकिन दूसरी बात भी झूठी है इसे समझने में थोड़ी कठिनाई होती है। क्योंकि तब हम एक अटल अंधकार में छूट जाते हैं और अज्ञान में छूट जाते हैं।
क्योंकि अगर सांसारिक परिचय भी हमारा परिचय नहीं है और तथाकथित आध्यात्मिक परिचय भी हमारा परिचय नहीं है तो फिर हमारा परिचय क्या है? तब हम एक अज्ञान में और अंधकार में छूट जाते हैं और अज्ञान से भय मालूम होता है। अज्ञान से डर मालूम होता है।
मैं अपने को नहीं जानता हूं इस बात के बोध से भयभीत होता है चित्त इसलिए हम कोई न कोई परिचय तो मान लेना चाहते हैं। गृहस्थ का एक परिचय है और संन्यासी का एक परिचय है ये दोनों परिचय झूठे हैं। इनमें से किसी एक को हम पकड़ कर तृप्ति कर लेना चाहते हैं तो गृहस्थी से कोई छूटता है तो संन्यासी हो जाता है और संन्यास में पकड़ जाता है। और एक तरह के वस्त्रों से छूटता है

तो दूसरे तरह के वस्त्रों को स्वीकार कर लेता है और एक तरह के नाम से छूटता है तो दूसरा नाम ग्रहण कर लेता है।
संन्यासी का नाम बदल देते हैं हम दूसरा नाम दे देते हैं उसे। कपड़े बदल देते हैं, दूसरे वस्त्र दे देते हैं उसे। उसका ढंग बदल देते हैं दूसरा ढंग दे देते हैं उसे लेकिन उस रिक्त स्थान में छूटने को कोई राजी नहीं है जहां हमारा कोई परिचय नहीं है न सांसारिक और न आध्यात्मिक। उस खाली जगह में खड़े होने को कोई राजी नहीं है। जो उस खाली जगह में खड़े होने को राजी हो जाता है वही केवल स्वयं को जान पाता है। जो अपने सब परिचय छोड़ देता है और अपरिचय में खड़ा हो जाता है। जो अपने संबंध में सारे ज्ञान छोड़ देता है और अज्ञान में खड़ा हो जाता है उसी अज्ञान में, उसी नॉट नोइंग में, उसी न जानने में, जब मुझे कुछ भी पता नहीं अपने बावद। और जो भी पता है उसे मैं छोड़ देता हूं। उसी स्थिति में, उसी क्रांति के क्षण में, वह परिवर्तन घटित होता है जहां स्वयं के बोध का जन्म होता है। जब तक मैं किसी भी परिचय को पकड़ता हूं तब तक उस बोध के पैदा होने की भूमिका खड़ी नहीं होती। जब तक मैं कोई भी सहारा पकड़ता हूं तब तक उसके गिरने का कोई कारण पैदा नहीं होता जो मेरे भीतर सोया है। जब मैं सब सहारा छोड़ देता हूं।
एक छोटी सी घटना मुझे स्मरण आती है। बिल्कुल काल्पनिक होगी। मैने सुना है कि कृष्ण एक दिन भोजन करते थे और बीच भोजन में उठे और द्वार की तरफ भागे। जो उन्हें भोजन कराते थे उन्होंने कहा क्या करते हैं? कहां भागते हैं बीच भोजन में उठते हैं। उन्होंने कहाः मेरा एक भक्त बहुत कष्ट में पड़ा हुआ है। दुष्ट उसे सता रहे हैं, उसे पत्थर मार रहे हैं। ये कहते वे भागे, द्वार के बाहर भी निकल गए लेकिन द्वार से फिर वापिस लौट आए, भोजन करने बैठ गए। तो जिन्होंने पहला प्रश्न पूछा था उन्होंने पूछा आप लौट आए बीच से। उन्होंने कहा उस भक्त ने खुद भी पत्थर अपने हाथ में उठा लिया है। अब मेरे जाने की वहां कोई जरूरत नहीं रही। अभी लोग उसे मार रहे थे वह निहत्था, असहाय खड़ा हुआ झेल रहा था, मेरी जरूरत थी। अब उसने पत्थर खुद भी उठा लिए हैं अब मेरी कोई भी जरूरत नहीं है। कहानी तो काल्पनिक ही होगी।
लेकिन मनुष्य के जीवन में जो भी सोया है चाहे उसे कोई नाम दें, सत्य कहें, आत्मा कहें, परमात्मा या कोई और नाम दें, कृष्ण कहें, क्राइस्ट कहें या कुछ और कहें। जो भी भीतर सोया है। जब तक आप बेसहारा नहीं हो जायेंगे तब तक उसके उठने और जगने का कोई कारण नहीं है। जब तक आप कुछ पकड़ लेंगे तब तक वह सोया रहेगा और जब आपकी कोई पकड़ नहीं होगी और हाथ खाली हो जाएंगे और आप बेसहारा खड़े हो जाएंगे। जब आपकी कोई सुरक्षा नहीं रह जाएगी, कोई सहारा नहीं रह जाएगा, कोई परिचय, कोई ज्ञान और आप निपट अज्ञान में और बेसहारा खड़े होने का साहस करेंगे, उसी क्षण, उसी क्षण केवल वह जागता है जो हमारे भीतर सोया है। उसी क्षण वहां स्फुरणा होती है। उसी क्षण वहां कोई बीज टूटता है और अंकुरित होता है। उसी क्षण वहां कोई अंधकार टूटता है कोई ज्योति जागती है उसके पहले नहीं। उसके पहले असंभव है। उसके पहले बिल्कुल असंभव है क्योंकि उसके पहले हम कोई न कोई पूरक कोई न कोई सब्स्टीट्यूट खोज लेते हैं। हम खोज लेते हैं उसे जो सोया है उसे जागने का कोई कारण नहीं रह जाता। हम पत्थर उठा लेते हैं फिर कठिनाई हो जाएगी। और हम कोई न कोई परिचय पकड़ लेते हैं, कोई न कोई वस्त्र पकड़ लेते हैं, कोई न कोई रूप, कोई न कोई आकृति, कोई न कोई नाम, कोई न कोई शब्द, कोई न कोई सिद्धांत, पकड़ लेते हैं अज्ञान ढक जाता है और ज्ञान के जन्म का कोई कारण नहीं रह जाता। ज्ञान के आगमन के लिए पहला द्वार स्वयं के भीतर अपने समग्र अज्ञान की स्वीकृति है।
तो आज की सुबह मैं आपको कहना चाहूंगा, ज्ञानी न बनें अपने अज्ञानी होने को जानें। ज्ञानी बनना बहुत आसान है। अपने अज्ञान को जानना और स्वीकार कर लेना बहुत दुःसाहस की बात है। क्योंकि ज्ञानी बनने में अहंकार की सहज तृप्ति होती है अज्ञान को स्वीकार करने में अहंकार एकदम टूट कर दो टुकड़े हो जाता है, उसके खड़े होने की कोई जगह नहीं रह जाती। ज्ञानी होने में अहंकार की खूब तृप्ति है। तो पंडित जितना अहंकारी हो जाता है उतना तो जगत में कोई अहंकारी नहीं होता। उपदेशक जितने अहंकार से भर जाते हैं उतना तो कोई अहंकारी नहीं होता। जितना ये ज्ञान की बातें करने वाले लोग अहंकार से पीड़ित हो जाते हैं उतना तो कोई और अहंकारी नहीं होता। यह जितना ज्यादा

हमें यह खयाल पैदा होता है कि कुछ शब्दों को इकट्ठा करके कुछ विचारों को इकट्ठा करके हमने जान लिया, मैं जान गया हूं। जानते तो हम कुछ भी नहीं, हमारा "मैं" जरूर मजबूत होता है और भर जाता है। और फिर जिस चीज से भरने लगता है उसको हम इकट्ठा करने लगते हैं। कोई धन इकट्ठा करने लगता है क्योंकि धन के इकट्ठे करने से अहंकार भरता हुआ मालूम पड़ता है। कोई बड़े महल बनाने लगता है, ताजमहल बनाने लगता है, कोई कुछ और करने लगता है क्योंकि उससे अहंकार भरता है। कोई त्याग करने लगता है क्योंकि उससे अहंकार भरता है और हमारा अहंकार बड़ा सूक्ष्म है। वह निरंतर अपने को भरने की कोशिश करता है। अगर त्याग को प्रशंसा मिलती हो आदर मिलता हो तो हम त्याग कर सकते हैं, उपवास कर सकते हैं, धूप में खड़े रह सकते हैं, सिर के बल खड़े रह सकते हैं, शरीर को सुखा सकते हैं। अगर चारों तरफ जय जयकार होता हो तो हम मरने को राजी हो सकते हैं, नहीं तो कोई शहीद मरने को राजी होता। कोई मरने को राजी होता लेकिन अहंकार को अगर तृप्ति मिलती हो तो हम सूली पर भी लटकते वक्त मुस्कुरा सकते हैं और प्रसन्न हो सकते हैं।
एक फकीर था, नसरुद्दीन। फकीर हुआ उसके पहले एक राजा के घर वजीर था। राजा और नसरुद्दीन एक दफा शिकार करने गए एक जंगल में। रास्ता भटक गए और एक छोटे से गांव में सुबह-सुबह रास्ता खोजते हुए पहुंचे। भूख लगी थी। एक घर में गए और उन्होंने नाश्ते के लिए प्रार्थना की। उस गरीब आदमी के पास दो- चार अंडे थे। उसने कुछ बनाया अंडों से और उन्हें भेंट किया। चलते वक्त राजा ने कहा कि कितना पैसा हुआ? उस देश की मुद्रा में उस गरीब ने कहा पचास रुपया। राजा बहुत हैरान हुआ। दो-चार अंडों की कीमत तो दो-चार पैसे भी नहीं हैं, पचास रुपया। उसने वजीर नसरुद्दीन से पूछा, क्या बात है। आर ऐग्स सो रेयर इन दिस पार्ट ऑफ दि कंट्री? क्या इस हिस्से में अंडे इतने कम मिलते हैं? उस नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं। ऐग्स आर नॉट रेयर सर, बट किंग्स आर। अंडे नहीं, अंडे तो बहुत मिलते हैं, अंडे कम नहीं मिलते लेकिन इस हिस्से में राजा बहुत मुश्किल से मिलते हैं। वह राजा पचास रुपया देने की कल्पना भी नहीं करता था लेकिन जैसे ही उसे पता चला राजा बहुत मुश्किल से मिलते हैं उसने पचास रुपये दिया और पचास रुपया इनाम दिए नसरुद्दीन को कि तुमने बहुत अदभुत बात कही। पचास रुपये अंडे के भी चुकाए और पचास रुपये इनाम के भी, क्यों? बड़ी तृप्ति हुई। राजा बहुत मुश्किल से मिलते हैं।
यह जो हमारी अस्मिता है रोज-रोज इस बात की तृप्ति खोजती रहती है जिस चीज से आप न्यून होते जाते हैं वही चीज आपके अहंकार की तृप्ति करने लगती है। एक नगर में एक महल ऊपर उठने लगता है जब तक दूसरे मकानों के बराबर होता है तब तक कोई तृप्ति नहीं होती जब दूसरे मकानों से ऊपर उठने लगता है तब तृप्ति होनी शुरू हो जाती है। और जितना ऊपर उठने लगता है और जिस दिन अकेला रह जाता है उस गांव में एक ही रह जाता है ऊंचा मकान उस दिन खूब तृप्ति होने लगती है। तो अहंकार मांगता है न्यूनता। कोई त्याग करने लगता है, कोई धन इकट्ठा करने लगता है, कोई विचार का संग्रह करने लगता है ज्ञानी बनने लगता है और जिस दिन वह ज्ञानी बनता जाता है और अकेला और धीरे-धीरे लगता है वह अकेला ही रह गया मालिक उस ज्ञान का और कोई भी मालिक नहीं है उस दिन बड़ी गहन तृप्ति होने लगती है। लेकिन अहंकार जितना-जितना पुष्ट हो जाता है स्वयं को जानना उतना ही असंभव हो जाता है। जितनी अस्मिता गहरी हो जाती है। यह जो ईगो है, यह जो मैं हूं, यह जितना सख्त और ठोस हो जाता है उतना ही उसे जानना मुश्किल हो जाता है जो मैं हूं, जो मेरा वास्तविक होना है, क्यों? क्योंकि अस्मिता मेरे द्वारा निर्मित है। अहंकार मेरा निर्माण है और मैं, मैं मेरा निर्माण नहीं हूं। मेरा होना, मेरी आत्मा, मेरी वास्तविकता मेरा निर्माण नहीं है। अस्मिता, अहंकार मेरा निर्माण है, मेरा क्रिएशन है। एक ने बड़े मकान को बना कर अपने अहंकार को निर्मित किया है, एक ने धन इकट्ठा करके, एक ने राष्ट्रपति तक की यात्रा पूरी करके अपने अहंकार को इकट्ठा किया है, एक ने ज्ञान को इकट्ठा करके अपने अहंकार को इकट्ठा किया है। यह हमारा निर्माण है यह हमने बनाया है और "मैं" मेरा निर्माण नहीं हूं। तो वह जो मेरे भीतर अनिर्मित है असृष्ट है जो मेरे भीतर, मेरे जानने, मेरे होने के पहले है, मेरे करने के पहले है, मेरे जन्म के पहले जो मेरे भीतर है उसे जानने के लिए जिस अहंकार को मैंने निर्मित किया है, यह बाधा बन जाएगा।

इसलिए न तो त्यागी जानता है और न ज्ञानी और न धनी, और न पदलोलुप और न महत्वाकांक्षी। कौन जानता है? जानने के द्वार पर पहली तो बात यही है कि वह जान पाता है जो सब भांति नहीं जानता हो, इसकी स्वीकृति को उपलब्ध होता है। इस स्वीकृति को जानते ही, पहचानते ही कि मैं नही जानता हूं और कोई पकड़ने का खयाल नहीं रह जाता, मैं खाली हाथ खड़ा रह जाता हूं। खाली हाथ खड़ा रहा जाता हूं। खाली मन... मैं आपसे पूछूं कि आपका नाम क्या है आप बहुत जल्दी उत्तर दे देते हैं कि मेरा नाम राम है, विष्णु है या कुछ और है, क्यों? इतने विश्वस्त हैं कि आपका यह नाम है। कभी सोचा कभी विचारा कि यह मैं क्या कह रहा हूं। एक जल्दी से नाम निकल आता है और हम उत्तर दे देते हैं। उत्तर दे देते हैं बात खत्म हो जाती है। कभी थो.ड़ी देर ठहर जाएं और सोचें, मेरा नाम है! कुछ तो शायद भीतर एक सन्नाटा हो जाए, एक साइलेंस हो जाए, एक मौन हो जाए, कोई नाम खोजे से न मिले तो एक मौन पैदा हो जाए।
हम किसी से कोई प्रश्न पूछते हैं, उसे मालूम होता है तो शीघ्र उत्तर
दे देता है। मालूम होने का मतलब अगर उसकी स्मृति में कुछ होता है तो उत्तर दे देता है। मैं पूछूं-दो और दो कितने होते हैं आप कह देते हैं चार क्योंकि आपकी स्मृति ने सीख रखा है दो और दो चार होते हैं। पूछा, उत्तर दे दिया। मैं आपसे पूछूं: भीतर कौन है तो आप कह देगें-आत्मा। यह भी स्मृति ने सीख रखा है दो और दो चार वाला उत्तर है दे दिया गया। लेकिन स्मृति ज्ञान नहीं है। तो स्वयं की खोज में पूछते वक्त कि मैं कौन हूं उत्तर की अपेक्षा न करें क्योंकि जो भी उत्तर आएगा वह स्मृति से आएगा, झूठा होगा, सीखा हुआ होगा। सब सीखी हुई बातें झूठी होती हैं, ज्ञान नहीं बनती हैं। कुछ भी सीखा हुआ ज्ञान नहीं बनता है। जीवन में जो क्षुद्र है वह सीखा जा सकता है क्योंकि वह बाहर है। जीवन में जो विराट है वह सीखा नहीं जा सकता क्योंकि वह भीतर है। जो भीतर है उसे बाहर से नहीं सीखा जा सकता; उसे जाना जा सकता है; उसे उघाड़ा जा सकता है; उसे डिस्कवर किया जा सकता है; उसे पहचाना जा सकता है लेकिन सीखा नहीं जा सकता। उसे जाना जा सकता है लेकिन याद नहीं किया जा सकता। तो जब भी प्रश्न पूछें, पूछें कि मैं कौन हूं?
और वह मनुष्य कभी धार्मिक न हो पाएगा जिसने अपने से यह न पूछा हो कि मैं कौन हूं? और वह मनुष्य कभी सत्य को न जान पाएगा और कभी आनंद को भी उपलब्ध न हो पाएगा जिसने अपने प्राणों की सारी गहराई में न पूछा हो कि मैं कौन हूं? और अगर कोई भी उत्तर आता हो तो उत्तर को इनकार कर दें क्योंकि उत्तर सीखा हुआ होता है। स्मृति से आया हुआ होगा और स्मृति तो केवल वही जानती है जो सीख लिया गया है स्मृति उसे नहीं जानती जिसे हम नहीं जानते। जो अज्ञात है, अननोन है, जो अभी अपरिचित है उसे स्मृति नहीं जानती। स्मृति तो जो सीख लिया गया है उसका संग्रह है, स्मृति के उत्तर को इनकार करें। स्मृति कहे विष्णु हो, तो उसे जाने दें उसे पक.ड़ें न। स्मृति कहे कि आत्मा हो, तो उसे जाने दें उसे पक.ड़ें न। स्मृति कहे कि परमात्मा हो, स्मृति कहे कुछ भी नहीं केवल पदार्थ हो। अगर नास्तिक घर में पले तो स्मृति कहेगी की कुछ भी नही केवल शरीर हो। अगर धार्मिक घर में पले हैं तो स्मृति कहेगी आत्मा हो, अजर-अमर आत्मा हो। ये दोनों शिक्षाएं हैं इनको छोड़ दें। नास्तिक को, आस्तिक को जाने दें। ग्रंथों से आए हुए उत्तर को जाने दें। फिर क्या होगा जब कोई उत्तर न आएगा तो क्या होगा? जब किसी उत्तर की स्वीकृति न होगी तो क्या होगा? भीतर एक सन्नाटा हो जाएगा एक मौन खड़ा हो जाएगा, एक सायलेंस पैदा हो जाएगी। और उसी मौन से, उसी सन्नाटे से, उसी शून्य से उस चीज का अनुभव आना शुरू होता है जो स्वयं का होना है। पूछें, मैं कौन हूं? और कृपा करके किसी उत्तर को न पक.ड़ें। पूछें, मैं कौन हूं? और प्रश्न ही रह जाने दें, उत्तर नहीं। और प्रश्न को ही गूंजने दें। और प्रश्न को ही प्राणों में छाने दें, और प्रश्न को ही उतरने दें गहरा, और कोई उत्तर न पकड़े क्योंकि सभी उत्तर सीखे हुए होंगे। कोई उत्तर हिंदू का, मुसलमान का, जैन का न पकड़ें, सब उत्तर सीखे हुए होंगे। प्रश्न रह जाए मैं कौन हूं तीर की भांति प्राणों को छेदता हुआ। सिर्फ प्रश्न रह जाए मैं कौन हूं और कोई उत्तर न हो तो आप हैरान होंगे उसी अंतराल में, उसी खाली जगह में, उसी मौन में, वह किरण उतरनी शुरू होगी स्वयं की, स्वयं को जानने का पहला साक्षात, स्वयं के अनुभव का पहला बोध, पहला प्रकाश उतरना शुरू होगा।

तो आज की सुबह निवेदन करना चाहता हूं पूछें अपने से मैं कौन हूं और किसी उत्तर को स्वीकार न करें जो बाहर से आया हुआ हो। किसी उत्तर को स्वीकार न करें। चाहे वह किसी भगवान के अवतार का उत्तर हो, चाहे किसी तीर्थंकर का, चाहे किसी ईश्वर पुत्र का, चाहे किसी पैगंबर का, चाहे किसी बुद्धपुरुष का, किसी का भी उत्तर हो उसे स्वीकार न करें। परमात्मा की खोज के मार्ग पर, सत्य की खोज के मार्ग पर जो भी बीच में आ जाए उसे विदा कर दें। उससे कहो कि हट जाओ, चाहे वे तीर्थंकर हों, चाहे वह ईश्वर पुत्र हो, चाहे भगवान स्वयं हों। उनसे कहें कि रास्ता छोड़ दो। मैं जानना चाहता हूं तो मुझे किसी के भी उत्तर को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है। मैं देखना चाहता हूं तो मैं किसी की उधार आंख से नहीं देख सकता और मेरे प्राण स्पंदित होना चाहते है तो मेरा हृदय धड़केगा तो ही यह हो सकता है किसी और के हृदय की धड़कन से यह नहीं हो सकता। यह जो हमारा सीखा हुआ ज्ञान है, यह हमारे ज्ञान के जन्म में बाधा है अज्ञान नहीं झूठा ज्ञान, सीखा हुआ ज्ञान बाधा है। अज्ञान नहीं, ज्ञान, सीखा हुआ ज्ञान अवरोध है। वही रोक रहा है, वही दीवाल बन कर खड़ा है। अज्ञान तो अत्यंत निर्दोष स्थिति में खड़ा कर देगा। बहुत इनोसेंस में खड़ा कर देगा। बहुत सरलता में, बहुत निर-अहंकार स्थिति में खड़ा कर देगा। और जो इस बात को पूरा न कर सके वह आगे खोज नहीं कर सकेगा। जो अपने अज्ञान को स्वीकार न कर सके वह आगे खोज नहीं कर सकेगा। साक्रेटीज के समय में एक व्यक्ति को देवी आती थी, पता नहीं, और उस व्यक्ति से किसी ने पूछा जब वह आविष्ट था, देवी से पूछा कि यूनान में सबसे बड़ा ज्ञानी कौन है। उसने कहाः साक्रेटीज, सुकरात।
वह सुकरात के पास गया और सुकरात से पूछा कि यह घोषणा हुई है, दैवीय घोषणा है कि तुम यूनान के सबसे बड़े ज्ञानी हो। तो उसने कहा कि जाओ और देवी को कहना कि कुछ भूल हो गई है क्योंकि मैं तो जैसे-जैसे खोजता हूं, पाता हूं कि मुझसे बड़ा और कोई अज्ञानी नहीं है। जाओ, कहना कोई भूल हो गई है क्योंकि मैं तो जैसे-जैसे खोजता हूं पाता हूं मुझसे बड़ा अज्ञानी कोई भी नहीं है। जब मैं बच्चा था तो मुझमें थोड़ा ज्ञान था। कई बातें मुझे लगती थीं कि मैं जानता हूं। जब मैं जवान हुआ तो मेरा ज्ञान और कम हो गया। मुझे कई बातें पता चलीं कि वह मेरा बचपना था मैं जानता नहीं था और अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं तो मैं पाता हूं कि जो भी मैं जानता था वह कुछ भी नहीं जानता था। अब तो एक अज्ञान मुझे घेर रहा है और मुझे लगता है कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। वह व्यक्ति वापस गया और उसने जाकर कहा कि सुकरात तो कहता है कि मैं परम अज्ञानी हूं और मैं कुछ भी नहीं जानता हूं। वह व्यक्ति जो आविष्ट था वह हंसा और उसने कहा, जाओ-जाओ और उससे कहो कि इसीलिए उसे कहा वह महाज्ञानी है। कहो इसीलिए कहा कि वह महाज्ञानी है क्योंकि ज्ञान के अवतरण की भूमिका है अपने अज्ञान को पूरी तरह जान लेना, स्वीकार कर लेना, पहचान लेना। जैसे ही हम अज्ञान को स्वीकार करते हैं, जैसे ही हम जानते हैं, कि नहीं जानते हैं वैसे ही एक परिवर्तन, एक क्रांति घटित हो जाती है। वैसे ही एक पर्दा गिर जाता है, अहंकार का, जानने का, और एक मौन, और एक शांति अवतरित हो जाती है। अंतिम रूप से आज तो सिर्फ प्रश्न उठाता हूं, वह आपके भीतर गूंजे, मैं कौन हूं? लेकिन अगर वह प्रश्न मेरा है तो बेकार है उसका कोई उपयोग नहीं होगा क्योंकि जब मैं कहता हूं कि किसी दूसरे के उत्तर को स्वीकार न करना तो क्या मैं यह कहूंगा कि किसी दूसरे के प्रश्न को स्वीकार कर लेना। अगर वह प्रश्न मेरा है और आप उसे जाकर दोहराएं कि मैं कौन हूं, तो वह प्रश्न झूठा होगा, उसमें कोई बल न होगा, कोई शक्ति न होगी। वह प्रश्न आपका हो तो ही आपके प्राणों में स्पंदन ला सकता है। वह प्रश्न आपका हो तो ही आपके प्राणों में आंदोलन ला सकता है। वह प्रश्न आपका हो तो ही तीर की भांति आपके गहरे से गहरे अंतःस्थल तक पहुंच सकता है। क्या आपके भीतर प्रश्न है? क्या आपके भीतर अपना प्रश्न है? क्या जीवन आपके मन में प्रश्न नहीं उठाता है? क्या जीवन आपको जिज्ञासा से नहीं भरता है? क्या जीवन आपके सामने यह सवाल खड़ा नहीं करता है कि मैं कौन हूं यह क्या है? क्या आप एकदम बहरे और अंधे हैं? क्या आपके हृदय में कोई जिज्ञासा ही पैदा नहीं होती। अगर होती हो कोई जिज्ञासा, अगर होता हो कोई प्रश्न खड़ा, अगर होती हो कोई प्यास मन में जानने की, पहचानने की, जीवन के सत्य को पाने की, तो उसे इकट्ठा कर लें

और उसे एक प्रश्न बन जाने दें? क्योंकि जो और चीजों के संबंध में पूछने जाता है वह दूर निकल गया उसने बुनियादी प्रश्न छोड़ दिया। बुनियादी प्रश्न तो स्वयं से शुरू होता है कि मैं कौन हूं और अगर भाग्य से, सौभाग्य से आपका प्रश्न खड़ा हो जाए और दूसरों के उत्तर आप विदा कर सकें तो कोई बाधा नहीं है स्वयं को जान लेने में। कोई बाधा नहीं है। कोई बाधा नहीं है, कोई दीवाल नहीं है। लेकिन बहुतों के मन में प्रश्न ही नहीं है, बहुतों के मन में जिज्ञासा नहीं है। क्यों? यह तो असंभव है कि प्रश्न कहीं नहीं हो। यह तो असंभव है भीतर प्रश्न कहीं न कहीं न हो। फिर भी जिज्ञासा नहीं बनती मालूम पड़ती। क्या होगा कारण? कारण है साहस की कमी है। क्यों? हम केवल वे ही प्रश्न पूछते हैं जिनके उत्तर हमें मालूम हैं।
हम केवल वे ही प्रश्न पूछते हैं जिनके उत्तर हमें मालूम हैं। मजे से प्रश्न भी पूछ लेते हैं और उत्तर भी दे देते हैं और जीवन में समाधान हो जाता है। हम वे प्रश्न पूछते ही नहीं जिनके उत्तर हमें मालूम नहीं। क्योंकि उन प्रश्नों का पूछना हमारे अज्ञान का उदघाटक होगा। इसलिए डरते हैं, इसलिए भयभीत रहते हैं। उन प्रश्नों से दूर रहते हैं उन प्रश्नों से बचते हैं जिनसे हमारे अज्ञान का उदघाटन हो जाए। साहस चाहिए प्रश्न पूछने को, हिम्मत चाहिए और हमारा तो उलटा है हिसाब। जब साहस के और हिम्मत के दिन होते हैं तब तो हम कहते हैं कि यह धर्म की उम्र ही नहीं। जब बुढ़ापा आ जाए, मौत करीब आने लगे तब फिर धर्म के दिन आते हैं। जितना साहस कम होता जाए और बल कम होता जाए और जितनी खोज की आकांक्षा कम होती जाए तो हम समझते हैं कि तब धर्म के दिन आते हैं। मंदिरों में और चर्चों में बूढ़े लोग इकट्ठे हैं, जो या तो मर चुके हैं या मरने वाले हैं। वे लोग वहां इकट्ठे हैं और धीरे- धीरे यह खयाल पैदा हो गया है कि वह इन्हीं लोगों का काम है। मैं आप से निवेदन करता हूं कि बूढ़ा मन तो कभी भी धर्म के सत्य को जान ही नहीं सकता। बूढ़ा आदमी नहीं कह रहा हूं, बूढ़ा मन। बूढ़ा मन तो कभी जान ही नहीं सकता। चाहिए युवा मन, चाहिए यंग माइंड, चाहिए बल से भरा हुआ मन साहस से, दूर की यात्रा करने का, अज्ञात की यात्रा करने का साहस हो तो प्रश्न खड़े हो जाएंगे और तब वे ही प्रश्न खड़े होंगे जिनके उत्तर नहीं मालूम है।
और जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं मालूम हैं अगर वे खड़े हो जाएं तो जीवन में एक नये प्रभात की शुरुआत होती है, एक नया मंगल प्रारंभ होता है। उसकी तरफ आंखें उठनी शुरू होती हैं जो सत्य है, सुंदर है, शिव है, उसकी तरफ, जो परमात्मा है। उसकी तरफ जो हमारा वास्तविक होना है। और उसे जान कर जीवन का सारा दुख वैसे ही विर्सजित हो जाता है जैसे किसी अंधकारपूर्ण गृह में कोई दीया जला दे। और सारा अंधकार विलीन हो जाए। कैसे यह दीया जल सकता है उसकी चर्चा आने वाली चर्चाओं में मैं करूंगा। जो प्रश्न आपके हों और प्रश्न होने चाहिएं, उनको संध्या उत्तर दूंगा-आने वाले दो दिनों में। लेकिन तभी आएं जब आपको यह खयाल स्पष्ट होने लगे कि आपका कोई प्रश्न भीतर जग रहा है। अन्यथा, अन्यथा आने की कोई जरूरत नहीं है, कोई कारण नहीं है।
अगर आपको लगे कि आपको यह एहसास होता है कि आप नहीं जानते हैं, तो आएं,
तो कुछ खोज हो सकती है, तो हम मिल कर कुछ यात्रा तय कर करते हैं। तो कुछ मैं अपने हृदय की आपसे बातें कहूं। इसलिए नहीं कि आप उनको स्वीकार कर लें, इसलिए नहीं कि आप उन पर विश्वास कर लें, इसलिए नहीं कि आप उनको अपनी मान्यता बना लें, इसलिए नहीं कि मेरी बातें आपका ज्ञान बन जाएं। नहीं बन सकती हैं, और न उन्हें बनाने की जरूरत है। लेकिन इसलिए कि शायद यहां हम इकट्ठे हों और विचार करें और आपकी जिज्ञासा तीव्र हो जाए और आपकी प्यास गहरी हो जाए। और जिस प्यास से आप अपरिचित थे उसका बोध हो जाए। शायद एक खोज का प्रारंभ हो जाए। शायद एक बीज आपके भीतर टूट जाए और एक अंकुर बनने लगे। शायद एक नया जीवन और एक नई गति और एक नये मनुष्य होने की शुरुआत हो जाए। इसलिए तीन दिन थोड़ी सी बातें मैं आपसे करूंगा।
आज तो प्रश्न खड़ा करता हूं उस प्रश्न को साथ लिए जाएं। रात उसे साथ लिए सो जाएं और थोड़ा प्रयोग करके देखें। उत्तर जो भी आता हो उसे बाहर रख कर हटा दें, उत्तर जो भी आता हो उसे इनकार कर दें और प्रश्न को गहरा होने दें। जहां आपने उत्तर पकड़ा प्रश्न वहीं मर जाएगा। जहां आपने उत्तर पकड़ा प्रश्न वहीं समाप्त हो जाएगा। तो अगर प्रश्न को गहरे जाने देना है तो उत्तर मत

पकड़ना। जब प्रश्न ही प्रश्न रह जाए और कोई उत्तर मन में न हो तब, तब कोई चीज जगनी शुरू होगी। तब कोई हमारे भीतर से दौड़ेगा हमारी सहायता को। तब कोई हमारे भीतर से उठेगा हमारी सहायता को। तब हमारे भीतर कोई जगेगा जो सोया है। और वही आत्म परिचय बन जाता है, वही आत्म-ज्ञान बन जाता है। मैं कौन हूं?
शॉपनहार एक सुबह कोई तीन बजे रात जल्दी उठ गया और एक बगीचे में गया। बगीचे में था अंधेरा और शॉपनहार था विचारक, एकांत पाकर जोर-जोर से खुद से बातें करने लगा। कोई था नहीं इसलिए कोई डर भी नहीं था। कोई होता है तो हम दूसरे से बातें करते हैं कोई नहीं होता है तो हम अपने से बातें करते हैं। वह भी अपने से बात करने लगा कोई भी नहीं था। माली की नींद खुली उसने सोचा रात तीन बजे कौन आ गया है यहां। और फिर बातें करते हुए घूम रहा है, और अकेला ही मालूम होता है। माली डरा, सोचा शायद कोई पागल है। उसने लालटेन उठाई, अपना भाला उठाया और गया और दूर से ही चिल्ला कर पूछा, डर के मारे, कौन हो? शॉपनहार हंसने लगा। हंसने से माली और घबड़ा गया। निश्चित ही पागल है सुबह-सुबह आ गया, अपने से बातें करता घूमता है। पूछा कौन हो उत्तर क्यों नहीं देते? शापनहार ने कहा: मेरे मित्र, काश उत्तर दे सकता। इधर तीस वर्षों से अपने से यही पूछ रहा हूं कौन हूं? खुद को ही पता नही चलता तुम्हें क्या उत्तर दूं। लेकिन मैं आपसे कहूं कि शॉपनहार को इसीलिए पता नहीं चला कि वह पूछता तो था कि मैं कौन हूं? लेकिन बहुत से उत्तर खोजता था, उपनिषद में, यहां-वहां, कांट में, हीगल में और न मालूम कहां-कहां उत्तर खोजता था इसलिए तीस साल खराब गए। और पता नहीं शॉपनहार को मरते वक्त भी पता चला कि नहीं चला। मैं नहीं समझता कि पता चला होगा, क्योंकि तब भी वह उत्तर खोज रहा था। उत्तर खोज रहा है, भीतर प्रश्न है, उत्तर बाहर खोजे जा रहे हैं। उत्तर नहीं मिलेंगे।
मैं आपसे कहता हूंः प्रश्न में ही उत्तर छिपा है। बाहर मत खोजें। और बाहर के किसी उत्तर को स्वीकार न करें। और प्रश्न को आने दें पूरे-पूरे वेग से कि वह सारे प्राणों के रंध्र-रंध्र को भर दे, श्वास-श्वास भर दे। हृदय की धड़कन-धड़कन उससे भर जाए। प्रश्न ही रह जाए और कुछ न हो। तब वहीं, बिल्कुल वहीं प्रश्न के साथ ही उत्तर है। वह उत्तर बाहर से नहीं आता, वह उत्तर भीतर से उपलब्ध होता है।
परमात्मा करे कि वह उत्तर उपलब्ध हो लेकिन प्रश्न आपको पूछना पड़ेगा। मेरा प्रश्न नहीं हो सकता है। किसी और का प्रश्न नहीं हो सकता, तो कल अगर आपके मन में अपना प्रश्न हो तो आएं, यहां कोई व्याख्यान नहीं है, कोई उपदेश नहीं है। यहां कोई आपको कुछ समझाने का कोई रस नहीं है कोई आनंद नहीं है। वह प्रश्न उठता हो तो आएं तो फिर कुछ बात हो सकेगी तो फिर दो हृदय किसी तल पर मिल सकते हैं। और कोई बात हो सकती है।

मेरी बातों को इतने प्रेम से सुना है। और ऐसी बातों को जो आपको ज्ञान नहीं देतीं बल्कि आपके अज्ञान के लिए आग्रह करती हैं। बड़ी कृपा है और दया है, इतने प्रेम से सुना, उससे बहुत अनुगृहीत हूं। परमात्मा करे आज जो अज्ञान है वह कल ज्ञान बन जाए, आज जो अंधकार है वह कल प्रकाश बन जाए, इस कामना के साथ आज की बात पूरी करता हूं। सबके भीतर बैठे परमात्मा को मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
दूसरा प्रवचन

स्वयं की असली पहचान

मैं कौन हूं? इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल मैंने आपसे कहीं। ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान, जानकारी नहीं बल्कि न जानने की स्थिति, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग के संबंध में थोड़ी सी बातें कहीं। यदि हम उस ज्ञान से मुक्त हो सकें, जो बाहर से उपलब्ध होता है, तो संभावना है उस ज्ञान के जन्म की, जो उपलब्ध नहीं होता बल्कि आविष्कृत होता है, उघड़ता है, भीतर छिपा है, और उसके परदे टूट जाते हैं, और द्वार खुल जाते हैं। इसलिए मैंने कहा ज्ञान से नहीं बल्कि इस सत्य को जानने से कि मैं नहीं जानता हूं, मैं नहीं जानता हूं, इस भाव-दशा में ही कुछ जाना जा सकता है। मैं नहीं जानता हूं, यह स्मरण, यह स्मृति, जैसे-जैसे घनीभूत और तीव्र होगी, वैसे-वैसे मन मौन होता चला जाता है, निस्तब्ध और निःशब्द होता चला जाता है। क्योंकि सारे शब्द और सारे विचार हमारे जानने के भ्रम से पैदा होते हैं। मैं कौन हूं? यह प्रश्न तो हो लेकिन कोई भी उत्तर स्वीकार न किया जाए उस निषेध में, उस निगेटिव माइंड में, उस मनःस्थिति में जो भीतर सोया है, वह जागृत होता है। खटखटाएं द्वार को, पूछें कौन हूं, लेकिन किसी उत्तर को स्वीकार न करें, न वे उत्तर जो संसार सिखा देता है, और न वे उत्तर जो कि धर्म और अध्यात्म के नाम पर सीख लिये जाते हैं। अगर सीखा हुआ सब भूला जा सके और हम प्राणों के द्वारों को खटखटा सकें, तो जैसा क्राइस्ट का वचन है, नॉक एण्ड दि डोर शैल बी ओपन। खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे। तो मैं आपसे निवेदन करूं, जो खटखटाता है, वह पाता है द्वार बंद ही नहीं थे, द्वार खुले ही हैं। लेकिन वे लोग जो जानने के भ्रम में हैं खटखटाने से वंचित रह जाते हैं। वे लोग जो इस भ्रम में हैं कि हम जानते हैं, वे सारी संवेदनशीलता खो देते हैं जो जानने के लिए अनिवार्य है। यह कल मैंने आपसे कहा।
आज की सुबह, कल तो अज्ञान के लिए कहा, आज की सुबह रहस्य के लिए थोड़ी सी बातें कहना चाहता हूं। मन इस स्थिति में हो कि मैं नहीं जानता, तो सारा जीवन एक रहस्य की तरह, एक मिस्ट्री की तरह उदघाटित होने लगता है। और मन इस स्थिति में हो कि मैं जानता हूं, क्योंकि गीता मुझे स्मरण है और उपनिषद मुझे ज्ञात हैं, और शंकर और रामानुज और वे सब मुझे मालूम हैं इसलिए मैं जानता हूं, शब्द मुझे ज्ञात हैं, श्रुतियां मुझे ज्ञात हैं, इसलिए मैं जानता हूं, ऐसा जो मन है, वह जीवन के प्रति रहस्य को खो देता है। उसे जीवन में फिर कोई रहस्य नहीं मालूम होता। उसे जीवन फिर एक मिस्ट्री की भांति है, दिखाई नहीं पड़ता। उसे सब ज्ञात है, इसलिए जो अज्ञात है हमारे चारों ओर उसके हृदय को फिर स्पंदित नहीं करता। और सब कुछ अज्ञात है, वह बच्चा जो आपके घर में पैदा हुआ है, ज्ञात है आपको। वे आखें जो आपकी पत्नी की हैं, परिचित हैं उनसे आप। वे मित्र वे पड़ोसी, या वह पत्थर जो सड़क के किनारे पड़ा है, या वे पौधे जो आपके भवन के पास खिलते हैं, वे फूल या आकाश के तारे, या सुबह पक्षियों के गीत क्या ज्ञात है? किस चीज को हम जानते हैं? सब कुछ अज्ञात है, सब कुछ अज्ञात है। और वह सब यदि अज्ञात है, तो सब एक अदभुत रहस्य से मंडित हो जाता है। उस रहस्य का जो बोध है वह धार्मिक चित्त का पहला लक्षण है। रहस्य का जो बोध है वे धार्मिक चित्त का पहला लक्षण है। उस व्यक्ति को ही मैं अधार्मिक कहता हूं, जिसके जीवन में रहस्य का कोई बोध नहीं है। उस व्यक्ति को ही अधार्मिक कहता हूं जिसके जीवन में रहस्य का कोई बोध नहीं है। जिसके जीवन को अज्ञात मंडित नहीं किए हुए है। जिसे चारों तरफ से अज्ञात स्पर्श नहीं करता है। जिसे चारों तरफ रहस्य के अनंत-अनंत द्वार दिखाई नहीं पड़ते हैं। वह व्यक्ति अधार्मिक है। और हमारे सारे सिद्धांतों ने हमारे मन को इस भांति कस लिया है, कि हर चीज की व्याख्या उपलब्ध हो गई है इसलिए कुछ भी अज्ञात नहीं रहा है।
हम सब कुछ जानते हैं, उस शेखचिल्ली का मुझे स्मरण आता है, जो किसी गांव में था। वह सब कुछ जानता था। बड़े अच्छे लोग होंगे जिन्होंने कहा कि वह शेखचिल्ली था क्योंकि जो सब कुछ जानता है वह शेखचिल्ली होगा ही, वह पागल

होगा ही। वह सब कुछ जानता था, ऐसी कोई बात न थी जो उसे ज्ञात न हो। फिर उस गांव के राजा के भवन में चोरी हो गई। सारी राज्य की शक्ति लग गई चोरी की खोज में, लेकिन चोर का कोई पता नहीं चल सका। कोई सूत्र हाथ में नहीं आते थे कि चोर का पता चल जाए। सारे जासूस थक गए और परेशान हो गए, और तब गांव के लोगों ने कहा कि अब और कोई रास्ता नहीं है, हमारे गांव में एक ज्ञानी है उससे पूछ लिया जाए, ऐसी तो कोई बात ही नहीं है जो उसे ज्ञात न हो। उस शेखचिल्ली को बुलाने के लिए राजदूत भेजा गया, वह जैसे विचारक बैठते हैं, वैसी मुद्रा में बैठा हुआ था। रूडन का चित्र देखा होगा आपने मूर्ति देखी होगी बिग थिंकर, या तो शेखचिल्ली को देख कर बनाई होगी रूडिन ने या रूडिन ने वह मूर्ति देख ली होगी, इसलिए वह वैसे हाथ लगाए बैठा होगा। कुछ न कुछ दो में से एक हुआ होगा। वह वहां सोच-विचार की मुद्रा में बैठा हुआ था। सोच-विचार की मुद्रा से ज्यादा बचकानी और चाइल्डिश कोई बात नहीं है। वह राजा का राजदूत गया और उसने कहा कि चोरी हो गई है भवन में पता है? उसने कहा ऐसा क्या है जो मुझे पता न हो? राजदूत उसे सम्मान से राजमहल ले गए। राजा ने पूछा पता है भवन में चारी हो गई है, बहुत बहुमूल्य सामान चोरी चले गए हैं। और राज्य के सारे जासूस और खोज-बीन करने वाले पता नहीं पा सके हैं। उसने कहा, क्या है जो मुझे ज्ञात न हो? राजा प्रसन्न हुआ और उसने कहा, फिर बताओ किसने चोरी की है? उस शेखचिल्ली ने कहा एकांत में बताऊं गा। अकेले में। द्वार बंद कर लें, क्योंकि खतरा है मैं नाम लूं किसी का और बताऊं, फिर कल मैं मुसीबत में पड़ जाऊं। तो द्वार बंद कर लें। द्वार बंद कर लिए गए। राजा अकेला रह गया, फिर भी दीवालें सुन सकती हैं, इस डर से उसने राजा के कान के पास मुंह रखा जैसे गुरु कान में मंत्र देते हैं ना चुपचाप कि कोई सुन न ले, कोई देख न ले, किसी को पता न चल जाए। वैसे उस शेखचिल्ली ने कान के पास मुंह रखा और कहा, बता दूं, देखिए किसी को बताइएगा तो नहीं, मुझे झंझट में तो नहीं डालिएगा? बता दूं... ? राजा ने कहाः बताओ भी। उसने बहुत धीरे से कान में कहा, मालूम होता है किसी चोर ने चोरी की है।
और हमारे दार्शनिक क्या करते रहे हैं? और हमारे धर्म चिंतक क्या करते रहे हैं? और वे सारे लोग क्या करते रहे हैं जो कहते हैं कि ईश्वर ने दुनिया को बनाया, उनका मतलब क्या? वे सारी खोजबीन के बाद, सिर पर हाथ रखने के बाद यह बताते हैं कि जरूर किसी बनाने वाले ने दुनिया को बनाया है। यही तो कहते हैं वे। किसी चोर ने चोरी की है, यही तो कहते हैं, किसी बनाने वाले ने दुनिया को बनाया है, यह वे सारी खोजबीन के बाद कहते हैं। किसी चोर ने चोरी की है, किसी बनाने वाले ने दुनिया को बनाया है। यह सारे विचार का निष्कर्ष है। यह सारी हमारे ज्ञानी की घोषणा है। और ये जो सारी घोषणाएं हैं, ये जो सारे विचार हैं, ये जो सारे सिद्धांत हैं हम पकड़ लेते हैं और जीवन का वह जो अज्ञात स्पंदन है, वे जो अज्ञात चोटें हैं, वे जो अज्ञात हवाएं हैं, फिर वह हमें स्पर्श नहीं करती हैं, वे अपने सिद्धांतों में बंद होकर बैठ जाते हैं, सिद्धांतों में जो बंद हैं उसमें सिद्धांतों में कोई झरोखे नहीं होते। कोई खिड़कियां नहीं होतीं, सिद्धांतों में कोई द्वार नहीं होते। सिद्धांतों में कोई समझौते नहीं होते, इसलिए सिद्धांत बिल्कुल बंद दीवाल की तरह आदमी को भीतर बंद कर देते हैं। और हर चीज जो उसके द्वार पर प्रश्न लेकर खड़ी आती है, वह हर चीज का उत्तर दे देता है कि यह ऐसा है, यह तुम्हारे पिछले जन्मों का फल है। यह भाग्य है, यह परमात्मा है, यह फलां है, यह ढिकां है, हर चीज के उत्तर दे देता है, और जिस चीज का उत्तर दे देता है वह चीज उसके लिए रहस्य खो देती है। यह जो जीवन और यह जो जगत हमें हमें इतना बोर्डम इतना उबाने वाला मालूम पड़ रहा है, यह हमारे ज्ञान की वजह से मालूम पड़ रहा है। इस जीवन में अगर हम सिद्धांतों की दीवाल छोड़ कर देखना शुरू करें, अगर ज्ञान को हटा कर देखना शुरु करें, तो एक-एक चीज कितनी अदभुत है, कितनी नई, कुछ भी तो पुराना नहीं है। कुछ भी तो वैसा नहीं है, जैसा कल था। आज सुबह जब सूरज उगा, वह कभी भी नहीं उगा था, और फिर कभी नहीं उगेगा। और आज सुबह जो हवा चली थी वह कभी नहीं चली है और कभी नहीं चलेगी। और आज सुबह जो फूल खिलें हैं, वे पहली बार ही खिले हैं, और सब कुछ नया है। और सब कुछ बहुत रहस्य से मंडित है, हम क्या जान पाए हैं अभी?

एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक, जिसने विद्युत पर सारे जीवन काम किया, बिजली
के अध्ययन में, एक छोटे से गांव में विश्राम करने के लिए ठहरा हुआ था। उस गांव का स्कूल था छोटा, उस स्कूल के बच्चों ने कुछ विज्ञान के बच्चों ने कुछ चीजें बनाई थी, कुछ छोटे-छोटे उपकरण बनाये थे। स्कूल का जलसा था और स्कूल में प्रदर्शनी थी वह वैज्ञानिक भी देखने चला गया। जिस बच्चे ने सबसे ज्यादा मेहनत की थी और बिजली के कुछ खेल-खिलौने बनाए थे, वह बड़ी-बड़ी उत्सुकता से उसे समझाने लगा कि ये कैसे बनाए गए हैं, कैसे काम करते हैं, क्या-क्या इनकी खूबी है? वह वैज्ञानिक बहुत-बहुत उत्सुकता से सुनने लगा, उस बच्चे को तो पता नहीं था कि विद्युत को उतना जानने वाला जगत में शायद कोई दूसरा आदमी नहीं है। तो वह बच्चा और प्रसन्नता से सारी बातें बताने लगा। सारी बात हो जाने के बाद उस वैज्ञानिक ने पूछा बेटे एक बात पूछूं, यह बिजली क्या है? यह विद्युत क्या है? यह इलेक्ट्रिसिटी है क्या आखिर? वह लड़का बोला, यह तो हमें ज्ञात नहीं। उसके प्रधान अध्यापक ने उस लड़के से कहा, तुम्हें पता नहीं? तुम बताए जा रहे हो, यह तो विद्युत को जानने वाला सबसे बड़ा व्यक्ति है जो जीवित है। लेकिन उस सबसे बड़े व्यक्ति ने क्या कहा? उसने कहा जो यह बच्चा कह रहा है कि विद्युत को हम जानते नहीं, मैं भी यही कहूंगा कि विद्युत को हम जानते नहीं। हम क्या जानते हैं? यह जो चारों तरफ जीवन है, जो सामने द्वार पर एक पत्ती खिली है, उसको भी हम जानते हैं? एक बीज कैसे अंकुर हो जाता है, उसको हम जानते हैं? एक बीज कैसे फूल बन जाता है, उसको हम जानते हैं? कुछ भी नहीं जानते। आकाश में तारे हैं, और जमीन पर पत्थर हैं और फूल हैं और मनुष्य हैं, और आंखें हैं क्या हम जानते हैं? एक गीत का जन्म होता है भीतर, उसे हम जानते हैं? हम कुछ भी नहीं जानते, लेकिन जानने के भ्रम के कारण जीवन का यह रहस्य हमारे प्राणों को आंदोलित नहीं कर पाता है। इसलिए जानने का भ्रम छोड़ें, तो रहस्य का बोध जन्मता है। और जिस जीवन में रहस्य का बोध पैदा हो जाता है, उस जीवन में ईश्वर के आगमन की शुरुआत हो जाती है। जिस दिन रहस्य की पदचापें सुनाई पड़ें और जिस दिन मन के द्वार पर कोई अज्ञात आकर खड़ा हो जाए, जिसे हम न जानते हों, और हमारा पूरा हृदय कह सके कि मैं नहीं जानता हूं। और उस अनजान अतिथि का स्वागत कर सकें, उस दिन जानना कि धर्म का जीवन में प्रवेश हुआ है। लेकिन हम तो ज्ञान के द्वार बंद किए बैठे हैं, और जो जितना ज्यादा ज्ञान के द्वार बंद किए, बैठा है, उतना ही बड़ा पंडित है, उतना ही बड़ा ज्ञानी है।
कल मैंने पहली सीढ़ी की बात कही, अज्ञान का बोध। आज दूसरी बात कर कहता हूं रहस्य का जन्म। लेकिन चाहे धर्म-शास्त्री हों, थियोलॉजियंस हों, चाहे गणितज्ञ हों, चाहे और तरह के शास्त्री हों, चाहे वैज्ञानिक हों, जिन्होंने भी जीवन के रहस्य को नष्ट किया है या ऐसी बातें फैलाई हैं कि उनके जानने में जीवन का बोध, जीवन का अज्ञात नहीं स्पर्श करता है, उन सबने मनुष्य के जीवन में दुख को गहन किया है। आनंद को क्षीण किया है। काव्य की संभावनाएं बंद कर दी हैं। यह जो सब चारों तरफ अज्ञात फैला है, इसके प्रति हृदय खुला हुआ होना चाहिए, लेकिन ज्ञान हमें रोकता है, और न केवल ज्ञान बल्कि ज्ञान के आधार पर खड़ी की गईं शिक्षाएं हमें कठोर करती हैं, पाषाण बनाती हैं, संवेदनशील नहीं। और जो हृदय जितना कठोर और पाषाण हो जाएगा, जितनी कम संवेदनशीलता हो जाएगी, उतना ही रहस्य उसके भीतर प्रवेश नहीं कर सकेगा। लेकिन उदासीनता को, कठोरता को हम गुण मानते हैं, वैराग्य को दूर खड़े हो जाने को, अपने को बंद कर लेने को हम गुण मानते हैं। धर्म का कोई संबंध जड़ता से नहीं है। लेकिन एक आदमी जितना जड़ होता जाता है, जितना रसशून्य, संवेदन से हीन, इनसेंसिटिव, जितना ज्यादा जड़ कि उस पर किसी चीज की कोई संवेदना उसके भीतर नहीं होती, उतना ही हम मानते हैं कि यह गुण है। हम जीवन को गुण नहीं मानते, हम तो मरने को गुण मानते हैं। एक आदमी जितना मुर्दा जैसा होने लगता है, उसको हम गुण मानते हैं। हमने इसकी बहुत पूजा की है, और हमने धीरे- धीरे आदमी को पत्थर होने की शिक्षा दी है।
एक व्यक्ति के बाबत मैं सुनता था, उसकी पत्नी की मृत्यु हो गई। वह बड़े जाहिर और बहुत प्रसिद्ध व्यक्ति थे। गीता पर उन्होंने बड़ी किताब लिखी, उनकी पत्नी की मृत्यु हुई। वे शायद गीता पर अपना भाष्य लिखते होंगे या किसी और ग्रंथ पर कोई काम करते होंगे। खबर दी गई उन्हें, जाकर कहा गया कि

तुम्हारी पत्नी, तुम्हारी पत्नी ने श्वास छोड़ दी है। उन्होंने घड़ी की तरफ देखा, दीवाल पर और कहा अभी तो साढ़े चार बजे हैं, मैं तो पांच बजे के पहले उठ नहीं सकता हूं। साढ़े चार बजे थे, पांच बजे उठने का उनका नियम था रोज। तो पत्नी की मृत्यु भी उन्हें साढ़े चार बजे नहीं उठा सकी। फिर इसकी खूब प्रशंसा मैंने सुनी, कि कैसे अदभुत व्यक्ति हैं, कैसे संयमी, कैसे वैरागी, कैसे अनासक्त? और मैं हैरान हुआ, और यह जो आदर है, ऐसी कठोरता को, ऐसी हिंसा को, यह जो सम्मान है, और ऐसी बातों को जो महात्मा होना और सिद्ध होना, और अनासक्त होना समझा जाता है, इन्होंने जीवन को सारे रस, जीवन के सारे आनंद से क्षीण कर दिया है। जीवन को बहुत आघात पहुंचाए हैं ऐसे विचारों ने। किताब ज्यादा मूल्यवान है, जिसको वे लिख रहे हैं, और एक जीवित व्यक्ति विलीन हो रहा है, वह मूल्यवान नहीं है, नियम ज्यादा मूल्यवान है, पांच बजे उठने का, तो मौत को भी आना है तो पांच बजे आना चाहिए, उसके पहले नहीं। उनके नियम से आना चाहिए। ये जो नियम वाले लोग हैं, ये जो प्रिंसीपल वाले लोग हैं, इनसे ज्यादा जड़, इनसे ज्यादा पाषाण हृदय और कोई भी नहीं होता है। इसकी खूब शिक्षा हुई है, धर्म के नाम पर। और एक आदमी जितना अपने को कठोर कर ले, और कठोर कौन कर सकता है, अपने को? ज्ञात है कौन कर सकता है, कौन? कठोर वही कर सकता है अपने को जो, दूसरों के प्रति बहुत हिंसक होता है, अगर कहीं वह अपने प्रति हिंसक हो जाए तो कठोर हो सकता है। जो दूसरों के प्रति हिंसक हो जाए तो कठोर हो सकता है। जो दूसरों के प्रति बहुत वायलेंट होता है, बहुत हिंसक होता है, दुष्ट होता है, अगर वह अपनी सारी दुष्टता को दूसरों से अलग कर ले, तो वह अपने प्रति दुष्ट हो जाएगा। जो दूसरों के प्रति बहुत हिंसक होता है, अगर वह अपनी हिंसा को दूसरों से खींच ले तो वह अपने प्रति हिंसक हो जाएगा। तब वह अपने को सताना शुरू कर देगा।
मैं आपसे निवेदन करता हूं, चाहे कोई दूसरों को सताए, चाहे अपने को, इसमें कोई भेद नहीं है, दोनों ही सताना है। इसमें कोई भेद नहीं है। जो लोग दूसरों को सताना जबरदस्ती रोक लेते हैं, और बंद कर देते हैं वे अपने को सताना शुरू कर देते हैं। और इसे हम साधना समझते हैं। इसे हम साधना समझते हैं। कोई अपनी आंखें फोड़ लेता है तो हम समझते हैं कि कितनी बड़ी साधना है। और कोई अपने शरीर को जलाता है, और कांटों पर लिटाता है और उलटा-सीधा खड़ा रहता है, तो हम सोचते हैं कितनी बड़ी साधना? और इस सब भांति वह कठोर होता चला जाता है। और उसकी सारी संवेदना के तंतु जड़ होते चले जाते हैं। न उसे फिर सौंदर्य का बोध होता है, न उसे फिर जीवन के रहस्य का अनुभव होता है, उसकी सब सारी खिड़कियां, सारे झरोखे सब बंद हो जाते हैं। वह एक अहंकार की प्रतिमा होकर खड़ा रह जाता है। ये जो सारी संवेदनहीनता को प्रशिक्षित करने की सारी शिक्षाएं हैं, ये मनुष्य को धार्मिक नहीं होने दिया है।
एक साधु के बाबत मैंने सुना है, वे कोई पन्द्रह वर्ष पहले अपने घर-द्वार को छोड़ कर, अपनी पत्नी और बच्चों को छोड़कर साधु हो गए। पन्द्रह वर्ष बाद काशी में थे और खबर आई कि उनकी पत्नी मर गई है, तो वे हंसे और बोले चलो झंझट मिटी। मैं बहुत हैरान हुआ, जिन्होंने मुझे खबर दी उन्होंने कहा कि कैसे परमत्यागी हैं, कि उन्होंने कहा पत्नी के मरने पर कि चलो झंझट मिटी। मैंने कहाः मैं बहुत हैरान हूं, पंद्रह वर्ष पहले जिसे छोड़ कर चले आए थे, वह अब भी झंझट थी? क्या अर्थ है इस बात का? वह पत्नी अब भी झंझट थी, जो उसके मरने से मिटी। और जो पंद्रह वर्ष छोड़ने से जिसकी झंझट नहीं मिटी, उसके मरने से क्या मिट जाएगी? पंद्रह वर्ष दूर रहने से जो नहीं मिटी, तो अब क्या फर्क पड़ जाएगा? मैंने कहा और यह भी स्मरण रखें कि जिस आदमी ने यह कहा हो पत्नी के मरने पर कि मेरी झंझट मिटी, वह आदमी मन ही मन में कई दफा सोचा होगा कि यह मर जाए। निश्चित इसमें कोई शक नहीं हो सकता, उसने कई बार सोचा होगा कि यह मर जाए। तभी तो मरने से लगा कि झंझट मिटी। ये कठोर, क्रूर और हिंसक हृदय हैं। ये बहुत गहरी हिंसा से भरे हुए हृदय हैं। और ये जीवन के समस्त रहस्य के प्रति जड़ हो जाते हैं। और फिर इनकी परमात्मा की, और ब्रह्म की और आत्मा की सारी बातें झूठी और थोथी होती हैं, क्योंकि जहां जीवन में रहस्य नहीं, संवेदना नहीं, जहां जीवन के प्रति सब खुला हुआ हृदय नहीं, वहां कहां परमात्मा? वहां कहां परमात्मा प्रवेश करेगा? वहां कहां, वहां कहां वे पैर, वे पदचापें सुनाई पड़ेंगी, कहां वह संगीत पैदा होगा? इसलिए मैं निवेदन करता

हूं, धर्म को, धार्मिक जीवन को, कठोर हृदय लोगों ने जिन्होंने अपनी सारी कठोरता को अपने ऊ पर लौटा लिया है; उन सारे लोगों ने धर्म को नुकसान पहुंचाया है। उन्होंने धर्म के जन्म को ही रोक दिया है, अवरुद्ध कर दिया, कुंठित कर दिया है। इसलिए मैं कहता हूं वे लोग नहीं जो कांटों पर लेटे हैं, वे लोग नहीं जो लंबे उपवास करके मरने के आयोजन कर रहे हैं, वे लोग नहीं जो दूषित, जबरदस्ती सह कर शरीर को कष्ट दे रहे हों, वे लोग नहीं जो अपने ही शत्रु होकर खड़े हो गए हैं, उन लोगों ने नहीं जाना है, नहीं जान सकते हैं। नहीं जान सकते हैं उसको जो परमात्मा है। वरन वे लोग जिन्होंने अपने हृदय को सरल किया है, प्रेम से भरा है, जिन्होंने सौन्दर्य को पहचाना है और अनुभव किया है, और जिन्होंने जीवन के रहस्य को द्वार दिया है अपने भीतर; उन लोगों ने जाना है, कहीं ज्यादा जाना है। उन्होंने कहीं ज्यादा जीया है। जैसे मैंने कल संध्या कहा शायद महात्माओं ने उतना नहीं, साधुओं ने उतना नहीं; वरन उन लोगों ने जिनके जीवन में काव्य है, प्रेम है, सौंदर्य है, संगीत है, उन्होंने कहीं ज्यादा जाना है और जीया है। उन्होंने कहीं ज्यादा पाया है, कहीं वे ज्यादा हुए हैं। कहीं उनके भीतर कोई अवतरित हुआ है, कोई अज्ञात संगीत उनके भीतर पैदा हुआ है, उन्होंने कोई अज्ञात ध्वनि सुनी है। उन्होंने कोई अननोन, वह जो सब तरफ हमें घेरे है, उससे कोई संबंध पाया है। कोई तालमेल, कोई हार्मनी, कोई जोड़ उनका हुआ है, चारों तरफ जो फैला है, उससे। उनका नहीं जिन्होंने अपनी अस्मिता को साधा हो, और जो कठोर होते गए हों, और धीरे-धीरे अहंकार की प्रतिमाएं होकर रह गए हों। उन्होंने नहीं, बल्कि उन्होंने जो विरल हो गए हों, तरल हो गए हों, जो पिघलते गए हों, पिघलते गए हों, और जिन्हें खोजना मुश्किल हो गया हो, बाद में कि वे कहां हैं? उन्होंने शायद, उन्होंने शायद जाना है, वे ही जान सकते हैं कोई और जान नहीं सकता। संवेदनशील हृदय ही ज्ञान को उपलब्ध होता है, कोई और नहीं। तो मन तो न जानने की स्थिति में हो और हृदय संवेदना के स्पंदन से भरा हो, मन तो न जानने की स्थिति में हो, स्टेट ऑफ नॉट नोइंग में हो, और हृदय, हृदय के सारे द्वार खुले हों रहस्य के लिए। हृदय रहस्य से पूर्ण होता चला जाए, और मन, और बुद्धि, ज्ञान से शून्य होती चली जाए, तो वह घटना घटती है, जहां जाना जाता है कि मैं कौन हूं, और जहां जाना जाता है कि सब क्या है?
यह जो हृदय का स्पंदन है, इस पर थोड़ी सी बात विचार कर लेनी जरूरी है, और
यह जो मैं कह रहा हूं कि काव्यशील हृदय जान पाते हैं, इससे यह मतलब मत समझ लेना कि जो कविताएं लिखते हैं वे जान पाते हैं। क्योंकि कविताएं लिखना बहुत आसान है और काव्यपूर्ण होना बहुत कठिन। सभी कविताओं में काव्य नहीं होता है। और सभी कवि काव्यहृदय से पूर्ण नहीं होते। शब्दों के तर्क से फिलोसफी पैदा हो जाती है। शब्दों की तुक से कविता पैदा हो जाती है, और तुकबंदी में कुशल भी कवि हो सकते हैं। कवि तो क्या राष्ट्रकवि भी हो सकते हैं, तुकबंदी आनी चाहिए और दिल्ली में रहने का ढंग आना चाहिए, तो राष्ट्रकवि भी हो सकते हैं, कवि तो बहुत साधारण सी बात है। कोई शब्दों की तुकबंदी से नहीं कोई कवि हो जाता है। हृदय का तालमेल उस विश्व से जो हमारे चारों तरफ व्याप्त है, उस सत्ता से जिसमें हम हैं, और प्रतिक्षण उससे जु.ड़े हैं। प्रतिक्षण कुछ हमारे भीतर से बाहर जाता है, और कुछ हमारे भीतर आता है। बाहर और भीतर के शब्द दो विरोधी शब्द नहीं हैं, और बाहर-भीतर कोई दो विरोधी आयाम नहीं हैं, कोई दो विरोधी डायमेंशन नहीं हैं। बाहर और भीतर किसी एक ही चीज के दो छोर हैं।
समुद्र में तूफान आता है, अज्ञात किनारों तक आकर लहरें छू जाती हैं और फिर वापस लौट जाती हैं। वही लहर किनारे को छूती है, वही फिर वापस लौट जाती है। एक ही लहर के दो छोर हैं--किनारा और सागर। जिसे छूती है वह, और जिसे छूकर लौट जाती है वह। मेरी श्वास, आपकी श्वास प्रतिक्षण बाहर जा रही है, और फिर भीतर आ रही है, और फिर बाहर जा रही है। श्वास के दो छोरों पर एक तरफ बाहर है, एक भीतर। बाहर और भीतर दो विरोधी बातें नहीं बल्कि किसी एक ही चीज के दो छोर हैं। और जो इतना लीन हो जाता है कि बाहर और भीतर दो न रह जाएं, बल्कि किसी एक छोर का अनुभव होने लगे तो तालमेल पैदा हुआ, तो काव्य पैदा हुआ। तो ऐसी स्थिति में काव्य से हृदय परिपूर्ण होगा। जब बाहर और भीतर दो न रह जाएं।

सुकरात एक रात घर वापस नहीं लौटा। चिंतित हुए होंगे मित्र खोजने गए, देखा तो एक वृक्ष से टिका हुआ था। बर्फ पड़ गई थी, और पैर जड़ हो गए होंगे, और पलकें एकटक टिकी थीं। और आंखें तारों को देख रही थीं। उन्होंने जाकर हिलाया, बहुत हिलाया, तो जैसे वह कहीं से वापस लौटा। और उसने कहा, क्या बात है? क्या बहुत देर हो गई? उसके मित्रों ने कहा, रात बीतने को है, पैर जड़ हो गए होंगे, बर्फ पड़ी है, सर्द हवाएं हैं, क्या कर रहे हैं? उसने कहा, कर कुछ भी नहीं रहा, तारों से एक हो गया था। मैं था ही नहीं, कुछ था जो मेरे और तारों के बीच था। मैं नहीं था। तालमेल, हार्मनी।
चीन में एक राजा को एक मुर्गे की मोहर बनवानी थी। राज्य की सील बनवानी थी। राज्य का प्रतीक बनवाना था। उसने खबर भेजी, उसने खबर भेजी गांव-गांव में कि जो चित्रकार सर्वश्रेष्ठ मुर्गे के चित्र को बना लाएगा, उसे बहुत पुरस्कार दिया जाएगा। एक वृद्ध चित्रकार आया और उसने कहा, मैं बहुत बूढ़ा हो गया हूं, हाथ मेरे कंपते हैं, इसलिए शायद मैं तो चित्र नहीं बना सकूंगा, लेकिन राज्य को मैं अपनी थोड़ी सेवाएं अर्पित करना चाहता हूं। और वह यह कि जो चित्र आएं, मुझसे पूछ लिया जाए कि कौन सा चित्र बना ठीक, कौन सा नहीं? और जब तक मैं स्वीकृति न दूं तो राज्य की मोहर न बनाई जाए। राजा खुद भी इस खयाल में था कि कोई वृद्ध कलागुरु मिल जाए, जो जांच सके। लेकिन बूढ़ा बहुत अजीब रहा होगा, जो भी चित्र आए सुंदर से सुंदर वह एक बंद कमरे में जाता और लौटता और कहता कि नहीं अभी चित्र बना नहीं, वापस भिजवा देता। वर्ष बीता, दो वर्ष बीता, राजा घबड़ाया, उसने कहा कोई चित्र कभी स्वीकार करोगे या नहीं? श्रेष्ठ और सुंदर चित्र आए हैं, आखिर अस्वीकार करने का मापदंड क्या है? कैसे जानते हो कि ये ठीक नहीं हैं? उसने कहा कि आओ, वह अपने कमरे में ले गया, और उसने राजा से कहा कि चित्रों को मैं यहां रखता हूं और एक मुर्गे को कमरे के भीतर लाता हूं, अगर वह मुर्गा उस चित्र को पहचान लेता है, उस चित्र में बने मुर्गे को तो मैं समझूंगा, कि हां चित्र बना। और अगर मुर्गा बिना उसे देखे कमरे में घूमता रहता है, और निकल जाता है तो मैं समझता हूं कि नहीं बना। जिसने बनाया है उसने दूर से बनाया है, उससे मुर्गे का कोई तालमेल नहीं है।
राजा बहुत हैरान हुआ कि मैंने कभी कल्पना भी नहीं की कि मुर्गों के द्वारा परीक्षा करवाई जा रही होगी चित्रों की। अब मुर्गे क्या समझेंगे। लेकिन उस चित्रकार ने कहा जिस दिन बनेगा मुर्गे का चित्र तो उस दिन मुर्गा नहीं समझेगा तो कौन समझेगा? बाहर आकर मुर्गा ठिठक कर खड़ा हो जाएगा, लड़ने को तैयार हो जाएगा, आवाज दे देगा, दूसरा मुर्गा भीतर होगा। लेकिन चित्र अगर मुर्दे हैं, तो मुर्गे नहीं पहचानेंगे, वे निकलेंगे घूम कर निकल जाएंगे। कोई आदमी पहचान सकता है कि मुर्गे का है लेकिन जब मुर्गा पहचान ले तो कोई बात हुई। लेकिन नहीं कोई ऐसा चित्र नहीं आ सका, जिन्होंने बनाया था, वे चित्रकार न रहे होंगे। उन्होंने मुर्गे के शरीर को तो बना दिया था, लेकिन मुर्गे की आत्मा को नहीं पकड़ पाए थे। शरीर को तो बना देना बहुत सरल है, आत्मा को, लेकिन आत्मा को तो वही पकड़ सकता है, जो आत्मा के साथ एक हो जाए। आखिर उस बूढ़े ने कहा कि नहीं यह नहीं होगा, मुझे खुद ही बनाना पड़ेगा। लेकिन बड़ी कठिनाई है, मैं बच पाऊं या न बच पाऊं इसलिए तो मैंने कहा था कि सत्तर वर्ष का हुआ बूढ़ा हूं, लेकिन मुझे ही बनाना पड़ेगा। राजा ने कहा, दो वर्ष व्यर्थ खोए कभी का बना देते, उसने कहा कि नहीं अभी तीन वर्ष और लग जाएंगे। राजा ने कहा क्या इतना कठिन है बनाना? उसने कहा नहीं बनाना कठिन नहीं है, लेकिन मुर्गे के साथ एक हो जाना बड़ा कठिन है। तो मुझे तीन वर्ष के लिए छुट्टी दे दी जाए, अब मैं जंगल जाता हूं, और देखता हूं कि इस बुढ़ापे में तालमेल बन सकता है कि नहीं बन सकता।
वह कलाकार जंगल गया, कोई छह महीने बाद राजा ने अपने कुछ मित्रों को भेजा कि जाओ देखो वह जिंदा है या नहीं, और करता क्या है वहां, और जंगल में कितने दिन लगाएगा? लोग गए, वह जंगली मुर्गों के पास लेटा हुआ था। और उसने उन्हें वापस लौटा दिया कि अभी बहुत देर है। अभी बहुत देर है, जब तक मैं मुर्गा न हो जाऊं तब तक आना मत। लौटकर उन्होंने कहा कि पागल है मालूम होता है बूढ़ा वह कहता है कि जब तक मैं मुर्गा न हो जाऊं, वह मुर्गा हो जाएगा तो मुर्गा बनाएगा कौन? मुर्गे तो वैसे ही बहुत हैं। लेकिन तीन वर्ष

प्रतीक्षा करनी पड़ी और तीन वर्ष बाद लोग उसे पकड़कर लाए। वह आया तो उसने आकर राजदरबार में जोर से मुर्गे की बांग दी। सारे दरबारी हैरान हो गए, और उन्होंने कहा कि यह तो ठीक है कि बांग आप देना सीख आये, लेकिन चित्र कहां है? उसने कहा चित्र बना देना तो अब एक क्षण का काम है, आत्मा को पकड़ना था। वह बहुत मुश्किल था, वह हो गया। मैंने मुर्गे को भीतर से जाना, और तब उसने तूलिकाएं बुलाईं और वहीं खड़े-खड़े चित्र बना दिया। और मुर्गे लाए गए, वे मुर्गे देख कर उस मुर्गे को घबड़ा कर खड़े हो गए, और आवाज देने लगे, वह मुर्गा जिंदा था। कहीं किसी तालमेल से किसी हार्मनी से पैदा हुआ था।
उन्होंने जाना है जिन्होंने जीवन के प्रति कोई तालमेल उपलब्ध कर लिया है, कोई एकता, कोई एकांतता उपलब्ध कर ली है। लेकिन वह व्यक्ति जो अपने हृदय को कठोर कर लेता है और सारी संवेदना के द्वार बंद कर लेता है वह कैसे एक हो पाएगा? नहीं हो पाएगा, नहीं हो पाएगा, कोई रास्ता नहीं है उसके एक हो जाने का। इसलिए वह धर्म जो तोड़ता हो जीवन के रस से, जो तोड़ता हो जीवन के रहस्य से, जो तोड़ता हो जीवन के आंसुओं से, और जीवन की मुस्कुराहटों से, जो कठोर करता हो और पाषाण बनाता हो, वह धर्म नहीं है, वह केवल अहंकार की पूजा है। और व्यक्ति जितना कठोर होता जाता है उतनी उसकी अस्मिता गहरी और घनी होती जाती है। अहंकार की पूजा धर्म नहीं है।
एक साधु मरा, उसके शिष्य के बाबत बड़ी ख्याति थी, बड़ी ख्याति थी। लेकिन साधु मरा, गुरु मरा तो वह जो शिष्य था, जिसकी बड़ी ख्याति थी, वह तो रोने लगा, उसकी आंख से आंसू गिरने लगे। तो लोगों ने कहा यह क्या करते हो? रोते हो, और तुम तो कहते थे आत्मा अमर है, और शरीर मर जाता है, तो रोते हो। तो उसने कहा मैं शरीर के लिए ही रोता हूं, कितना सुंदर था। कितना अदभुत था, कितना रहस्यपूर्ण था? आत्मा के लिए रोता भी नहीं, मैं शरीर के लिए ही रोता हूं। उसके मित्रों ने कहा तुम रोते हो यही देख कर हमें हैरानी होती है क्योंकि हम तो सोचते हैं कि जिनकी आंखों में आंसू न आ सकें, और जिनके चेहरों पर मुस्कुराहट न आ सके, वे ही लोग, वे ही लोग सन्यासी हैं। वे ही लोग साधु हैं। उस व्यक्ति ने कहा, कभी मैं भी वैसा ही सोचता था। आंखें पत्थर जैसी बनाई जा सकती हैं, होंठ ऐसे सख्त बनाये जा सकते हैं कि उन पर मुस्कुराहट लानी भी हो तो न लाई जा सके। और आंखें ऐसी पत्थर बनाई जा सकती हैं कि आंसूं उनमें न आएं, लेकिन तब भीतर हृदय भी पत्थर हो जाता है, और तब भीतर भी पाषाण हो जाता है। और तब भीतर भी जड़ता हो जाती है। और जितना भीतर सब जड़ हो जाता है, उतनी तरलता खो जाती है, उतनी संवेदनशीलता खो जाती है, उतने जोड़ खो जाते हैं, उतने मिलन के सब रास्ते खो जाते हैं।
धर्म है मिलन, धर्म है जुड़ जाना। धर्म है सबसे जुड़ जाना। कैसे जुड़ेंगे अगर हम अपने को तोड़ते चले गए? इसलिए मैंने कहा, काव्यपूर्ण हृदय चाहिए। काव्य पूर्ण हृदय चाहिए, गीत से भरा हुआ, संवेदनशील जीवन जो चारों तरफ फैला है उसकी प्रत्येक संवेदना को अनुभव करता हुआ। न ऐसा हो, ऐसा न हो पाये तो फिर कोई रास्ता नहीं है, फिर कोई मार्ग नहीं है, फिर कोई द्वार नहीं है। फिर पहुंचने की कोई सुविधा नहीं है। फिर नहीं पहुंचा जा सकता परमात्मा तक। बैठ कर राम-राम जपने से कोई नहीं पहुंचता है। और न मंत्रों के पाठ से, और न मंदिरों की पूजा से। क्योंकि हम तो देखते हैं कि मंदिरों में जाने वाले और भी जड़ हो जाते हैं। आखिर मंदिरों में जाने वाले लोगों ने क्या नहीं किया है दुनिया में? कितनी हिंसा उनके नाम पर है? हिंदू और मुसलमान के, जैन और बौद्ध के, ईसाई और पारसी के नाम पर कितनी हिंसा है? और मंदिरों और मस्जिदों के नाम पर कितनी हिंसा है? और इन मूर्तियों और इन ग्रंथों, और इन संप्रदायों के नाम पर कितनी कठोरता है, कितनी हिंसा है? ईसाइयों ने कितने आदमी नहीं मार डाले, मुसलमानों ने या दुनिया के और धर्मों ने क्या नहीं किया है? कितनी हत्याएं नहीं की हैं, कितना खून नहीं किया है? यह कैसे संभव हुआ है, यह कठोरता कैसे संभव हुई है? यह उसी कठोर पाषाण हृदय की शिक्षा से संभव हुआ है। वे हृदय जो संवेदनहीन हो गए हैं, जिन्होंने संवेदना खो दी है, उनकी मूर्तियां खतरनाक हो जाएंगी, उनके मंदिर खतरनाक हो जाएंगे।
एक रात जापान के किसी मंदिर में एक युवक साधु आकर ठहरा। रात थी बहुत सर्द, बहुत ठंडी, वह मंदिर में गया, लकड़ी की मूर्तियां थीं, वह बुद्ध की एक

मूर्ति उठा लाया और आग लगाकर सेकने लगा, तापने लगा। मंदिर में आग लगी, लकड़ियां चटकी होंगी मूर्ति की पुजारी जागा होगा, भागा हुआ आया, देखा तो वेदी पर तीन प्रतिमाएं थी, दो ही बची हैं। घबड़ा गया, आकर देखा तो प्रतिमा तो जल चुकी है। वह साधु बैठ कर ताप रहा है। पुजारी सोच सकते हैं, किस हालत में नहीं आ गया होगा? उसने उस साधु की गर्दन पकड़ ली और कहा, पागल यह क्या किया? भगवान को जला डाला। वह साधु बोला, भगवान... ! एक छोटी सी लकड़ी उठा कर वह राख को कुरेदने लगा, उस पुजारी ने पूछा क्या करते हो? उसने कहा भगवान की अस्थियां खोजता हूं। वह पुजारी ने गर्दन छोड़ दी और कहा कि मैं तो समझ ही गया कि तुम पागल हो। एक तो मूर्ति जला डाली और अब दूसरा पागलपन यह करते हो कि अस्थियां खोजते हो। लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां कहां? तो उस साधू ने कहा मित्र रात अभी बहुत बाकी है, और सर्दी भी बहुत है, मूर्तियां अभी दो और रखी हैं, एक और उठा लाओ। लेकिन पुजारी ने तो धक्के देकर उस आदमी को बाहर निकाल दिया। और सुबह गांव के लोगों ने क्या देखा? वह आदमी सड़क के किनारे एक पत्थर को रखकर उसकी पूजा कर रहा था। तो लोगों ने कहा बड़े पागल मालूम होते हो, भगवान की मूर्ति जला दी और पत्थर की पूजा करते हो। उस आदमी ने कहा, जहां भी देखता हूं भगवान को ही देखता हूं। और जो आंखें मंदिर की मूर्ति में ही भगवान को देखती हैं, वे आंखें सारे संसार में कैसे भगवान को देख सकेंगी? और जो लकड़ी की मूर्ति थी, उसमें भी भगवान था, तो जो आग की लपटें थी उनमें भी भगवान था। और यह जो गरीब साधू आग ताप रहा था, इसमें भी भगवान ही था। इस पत्थर में भी भगवान हैं, ऐसे पूजा चौबीस घंटे चल रही है।
जैसे हृदय संवेदनशील होगा, वैसे थोथी मूर्तियां तो जल जाएंगी, वैसे
मन पर बैठे इमेजिज तो चले जाएंगे, क्योंकि सभी मूर्तियां संकुचित करती हैं और संकीर्ण करती हैं। और रोकती हैं आबद्ध करती हैं, लेकिन किसी विराट अमूर्त भगवान का धीरे-धीरे स्मरण और बोध शुरू होगा और उसकी पूजा श्वास-श्वास से चलनी शुरू हो जाएगी। और रास्ते पर भौंकते कुत्ते में भी वह दिखाई पड़ेगा, और आकाश के तारों में भी। लेकिन बहुत आसान है आकाश के तारों में देख लेना, घर के बच्चे में भी वही दिखाई पड़ेगा, पत्नी में भी, पति में भी। सब तरफ, सब कुछ में। उसे देखने के लिए, उसे जानने के लिए, और उसे बाहर सब तरफ जो अनुभव न कर पाएं, उस रहस्य को, उसकी लौटती धारा भीतर भी अनुभव न कर पाएगी, जब बाहर सब तरफ रहस्य से भर जाता है हृदय, तो श्वासें जब भीतर की तरफ लौटती हैं तो भीतर भी रहस्य का अनुभव होता है। बाहर जो यात्रा हो रही है, वही तो भीतर लौट रही है, वे ही श्वासें जो बाहर जा रही हैं, भीतर आ रही हैं। वे ही प्राण, वही बोध, बाहर और भीतर डोल रहा है। बाहर जब अनुभव होगा रहस्य का, तो भीतर भी होगा।
राबिया एक दिन अपने झोंपड़े में बैठी थी। बाहर उसका एक मित्र आया हुआ था। सुबह सूरज उगने लगा, बड़ी सुंदर सुबह थी, सभी सुबह सुंदर होती हैं। बाहर उसके मित्र ने चिल्ला कर कहाः राबिया! क्या करती हो भीतर? बाहर आ जाओ कितना सुंदर सूरज उगा है? भगवान ने कैसी नई सुबह दी है? पक्षी कैसे गीत गाते हैं? आकाश कैसी रंगबिरंगी बदलियों से भरा है, आओ बाहर। राबिया ने कहा, हसन! मैं तो बाहर भी रही हूं, मैंने भी सूरज उगते देखा, मैंने भी बादल चलते देखे, लेकिन क्या तुम भीतर आओगे, क्योंकि तुम जिसे बाहर देख रहे हो, जिसने उसे बनाया, उसे मैं भीतर देख रही हूं। उसने कहा हसन, कृपा करो, तुम ही भीतर आ जाओ। यह जो बाहर है, इससे भी विराटतम, इससे भी सुंदर, इससे भी गहरा, इससे भी प्राणवान भीतर है। क्योंकि जितने भीतर घुसेंगे, क्योंकि वह भीतर मेरा नहीं है, वह सबका ही भीतर है। जितने भीतर घुसेंगे और जितने गहरे, क्योंकि वह मेरा भीतर नहीं है, सबका ही भीतर है। जैसे-जैसे हम केंद्र की तरफ और गहरे जाएंगे, वैसे-वैसे और विराट, और रहस्य, और सूक्ष्म के दर्शन होने शुरू हो जाएंगे। वैसे-वैसे और, और, और अज्ञात, और अज्ञात हमें छूने और स्पर्श करने लगेगा। बाहर देखें। लेकिन सरल है कि बाहर से शुरू करें। सरल है कि बाहर से शुरू करें। सहज है कि बाहर से शुरू होने दें। कभी कोई सुंदर चेहरा देखा है, कहेंगे कि जरूर देखा है, और मैं निवेदन करूंगा कि नहीं देखा होगा। सुंदर चेहरे को देखने के लिए जैसे रहस्यपूर्ण हृदय चाहिए, वह है? सुंदर आंखें देखी हैं, कभी कोई मौन आंखें देखी हैं, कभी कुछ सुंदर देखा है? अगर देखा होता तो यहां कैसे आते? यहां आने की क्या जरूरत थी? यहां आने का

क्या प्रयोजन था? यहां घंटे भर इस बंद भवन में बैठने का कौन सा कारण था? बाहर सुंदर मौजूद है, सूरज आज भी निकला है, किरणें आज भी फैल रही हैं, पत्ते आज भी हंसते होंगे, फूल आज भी खिले होंगे। पक्षी आज भी गीत गाये होंगे। बाहर सब मौजूद है, यहां बैठने का क्या कारण था?
मैं तो उस दिन की रोज-रोज प्रतीक्षा करता हूं कि जिस दिन मैं आऊं और पाऊं कि भवन खाली है, और कोई भी नहीं आया है, क्योंकि बाहर सूरज है, बाहर तारे हैं, वहां लोग हैं। तो उस दिन, उस दिन खुश हो जाए मन, आनंद से भर जाऊं कोई भी अब नहीं आता सुनने, क्योंकि बाहर लोग देखने में तल्लीन हैं, होने में, जानने में। लेकिन हम तो, हम तो शब्दों में जीते हैं, शब्दों को पकड़ते हैं, और शब्दों से भर लेते हैं, और शब्दों से भरा हुआ हृदय सब संवेदना खो देता है। शब्द से खाली हों, सौंदर्य से भरें, ज्ञान से खाली हों और रहस्य से भरें। और ज्ञात को छोड़े और अज्ञात को आने दें। और जैसे-जैसे हृदय अज्ञात से भरता जाएगा, वैसे-वैसे जानेंगे क्या है बाहर? वैसे-वैसे जानेंगे क्या है भीतर? और तब तो भीतर और बाहर के भेद गिर जाते हैं। तब तो सिर्फ जानना रह जाता है, तब तो सिर्फ होना रह जाता है। उस होने में ही उसका बोध है, कहीं उस सब हो जाने में ही, उसका अनुभव है। मैं कौन हूं? उसका वहां उत्तर है, लेकिन वह इसका उत्तर नहीं होगा कि मैं कौन हूं? वह इसका भी उत्तर होगा कि सब क्या है? जिस दिन मैं अपने इस भीतर छुपे हुए रहस्य को जानने में समर्थ हो जाऊं मैं सबके भीतर, सबके भीतर उस रहस्य को जानने में समर्थ हो जाता हूं। तो खटखटाएं, पूछें भीतर, भीतर से भीतर उठने दें इस प्रश्न को और किसी उत्तर को न पकड़ें और देखें बाहर आंखें खोलें, और पहचानें बाहर अज्ञात को, और किसी उत्तर को बीच में न आने दें, किसी व्याख्या को बीच न आने दें। तो मैंने कल और आज दो बातें कहीं हैं, पूछें मैं कौन हूं? और किसी सीखे हुए उत्तर को बीच में न आने दें। और देखें बाहर कि क्या है? और किसी व्याख्या को किसी सिद्धांत को बीच में न आने दें। तो बाहर रहस्य का बोध होगा, और भीतर भी। और जब दोनों के बीच तालमेल होगा, दोनों के बीच हार्मनी होगी, संगीत होगा, संवाद होगा तो उसका जन्म होता है जिसे मैं ज्ञान कहूं। तो उसके द्वार खुलते हैं जो ज्ञान है। और साथ ही उसके भी द्वार खुल जाते हैं, जो प्रेम है। क्योंकि रहस्य प्रेम को जन्म दे देता है। और उसके भी द्वार खुल जाते हैं जो आनंद है, क्योंकि आनंद प्रेम की सुगंध के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। लेकिन जो कठोर हैं, वे अभागे हैं। और जो सब भांति कठोर होते चले जाते हैं, तथाकथित साधक, जो सब भांति कठोर होते चले जाते हैं, और अपने को रोकते चले जाते हैं, रोकते चले जाते हैं, वे जड़ हो जाते हैं। और पत्थर हो जाते हैं। जरूर वे यह घोषणा कर सकते हैं कि, अहं ब्रह्मास्मि! मैं ही ब्रह्म हूं और फलां और ढिकां। लेकिन वे जान नहीं सकते हैं, वे जान नहीं सकते क्योंकि वे जानते तो ब्रह्म बच रहता है और मैं खो जाता है। क्योंकि वे जानते तो वे कहते कि ब्रह्म है और मैं नहीं हूं। लेकिन वे कहते हैं मैं ब्रह्म हूं। वे जानते तो वे कहते कि ब्रह्म है और मैं नहीं हूं। और इस होने में ही, इस होने में सारी कृतार्थता और धन्यता छिपी है।
ये थोड़ी सी बातें आज कहीं, कुछ खयाल में आएगा तो कल कुछ और इस संबंध में कहूंगा। शायद थोड़ी सी बातें कहने जैसी और हों। लेकिन कहने का तो कोई बहुत मूल्य नहीं है। सुनने का मूल्य है, मेरा काम तो मैं पूरा कर देता हूं कहने का, पता नहीं आप सुनते हैं या नहीं सुनते। वह आपकी तरफ है। थोड़ी सी बातें कल और कहूंगा। प्रेम से मेरी बातों को सुना है, परमात्मा करे इतने ही प्रेम से परमात्मा को सुन सकें। प्रेम से इतनी देर, इतने क्षण यहां बैठे हैं, परमात्मा करे, इतनी ही देर कभी चांद के नीचे या तारों के नीचे बैठ सकें। वहां कुछ है, निश्चित ही वहां कुछ है। और अगर भीतर थोड़ी भी स्फुरणा होगी तो वहां कुछ मिलेगा। वहां कुछ उपलब्ध होगा। और जब वहां कुछ दिखेगा और मिलेगा तो लौटती धारा में भीतर भी कुछ पाया जायेगा। भीतर भी कुछ उपलब्ध होगा।

सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
तीसरा प्रवचन

मन है एक रिक्तता

मेरे प्रिय आत्मन्!
मैं कौन हूं? इस संबंध में थोड़ी सी बातें कल और परसों मैंने आपसे की हैं। परसों मैंने कहा, ज्ञान नहीं वरन न जानने की अवस्था, न जानने का बोध, सत्य की ओर मार्ग प्रशस्त करता है। यह जान लेना कि मैं नहीं जानता हूं एक अपूर्व शांति में और मौन में चित्त को ले जाता है। यह स्मरण आ जाना कि सारा ज्ञान, सारे शब्द और सिद्धांत जो मेरी स्मृति पर छाए हैं, वे ज्ञान नहीं हैं, वरन जब स्मृति मौन और चुप होती है, और जब स्मृति नहीं बोलती, और जब स्मृति स्पंदित नहीं होती तब उस अंतराल में, उस रिक्त में जो जाना जाता है, वही सत्य है, वही ज्ञान है। इस संबंध में परसों थोड़ी सी बातें कहीं थी, और कल मैंने आपसे कहा कि वे नहीं जो अपने अहंकार में कठोर हो गए हैं, वे नहीं जो अपने अहंकार के सिंहासन पर विराजमान हैं, वे नहीं जिन्होंने अपनी संवेदना के सब झरोखे बंद कर लिए और जिनके हृदय पत्थर हो गए हैं। वरन वे, जो प्रेम में तरल हैं, और जिनके हृदय के सब द्वार खुले हैं, और जिन्हें अज्ञात स्पर्श करता है, और जिन्हें जीवन में चारों तरफ छाए हुए जीवन में रहस्य की प्रतीति होती है। ऐसे हृदय, ऐसे काव्य से, और प्रेम से, और रहस्य से भरे हृदय ही केवल सत्य को जानने में समर्थ हो पाते हैं। और आज सुबह एक छोटी सी कहानी से आज की चर्चा मैं शुरू करूंगा।
एक राजमहल के द्वार पर बड़ी भीड़ थी। सारा गांव ही, सारी राजधानी ही द्वार पर इकट्ठी हो गई थी। सुबह-सुबह भीड़ का आगमन शुरू हुआ था, और अब तो संध्या आने को थी, लेकिन जो आकर खड़ा हो गया था, वह खड़ा था। कोई भी हटा नहीं था। दिन भर से भूखे-प्यासे लोग तपती धूप में उस द्वार के सामने खड़े थे, कोई अघटनीय वहां घट गया था। कुछ ऐसी बात हो गई थी जो विश्वास योग्य ही नहीं मालूम होती थी। सुबह-सुबह एक भिक्षु ने आकर उस द्वार को खटखटाया था। और अपना भिक्षापात्र आगे बढ़ा दिया था। राजा उठा ही था, उसने अपने नौकरों को कहा होगा, कि जाओ और भिक्षापात्र भर दो, लेकिन उस भिक्षु ने कहा कि ठहरो, इसके पहले कि मैं भिक्षा स्वीकार करूं मेरी शर्त भी सुन लो। बेशर्त मैं कुछ भी स्वीकार नहीं करता हूं। यह तो सुना गया था कि देने वाले शर्त के साथ देते हैं। यह बिल्कुल पहली बात थी कि लेने वाला भी शर्त रखता हो, भिखारी है। राजा ने कहाः शर्त, कैसी शर्त? उस भिखारी ने कहाः शर्त है मेरी एक, भिक्षा स्वीकार करूंगा लेकिन तभी जब यह वचन दो कि पात्र मेरा पूरा भर दोगे। अधूरा तो नहीं छोड़ोगे। पात्र पूरा भरोगे यह वचन दो तो भिक्षा स्वीकार करूं, किसी और द्वार चला जाऊ ं। राजा ने कहाः जानते हो राजा का द्वार है यह, क्या तुम्हारा छोटा सा पात्र न भर सकूंगा? पर उसने कहा, फिर भी शर्त ले लेनी उचित है, वचन ले लेना उचित है। राजा ने दिया वचन, और अपने मंत्रियों को कहा कि जब पात्र भरने की बात ही आ गई है, तो स्वर्णमुद्राओं से पात्र भर दो। बहुत थी स्वर्णमुद्राएं उसके पास, बहुत थे हीरे मोती, बहुत थे माणिक, बहुत था, अकूत खजाना था। स्वर्ण मुद्राएं लाई गईं और पात्र में डाली गईं और तभी से भीड़ बढ़नी शुरू हो गई। और तभी से सारा गांव टकटकी बांधे आकर द्वार पर खड़ा हो गया, पात्र कुछ ऐसा था कि भरता ही नहीं था। मुद्राएं डाली जाती रहीं, पात्र खाली था, खाली ही रहा। और दोपहर आ गई और खजाने जो अकूत मालूम होते थे, खाली पड़ने लगे। ऐसा कौन सा खजाना है जो खाली न हो जाए? और सांझ होते-होते तो सभी खजाने जीवन के खाली हो ही जाते हैं। उस सांझ भी खजाने सारे खाली हो गए उस राजा के और तब घबड़ाहट फैलनी शुरू हो गई, दोपहर के बाद। भिखारी तो भिखारी था, सांझ होते-होते राजा भी भिखारी हो गया था। कौन राजा सांझ होते-होते भिखारी नहीं हो जाता है?
पात्र खाली था, खाली था, खाली ही रहा। फिर तो राजा घबराया और पैर पर गिर पड़ा और उसने कहा मुझे क्षमा कर दें। मैं नहीं समझता था कि शर्त इतनी महंगी पड़ जाएगी। क्या है, क्या है यह जादू, कैसा है यह पात्र? छोटा सा दिखाई पड़ता है, और भरता नहीं। और खजाने जो मेरे बड़े दिखाई पड़ते थे, खाली हो

गए और व्यर्थ हो गए। छोटा सा पात्र और बड़े खजाने न भर पाए। क्या है इस पात्र में, कैसा जादू है? उस भिक्षु ने कहाः कोई भी जादू नहीं है, एक मरघट से निकलता था, आदमी की एक खोपड़ी पड़ी मिल गई, उससे ही इस पात्र को बना लिया है, आदमी की खोपड़ी से बना हुआ पात्र है, किस आदमी की खोपड़ी कब भरी है? किस आदमी का मन कब भरा है? पात्र में कोई जादू नहीं है, एक साधारण से आदमी का सिर है।
पता नहीं फिर आगे क्या हुआ? लेकिन इस कहानी से इसलिए शुरू करना चाहता हूं कि मनुष्य के जीवन में जो प्रश्न हैं और जो समस्या है वह यही है मन को भरना है और मन भरता नहीं। और हजार-हजार उपाय हम करते हैं, और धन से, और यश से, और पद से, मित्रों से, प्रिय जनों से भरते हैं नहीं भरता! फिर कुछ हैं जो धर्म से भरने लगते हैं, गीता से और कुरान से, त्याग से तपश्चर्या से। संन्यास से, साधना से, फिर भी मन भरता नहीं हैं। परमात्मा से, मोक्ष से, फिर भी मन भरता नहीं है। मन कुछ ऐसा है कि भरता ही नहीं और भरने के सारे प्रयास में हम टूटते हैं, नष्ट होते हैं, जीर्ण और जर्जर होते हैं। और भरने की सारी आशाएं टकरा-टकरा कर नष्ट हो जाती हैं, और तब विफलता और विषाद मन को घेर लेता है। और दुख, और पीड़ा, और संताप, और चिंता और सब व्यर्थ दीख पड़ने लगता है। जीवन व्यर्थ मालूम होने लगता है क्योंकि मन भरता नहीं है और भरने के सारे प्रयास असफल हो जाते हैं। कभी किसी का मन भरा नहीं है। कभी किसी का मन भरा नहीं है, मन कुछ ऐसा है कि भर सकता ही नहीं।
एक आदमी ने एक प्रेत की आत्मा को वश में कर लिया था। कहानी है, और सच मत मान लेना। और नहीं तो किसी प्रेत की आत्मा को वश में करने निकल पड़ें। क्योंकि बहुत सी कहानियों को हमने सच मान लिया है, इसलिए फिर तो कहानियों में जो सच्चाइयां होती हैं, कहानियां सच नहीं होतीं। उस आदमी ने प्रेत की आत्मा को वश में कर लिया था। लेकिन जैसी भूल अक्सर हो जाती है जिसको हम वश में करते हैं, हम सोचते हैं हमने वश में कर लिया। और जिसको हम वश में करते हैं वह सोचता है कि मैंने वश में कर लिया। जैसे कि भूल रोज जिंदगी में हो जाती है, वैसी ही भूल यहां भी हो गई थी। क्योंकि जिसे हम बांध लेते हैं अनजाने, उससे हम बंध जाते हैं। और जिसे हम परतंत्र कर लेते हैं, हम उससे परतंत्र हो जाते हैं। केवल वही स्वतंत्र हो सकता है, जो किसी को परतंत्र न करता हो। उसने उस प्रेत को परतंत्र कर लिया था, भूल में पीछे पता चला कि वह खुद ही परतंत्र हो गया है। क्योंकि उस प्रेत ने कहा कि मुझे चैन नहीं पड़ती, मुझे तो काम चाहिए, निरंतर काम चाहिए। कितने काम थे, सब चुक गए। और वह प्रेत बार-बार खड़ा हो जाए और पीछे आकर धक्के देने लगे कि मुझे काम दो मुझे चैन नहीं पड़ती। बेकाम मैं बैठ सकता नहीं हूं। वह आदमी तो घबड़ाया, कहां से काम लाए? सब काम चुक गए, जो-जो कामनाएं थी सब उसने पूरी कर दी थीं, और तब मुश्किल खड़ी हो गई और वह प्रेत भारी पड़ने लगा। और वह खड़ा है पीछे और धक्के दे रहा है कि मुझे काम दो। वह आदमी बहुत घबराया, बहुत बेचैन हुआ, बहुत परेशान हुआ, गांव के बाहर एक वृद्ध फकीर रहता था, उसके पास गया।
जब कोई बहुत बेचैन और परेशान हो जाता है तो फकीरों को खोजता है, उनके पास जाता है। वह भी गया, और उसने उस वृद्ध फकीर को पूछा कि मैं बहुत मुश्किल में हूं, एक प्रेत को पाल लिया, पहले तो सोचा था, बड़ा अच्छा हुआ सब काम करवा लूंगा, अब मुसीबत हो गई, फांसी बन गई। अब काम नहीं सूझते कि क्या करवाऊं? वह मेरे प्राण लिए ले रहा है। अगर मैंने उसे कोई काम न दिया तो, वह अब एक ही काम करेगा, मुझे समाप्त करने का काम, और कोई काम बचा नहीं है। अब क्या करें? उस वृद्ध ने कहा, यह डब्बा ले जाओ, एक डब्बा पड़ा था टूटा-फूटा इसे ले जाओ, और उससे कहना इसे भरो, वह डब्बे को ले आया रास्ते में बहुत सोचा कि बड़ा पागल मालूम होता है यह बूढ़ा, क्योंकि डब्बे में नीचे कोई बॉटम न थी, कोई तलहटी न थी, बॉटमलेस बिना तलहटी का था, उसमें कोई पेंदी न थी, पोला था ऊपर से भी नीचे से भी। लेकिन जब उसने कहा था, तो सोचा कि देखूं जाकर डब्बा लटका दिया और उस प्रेत को कहा कि कुएं से पानी खीचों और इसमें भरो। प्रेत पानी खींचने लगा और भरने लगा, और तब से अब तक वह प्रेत पानी भर रहा है और वह आदमी तो कभी का मर भी गया। वह पानी भर नहीं पाता है। और वह प्रेत सोचता नहीं कि देखे इसमें तलहटी भी है या नहीं। उस डब्बे के नीचे कोई तलहटी नहीं है। इसलिए पानी डाला तो जाता है, लेकिन भरता कभी नहीं। और यह प्रेत कोई

एकाध नहीं है, सबके भीतर बैठा हुआ है। और भरे जा रहा है, और भरे जा रहा है, और कुछ भी भरता नहीं है।
बहुत थक गया है प्रेत, बहुत परेशान है, बहुत पीड़ित है लेकिन भरे जाता है, भरे जाता है; और यह नहीं देखता कि डब्बे भरेगा नहीं, डब्बा कुछ ऐसा है। मनुष्य का मन भी कुछ ऐसा है। बॉटमलेस एबिस। मनुष्य का मन भी ऐसा है, शून्य, कोई सीमा नहीं उस पर, कोई नीचे जगह नहीं, कोई ऊपर छप्पर नहीं। कोई सीमा नहीं। असीम और शून्य गड्ढा है मनुष्य का मन। उसे भरने की कोशिश जीवन की असफलता है। लेकिन हम सब भर रहे हैं, सब भर रहे हैं। सब भरने के प्रयास में लगे हैं, और लगे हैं। क्या यह नहीं हो सकता कि यह भरना छोड़ दें? क्या यह नहीं हो सकता कि मन जैसा है, खाली और रिक्त वैसा ही स्वीकार कर लिया जाए? क्या यह नहीं हो सकता कि मन का यह जो शून्य है यह ऐसे ही अंगीकार कर लिया जाए, न भरा जाए। क्योंकि एक बात तय है कि यह मन तो भरता नहीं है, भरेगा नहीं, इसे भरने में हम जरूर मिटेंगे, मिट जाएंगे, समाप्त हो जाएंगे। हमसे पहले भी यही हुआ है, हम पर भी यही हो रहा है, हमसे बाद भी यही होता रहेगा। यह असंभव है कि मन भर जाए। सीधा-सीधा तथ्य है यह असंभव है कि मन भर जाए, क्योंकि मन है रिक्त, शायद रिक्त कहना भी ठीक नहीं। क्योंकि जो रिक्त होता है, उसके आस-पास एक दीवाल भी होती है जिसके भीतर रिक्तता होती है। मन है रिक्तता, एंप्टी नहीं एंप्टीनेस, मन रिक्त नहीं है, रिक्तता ही मन है। कोई सीमा ही नहीं है उस पर, कहीं कोई दीवाल भी नहीं है उस पर। इसलिए डालो, और डालो और सब खो जाएगा, सब खो जाएगा, वहां कहीं कुछ रुकेगा नहीं, ठहरेगा नहीं, बनेगा नहीं, निर्मित नहीं होगा। बच्चा जितना खाली मन लेकर आता है, उतना ही खाली मन लेकर बूढ़ा विदा होता है। जन्म के क्षण में जितना खाली है मन, मृत्यु के क्षण में भी उतना ही खाली है। उतना ही। उसमें जरा भी भेद नहीं पड़ता, जरा भी भेद नहीं पड़ता। एक भेद पड़ जाता है, बच्चे को इसका पता नहीं होता, बूढ़े को इसका पता होता है। और पता, बोध दुख देने लगता है। यह रिक्तता है भीतर और रिक्तता को भरने का प्रयास है हमारा, फिर चाहे हम किसी बात से भरते हों, किसी बात से। कौड़ी से पत्थर से भरते हों, राम नाम से भरते हों, मोक्ष से भरते हों, और किसी बात से भरते हों, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। भरना, भरने की कोशिश एप्सर्ड है। भरने की कोशिश, एकदम, एकदम अर्थहीन है। और जब नहीं भर पाता तो हम कहते हैं कि बड़ा दुख है। दुख उसी क्षण शुरू हो जाता है, जब से हम भरना शुरू करते हैं। क्या यह नहीं हो सकता? नहीं हो सकता है यह कि रहने दे, मन जैसा है, राजी हो जाएं, उसके खालीपन से, उसके शून्य से। भरने की कोशिश हमें भविष्य में ले जाती है। कल, आज खाली है, कल भर लेंगे, परसों भर लेंगे। इस जन्म में खाली है, अगले जन्म में भर लेंगे। भरने की कोशिश से फ्यूचर पैदा होता है, भविष्य पैदा होता है, भविष्य कहीं है नहीं। है तो केवल वर्तमान।
भविष्य तो कहीं है नहीं। लेकिन भविष्य पैदा होता है, भरने की कोशिश
से क्योंकि अगर आप भविष्य हों तो भरेंगे कैसे? भरने के लिए समय चाहिए। श्रम चाहिए, भविष्य चाहिए, तो भरने की आकांक्षा से भविष्य पैदा होता है, टाइम पैदा होता है, समय पैदा होता है। कल, कल, कल कुछ हो जाऊंगा। कल भर लूंगा। आज खाली हूं, कल भर जाऊंगा, और कल की आशा में आज व्यय होता है, व्यतीत होता है, जो है उस कल की आशा में जो नहीं है। कल की आशा में आज व्यय होता है, व्यतीत होता है, जो है उसकी आशा में, उस कल की आशा में जो नहीं है। फिर, फिर कल आज आ जाएगा। और उस आज को भी हम कल की आशा में व्यय करेंगे और व्यतीत करेंगे, और फिर आज आ जाएगा और उसको भी व्यय करेंगे और व्यतीत करेंगे। और ऐसे पूरी जिंदगी व्यतीत हो जाती है, उसे जाने बिना जो था, जो है।
जब तक कोई मन की रिक्तता को स्वीकार न कर ले, तब तक वह उसे नहीं जान सकता, जो है। जब तक कोई मन की शून्यता को अंगीकार न कर ले, तब तक उसे नहीं जान सकता है, जो मैं हूं। मैं हूं, क्या, कौन? उसके लिए तीसरी सीढ़ी मैं आज आपसे कहना चाहता हूं, रिक्तता की स्वीकृति, शून्यता का स्वीकार, अंगीकार। न कुछ होने का अंगीकार, एक्सेप्टेबिलिटी, यही जो स्वीकृति है, यही आस्तिकता है। जो आदमी कुछ होने में लगा है, वह नास्तिक है। वह चाहे भगवान होने में लगा हो, वह चाहे मोक्ष जाने में लगा हो, जो आदमी कुछ होने में लगा

है, वह नास्तिक है। जो आदमी जो है उसको जिसने स्वीकार कर लिया है, वह आस्तिक है। स्वीकृति, अंगीकार, उसका जो है, क्या हैं हम? रिक्त, क्या हैं? कभी, कभी टटोला, कभी थोड़ा खटखटाया, क्या हैं? रिक्त एकदम एंप्टीनेस, सब खाली और खाली है। उस खालीपन पर कुछ-कुछ चिपका लेते हैं, कोई डिग्रियां ले आता है, कोई पीएच. डी. हो जाता है, कोई धन कमा लेता है, कोई डाक्टर है, कोई इंजीनियर है, कोई मिनिस्टर है। पच्चीस तरह के पागलपन हैं, कोई कुछ न कुछ है। तख्तियां दरवाजों पर ही नहीं लगा ली हैं, अपने भीतर की रिक्तता पर तख्तियां लगा ली हैं। उन्हीं तख्तियों को पढ़ लेते हैं और प्रसन्न हो जाते हैं कि कुछ हूं। कुछ होने का मजा ले लेते हैं। समबडी होने का मजा ले लेते हैं। कुछ हूं। छोटी कुर्सी से बड़ी कुर्सी और बड़ी कुर्सी पर बैठ जाते हैं। सोचते हैं कुछ हूं। सिहांसन बड़ा करते जाते हैं और जानने लगते हैं कुछ हो रहा हूं। लेकिन कभी झांक कर देखा, भीतर कोई हंस रहा है। इन सारी पदवियों पर, इन सारी उपाधियों पर भीतर कोई हंस रहा है। यह सब सूखे हुए पत्तों की भांति हैं, हवा के झरोखे इन्हें उड़ा ले जाएंगे। और मौत की हवा में तो यह कुछ भी टिकेगा नहीं। और इसलिए तो मौत से इतना डर है कि मौत उस रिक्तता को उघाड़ देगी जिसको जीवन भर ढांका और छिपाया। नहीं तो मौत से कोई क्यों डरेगा? मौंत से भय का कारण क्या है? मौत को जानते हैं, जो उससे भयभीत होंगे? मौत को देखा है जो उससे घबड़ाएंगे? नहीं तो भय कैसे हो सकता है? जिसको जाना नहीं, जिसे पहचाना नहीं, जिससे मिलना नहीं हुआ, उससे भय कैसा हो सकता है?
मौत से भय नहीं है, भय है इस बात से कि वह जो एंप्टीनेस है उस पर जो हमने कागज के, कागज की दीवालें खड़ी करके घर बना लिए हैं, कागज के और नाम लिख दिए हैं, और कागज की मुद्राएं और तिजोरियां बना ली हैं। और, और कागज की दुनिया बसा ली है, मौत उस सब को उड़ा देगी, बच जाएगी रिक्तता, बच जाएंगे अकेले और खाली। इसलिए मौत से डर है, इसलिए है मौत से डर कि वह रिक्तता, उसकी स्वीकृति नहीं है। और जो अपनी रिक्तता को स्वीकार कर लेता है, उसके लिए तो मौत रही ही नहीं। अब मौत और क्या करेगी? अब मौत और क्या करेगी? उसने खुद ही उन कागज की तख्तियों को उड़ा दिया और उस महल में आग लगा दी जो कागज का था, और जब वह महल जल जाता है, तब पीछे जो शेष रह जाता है वही मैं हूं।
एक आदमी, एक आदमी पता नहीं आपको भी मिला हो, शायद सुना हो किसी रास्ते
पर कहीं मिल गया हो एक आदमी चिल्लाता फिरता है और पागल हो गया है। और वह निरंतर यही कहता रहता है, हीयर एंड्स दि वर्ल्ड, स्टॉप। वह यही कहता रहता है, यहां दुनिया समाप्त होती है, ठहरो। उसका दिमाग खराब हो गया है, शायद यहां भी सुना हो इस गांव में भी वह आदमी आया हो। मुझे वह आदमी एक दफा मिल गया तो मैं उसकी कथा सुना कि बात क्या है? तुम्हें क्या हो गया है? तो उस आदमी ने कहा कि मैं भी सत्य की खोज में निकला था, और मैं खोजता गया, खोजता गया, खोजता गया और आखिर वहां पहुंच गया, जहां रास्ता खत्म हो जाता था। और जहां अंतिम रोड साइन लगा था, जहां लिखा थाः हीयर एंड्स दि वर्ल्ड, स्टाप! मैं वहां पहुंच गया जहां दुनिया समाप्त होती थी। और अंतिम तख्ती आ गई सड़क की। और उसके बाहर फिर न कोई रास्ता था, न कोई दुनिया थी, न कोई गति थी। फिर तो था शून्य। एकदम शून्य, अतल, और वहां तख्ती लगी थी रुक जाओ, बस यहां दुनिया समाप्त होती है। और मैंने झांक कर देखा और मेरा सिर फिर गया। वहां न तो नीचे कुछ स्थान था, न ऊपर कोई छप्पर था। और न आगे कुछ था, और न किसी दिशा में कुछ था। वह शून्य था, और तब मैं घबड़ा गया, और आंख बंद किए और भागा--, भागा और तब से मैं भाग रहा हूं। और तब से मैं भाग रहा हूं, और तब से ऐसा घबड़ा गया हूं कि रह-रह कर मुझे बस यही खयाल आ जाता है, हीयर एंड्स दि वर्ल्ड। रुक जाओ, यहीं दुनिया समाप्त होती है। उस आदमी से मैंने कहा कि मैं भी गया हूं, उस तख्ती को मैंने भी पढ़ा है, तुम थोड़े जल्दी लौट आए, एक क्षण और रुक जाते, उस तख्ती के दूसरी तरफ भी देख लेते। दूसरी तरफ लिखा था, हियर बिगिंस द गॉड जंप। यहां ईश्वर शुरू होता है, कूद जाओ। तुम थोड़ा जल्दी लौट आए। थोड़ा और रुक जाते।
शायद मिला हो वह आदमी या न मिला हो, तो छो.ड़ें उसे। खुद ही चले जाएं उस जगह, जहां यह तख्ती लगी है कि यहां सब समाप्त होता है, ठहर जाओ। हर एक के भीतर वह टर्मिनस है, वह जगह है जहां सब रास्ते समाप्त हो जाते हैं। जाएं

वहां, और जब ऐसा लगने लगे कि सब खोया और अब तो यह अतल शून्य सामने आ रहा है। और सब गया, और सारी पकड़ गई और मुट्ठी खाली हुई जाती है, तब घबराना मत, क्योंकि वहां जहां सब समाप्त होता है, वहीं सब शुरू होता है। और तब डरना मत, और कूद जाना उस शून्य में, उस अटल में। और उसी शून्य में वह पाया जाता है, जो है। उसी शून्य में वह पाया जाता है, जो है। लेकिन हम सब तो कुछ न कुछ पकड़ लेते हैं, कोई राम के चरण पकड़े है, कोई कृष्ण के चरण पकड़े है, कोई क्राइस्ट के, कोई कुछ और पकड़े है, कोई कुछ और पकड़े है, कोई कुछ और। हम तो कुछ पकड़े हैं, और जो आदमी मन के तल पर कुछ भी पकड़े है, वह अपनी रिक्तता को भरने की कोशिश कर रहा है, कोशिश कर रहा है। वह कूदने के लिए तैयार नहीं है, शून्य में। जो शून्य में कूदने को तैयार नहीं है वह स्वयं को नहीं पा सकेगा। जो कुछ होने की कोशिश में है, वह उसे नहीं पा सकेगा, जो वह है। जो कहीं पहुंचने की कोशिश में है, वह वहां नहीं पहुंच सकेगा, जहां वह खड़ा है। जो भरने की कोशिश में है, वह खाली रह जाएगा, और जो राजी है, राजी है खाली होने को, वह पाएगा कि वही खालीपन सबसे बड़ी भरावट है, वही खालीपन शून्यपूर्ण है, वह पाएगा कि यह रिक्तता परमात्मा है। वह पाएगा कि वही स्वयं है, वही आत्मा है, वही मोक्ष, वही है निर्वाण। शून्य, मैं कौन हूं? शून्य में पाएगा।
राजी हैं शून्य होने को? कोई कठिनाई नहीं है, क्योंकि शून्य हैं। सिर्फ राजी होने की बात है। कुछ करना नहीं है, शून्य होने को कि आप पूछने आ जाएं, कि क्या करें और कैसे शून्य हो जाएं? शून्य हैं। सिर्फ शून्य न होने की जो कोशिश कर रहे हैं, कृपा करें और उस कोशिश को जाने दें। हम सब कोशिश कर रहे हैं कुछ होने की। बस जो कुछ होने की कोशिश कर रहा है, वह संसार में है। और जिसने होने की कोशिश जाने दी, छोड़ दी, जो कुछ होने के लिए तैर रहा है, वह धारा के विरोध में तैर रहा है, वह अपस्ट्रीम तैर रहा है, वह टूटेगा। और नष्ट होगा और मिटेगा, लेकिन जो छोड़ रहा है, और धारा में बहने को राजी है, हाथ छोड़ देता है और बह जाता है, सागर की तरफ वह पहुंच जाता है।
इसलिए आज इस सुबह आपसे कहूंगाः तैरें नहीं, बहें। जीवन में तैरें नहीं, बहें। जीवन में कुछ होने का खयाल आत्मघाती है। अधर्म है, वही संसार है। उसे जाने दें, जाने दें, छोड़ दें। यह कोशिश कुछ होने की इतनी एब्सर्ड है। एक भिक्षु चीन पहुंचा भारत से, चीन का सम्राट उसके स्वागत को राज्य की सीमाओं पर आया। देख कर बहुत हैरान हो गया, वह भिक्षु न मालूम कैसा पागल था? बोधिधर्म था उसका नाम, पागल ही रहा होगा। क्योंकि इस पागलों की दुनिया में स्वस्थ और नार्मल होने का अर्थ पागल होना है। इस पागलों की दुनिया में जब भी कोई आदमी स्वस्थ, सच में स्वस्थ होता है तो पागल मालूम पड़ता है। वह बोधिधर्म प्रविष्ट हुआ तो अपने सिर पर जूते रखे हुए था, पैर में तो नहीं पहने हुए था, सिर पर रखे हुए था। सम्राट वू ने जिसने उसका स्वागत किया उसने कहा, अरे यह क्या पागलपन? यह आदमी कैसा है? सिर पर जूते रखे है। पूछा एकांत में कि भंते, यह क्या किया आपने? यह क्या किया सारे लोग हंसते हैं? सिर पर जूते रख कर आए हैं। बोधिधर्म बोलाः अगर मेरा बस चलता, तो अपने पैर सिर पर रख लेता, और आता। बोधिधर्म बोला अगर मेरा वश चलता तो अपने पैर सिर पर रख लेता और आता, नहीं चलता था इसलिए जूते रख कर आया हूं। उसने कहाः मैं समझा नहीं, मैं समझा नहीं। बोधिधर्म ने कहाः हर आदमी जो कुछ होने की कोशिश में अपने सिर पर पैर रख कर चलने की कोशिश में है, इतनी ही एब्सर्ड है यह बात। जो आदमी कुछ होने की कोशिश में है, क्योंकि कोई कुछ नहीं हो सकता, जो
वह नहीं है, जो है वही हो सकता है। कोई कुछ और नहीं हो सकता। कुछ होने की कोशिश असंभव की कोशिश है। असफलता सुनिश्चित है, व्यर्थता सुनिश्चित है। बोधिधर्म ने कहा कि कोई अपने पैर सिर पर रख कर चलने की कोशिश करे, और न चल पाए, तो किसको दोष देंगे? उससे ही हम कहेंगे कि तुम पागल हो, तुम सिर पर पैर रखते हो तो चलोगे कैसे? चलने के लिए जरूरी है कि सिर पर पैर न हों। जब हम कुछ होने की कोशिश में होते हैं, वह जो बिकमिंग है हमारे मन की कि कुछ हो जाऊं, कुछ हो जाऊं, कुछ हो जाऊं, तब हम सिर पर पैर रख रहे हैं।
एक रात एक महल की छत पर, छप्पर पर, किसी के पदचाप सुनाई पड़े। राजा सोने
को ही गया था, ऊपर देखा छप्पर पर कोई है, पता नहीं चोर है या कौन है? उसने चिल्ला कर पूछा, यह कौन है, और किसने यह हिम्मत की है रात को छप्पर पर चढ़ने की? उस आदमी ने कहा कि दुखी न हों, क्षमा करें, मेरा ऊंट खो गया है, उसे

खोजता हूं। उस राजा ने कहाः कौन पागल है यह? छप्परों पर कभी ऊंट खोए हैं? यह सारी दुनिया छोड़ कर छप्पर पर खोजने आया है। छप्पर पर कैसे ऊंट खो जाएगा? उसने कहाः मेरे मित्र बड़े समझदार मालूम पड़ते हो, समझ में तुम्हें आता है कि छप्परों पर ऊंट नहीं खोते, असंभव है यह। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि अहंकार के सिंहासन पर बैठ कर कभी कोई शांत हुआ है, और आनंदित हुआ है। भागा, राजा उठकर बाहर आया, जैसे किसी ने नींद से हिला दिया, सोया ही था, बहुत खोजा वह आदमी मिला नहीं।
दूसरे दिन बहुत उदास था, इब्राहीम नाम था उस राजा का। बहुत उदास था सिंहासन पर जाकर उस दरबार में और तभी एक अतिथि भीतर घुस आया, द्वारपालों ने रोका उसे, लेकिन उसने द्वारपालों से कहा हट जाओ, धर्मशाला में सभी को ठहरने का हक है। द्वारपाल बोले पागल हुए हो, राजा का महल है, सराय नहीं, धर्मशाला नहीं। उसने कहा हटो, राजा से ही बात कर लेंगे। दिखता है, कोई आदमी ज्यादा दिन सराय में ठहर गया, तो इस भ्रम में आ गया है कि मालिक हूं। वह भीतर पहुंच गया, अब ऐसे दबंग को द्वारपाल न रोक पाए। दरबार भरा था, और उस राजा से उसने कहा कि क्या इस सराय में मैं कुछ दिन ठहर सकता हूं? वह राजा बोला, बहुत पागल मालूम होते हो, रात ही एक पागल से मिलना हुआ, ये दूसरे आ गए। सराय नहीं है यह मेरा निवास स्थान है। शब्द वापस लो, नहीं तो जबान कटवा देंगे। उस व्यक्ति ने कहाः सराय नहीं, लेकिन कुछ दिनों पहले मैं आया था, तब तो इस सिंहासन पर दूसरे आदमी से मेरी टक्कर हो गई थी। उस राजा ने कहा, वह मेरे पिता थे। उस फकीर ने पूछा कि अब वे कहां हैं? और मैं तो उसके पहले भी आया था, तब दूसरे आदमी से टक्कर हो गई थी। दूसरा आदमी इस सिंहासन पर बैठा था। उस राजा ने कहाः वे मेरे पिता के पिता थे। और उसने कहाः उसके पहले भी मैं आया था, मैं बहुत दफा आ चुका हूं लेकिन हर बार दूसरा आदमी पाया तो मैंने सोचा जरूर यह सराय है, यहां पर लोग ठहरते हैं और चले जाते हैं। तो क्या मैं इस सराय में ठहर सकता हूं? वह राजा उठा और उसके पैर पकड़ लिए, जरूर यह वही आदमी था, जो रात छप्पर पर था। चाहे वह दूसरा ही आदमी रहा हो, लेकिन इससे क्या फर्क पड़ता है, लेकिन यही आदमी था, जिसने रात उत्तर दिया था, यही आदमी है, यही आदमी है। पूछा कि क्या करूं? मैंने तो अपनी जिंदगी छप्पर पर ऊंट खोजने में, उस राजा ने कहा, मैंने तो अपनी जिंदगी छप्पर पर ऊंट खोजने में, और धर्मशाला को मकान समझने में गंवा दी, अब मैं क्या करूं? हम सब गंवा रहे हैं, छप्पर पर ऊंट खोज रहे हैं, धर्मशालाओं को निवास समझ रहे हैं। जिस व्यक्ति में भी कुछ होने की आशा में अपना निवास बना लिया है। उसने धर्मशाला को निवास बना लिया। कुछ होने की आशा, निवास स्थान नहीं है सराय है। एक दिन ठहर भी नहीं पाइएगा कि धक्के देकर कोई और वहां से बाहर कर देगा। और दौड़ते रहिए, दौड़ते रहिए, और इस सराय में भटकते रहिए, भटकते रहिए, दुख होगा और पीड़ा होगी।
अपने घर लौटे बिना कोई रास्ता नहीं है। और बहुत सराय हैं आशाओं की, कामनाओं की, वासनाओं की, बिकमिंग की बहुत धर्मशालाएं हैं भटकिए, भटकिए, लेकिन जिस दिन खयाल आ जाए कि यह धर्मशाला है, उस दिन क्या देर है कि वापस लौट आइए अपने घर पर। घर कभी खोया नहीं है, वह हमेशा साथ है, जिस दिन धर्मशाला से मन भर जाए, व्यर्थता दिखाई पड़ जाए, आप अपने घर में हैं। खोजिए छप्परों पर खोए हुए ऊंट को, मिलेगा? नहीं मिलेगा। इसको कहने की क्या बात है कि नहीं मिलेगा। लेकिन खोज रहे हैं हम सब, भविष्य के छप्परों पर, भविष्य के ऊंटों को, असली ऊंट न मिलेगा, असली छप्पर पर। तो भविष्य के छप्पर हैं, जो हैं ही नहीं और भविष्य के ऊंट हैं, वे भी नहीं हैं और उनको हम खोज रहे हैं। उनको हम खोज रहे हैं।
एक कथा मैंने सुनी थी कि एक राजा के तीन लड़के थे, दो तो पैदा ही नहीं हुए थे। एक पैदा होकर मर गया था। तीन लड़के थे। वे तीनों यात्रा पर निकले। जिनमें से दो पैदा ही नहीं हुए थे, और एक मर गया था। वे तीनों यात्रा पर निकले, जिनमें से दो तो लंगड़े थे और एक अंधा था। और वे तीनों उस नगर में पहुंचे, तीन नगरों में, जिनमें से दो मिट गए थे और एक बसा नहीं था। और ऐसे ही वह कथा चलती है, और चलती है, और चलती है, उसका कोई अंत नहीं आता, इसलिए उसको कैसे कहूं? और और आगे कैसे ले जाऊं? कहीं खत्म नहीं होती। वह ऐसे ही चलती है। और ऐसे ही चलती है। और हम सब की जिंदगी ऐसे ही चलती है। दो चीजें

वे, जो हैं ही नहीं, एक जो थी और अब नहीं है। अतीत जो मिट चुका, भविष्य जो नहीं है, उसमें हमारी सारी यात्रा चलती है। यह होने की यात्रा बाधा है, मैं कौन हूं? उसे जानने में, उसे पहचानने में, उसके साथ एक होने में। इसलिए मैं कहता हूं, इसलिए कहूं स्वीकार कर लें उस शून्य को जो भीतर है; उसकी स्वीकृति से फलित होता है धर्म। उसकी स्वीकृति से फलित होता है ज्ञान। उसकी स्वीकृति से निकलता है वह, वह जो जीवन को शांति से और आनंद से भर जाता है। मिट जाएं उस शून्य में। उस शून्य में डूब जाएं। उस शून्य के साथ एक हो जाएं, हैं उसके साथ एक। और जिस दिन भी, जिस दिन भी उस अंतराल में और शून्य में क्षण भर को भी ठहर जाएंगे, जिस दिन उस अपने घर में क्षण भर को ठहर जाएंगे, उस नथिंगनेस में ही उसी दिन पाएंगे कि सब पा लिया गया है, उसी दिन पाएंगे कि सब मिल गया। उसी दिन पाएंगे कि कुछ खोया नहीं था कभी, तो न तो ले जाएगा योग, न ले जाएगा ध्यान, न ले जाएंगे मंत्र-तंत्र, न ले जाएगा, मोक्ष, न कोई गीता, और न कोई कुरान, न कोई गुरु, न कोई उपदेशक, कोई नहीं ले जाएगा। क्योंकि जब तक किसी के द्वारा जाना चाहेंगे तब तक, तब तक का अर्थ है कि आपने शून्य को स्वीकार नहीं किया, आप कुछ होना चाहते हैं। और जब तक आप कुछ होना चाहते हैं, तब तक आप वह नहीं हो सकेंगे जो आप हैं।
लाओत्सु ने कहा है, खोजो और खो दोगे। दौड़ो और कहीं न पहुंच पाओगे। मत खोजो और पा लो। रुक जाओ, और पहुंच जाओ। ठहरो और वहीं हो, जहां जाना चाहते हो। बड़ी ठीक, बड़ी ठीक एकदम ठीक बात है। क्या रुकने को राजी हैं, क्या राजी हैं ठहरने को, क्या छोड़ देने को राजी हैं, खोज को, दौड़ को? क्या लैट गो होने में राजी हैं? यदि हैं बस, तो बस, वहीं से, वहीं से पा लिया जाएगा। मैं कौन हूं? वहीं से आ जाएगा। वहीं से कोई भर देगा, सब शून्य। कोई उतर आएगा, वर्षा होती है, पहाड़ों पर भी, झीलों पर भी, झीलें भर जाती हैं पहाड़ खाली रह जाते हैं, क्यों? पहाड़ भरे हैं इसलिए खाली रह जाते हैं, झीलें खाली हैं इसलिए भर जाती हैं। गड्ढे भर जाते हैं, वर्षा होती है तो, और टीले, टीले खाली रह जाते हैं। टीले पहले से ही भरे हुए हैं, गड्ढे... । धार्मिक चित्त टीलों की तरह नहीं है, उठते हुए टीलों की तरह है, भरते हुए टीलों की तरह नहीं है, खाली गड्ढों की तरह है। खाली गड्ढों की तरह हो जाएं, और हैं, वह जो बॉटमलेस एबिस, वह जो घड़ा है, शून्य और रिक्त और असीम, उसको भरने में न लगें। उसको भरने में लगे कि गए। छोड़ दें भरने का खयाल और हो जाएं वहीं शून्य। बस उसी शून्य से कुछ होता है। कुछ होता है जो शब्दों में नहीं कहा जा सकता। कुछ होता है, जो इशारों से नहीं बताया जा सकता। कुछ होता है जिसे गीत नहीं गा सकते, कुछ होता है जिसे आंसूं नहीं कह सकते, कुछ होता है जिसे कहने का कोई उपाय नहीं है।
परमात्मा करे शून्य रिक्त होने की क्षमता, साहस, स्मृति, आ जाए। और ज्यादा नहीं कहूंगा, और ज्यादा कुछ कहने को है भी नहीं। एक बात फिर से दोहरा दूं, जाएं अपने भीतर वहां आ जाती है वह जगह, वह अंतिम साइन पोस्ट, वह अंतिम खंबा जहां लिखा हैः हियर एंड्स दि वर्ल्ड, यहां होती है दुनिया समाप्त। रुक जाओ, वहां रुकना मत, उसी तख्ती के दूसरी तरह लिखा है, हियर बिगिंस दि गॉड, जंप। यहां होता है शुरू परमात्मा कूद जाओ, कूद जाना। जो कूद जाता है, वह पा लेता है।
एक छोटी सी कहानी और चर्चा पूरी।
एक रात एक यात्री एक अंधेरी अमावस में, एक पहाड़ से गुजरता था। पैर उसका फिसल गया। किस यात्री का कब नहीं फिसला है? जो यात्रा करेगा फिसलेगा भी, गिरेगा भी, रास्ते भी भूलेगा, अंधेरे मार्ग भी आएंगे, खो भी जाएगा। वह भी भटक गया अंधेरे रास्तों में उसका पैर फिसल गया। और गिर गया एक बड़े खड्ढ में। झाड़ियों को पकड़ लिया, कौन नहीं पकड़ेगा? हम सब पकड़े हुए लटके हैं, झाड़ियों को। उसने भी झाड़ियां पकड़ लीं, सर्द रात, अंधेरी रात, चारों तरफ गड्ढ, कहीं कुछ दिखाई न पड़े, कोई ओर-छोर नहीं। पकड़े है, भगवान को याद कर रहा है। भगवान से प्रार्थना कर रहा है, बचाओ। बचने की खुद कोशिश भी कर रहा है, कोशिश न सफल हो पाए तो भगवान की खुशामद भी कर रहा है कि तुम बचाओ। लेकिन पत्थर है सरकीला, चिकना, पैर रुकते नहीं, छोटी है झाड़ी, जड़ें उखड़ी जा रही हैं, कभी भी भय है कि क्षण दो क्षण में टूट जाएंगी और नीचे गिर जाएगा, सर्द है रात, हाथ अकड़े जा रहे हैं। थोड़ी देर बाद हाथ जड़ हो जाएंगे और फिर झाड़ी का

पकड़ना संभव नहीं रह जाएगा। पैर टिकते नहीं हैं। हाथ कठिनाई में हैं, झाड़ी है कमजोर, नीचे है गड्ढा, बड़ी मुश्किल है। बड़ी मुश्किल है और क्या मुश्किल हो सकती है? परेशान, परेशान लेकिन थोड़ी देर में कोई उपाय सफल नहीं होता, रखे हुए पैर नीचे खिसक जाते हैं। हाथ जड़ होने लगे, झाड़ियों की जड़ें आवाजें कर रही हैं, उखड़ रही हैं, और फिर वह क्षण आ गया, जहां उसे पता चला कि बस अब गया।
हाथ सरकने लगे, झाड़ियां छूटने लगीं; जाना उसने कि गया। और फिर हाथ छूट गए, और झाड़ियां छूट गईं, और छूटते जाना उसने कि मिटा। लेकिन, लेकिन छूटते ही क्या जाना? छूटते ही जाना कि नीचे तो जमीन आ गई, अंधेरे में दिखाई नहीं पड़ती थी। गड्ढा था ही नहीं। और तब वह खूब जोर से उस अंधेरी रात में उस पहाड़ी घाटी में हंसने लगा कि बड़ा पागल था मैं। व्यर्थ ही इतनी देर कष्ट सहा। व्यर्थ ही इतनी देर तकलीफ सही। व्यर्थ ही इतनी देर मरने में अटका रहा, मौत में अटका रहा। व्यर्थ इतनी देर मरा। क्योंकि जितनी देर लटका था, उतनी देर ही मरता रहा और उतनी देर ही लगता रहा कि मरा, मरा, मरा, गया, गया टूटा-छूटा, और ताकत लगाता रहा। और हाथ छूट गए और पाया कि नीचे जमीन थी। यह अंधकार में दिखाई नहीं पड़ती थी। वह जो भीतर रिक्तता है, वही पूर्णता है, एक दफा छो.ड़ें और देखें, छूटते ही पता चलेगा कि जमीन आ गई। जो शून्य में होने को राजी है, वह परमात्मा की भूमि पर खड़ा हो जाता है।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उससे बहुत-बहुत अनुगृहीत हूं। सबके भीतर बैठे उस शून्य के प्रति मेरे प्रणाम स्वीकार करें। वही परमात्मा है, वही सब-कुछ है।

मैं कौन हूं?
चौथा प्रवचन

अकेला होना बड़ी तपश्चर्या है

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक गांव में एक बहुत अजीब घटना घट गई थी। एक आदमी ने किसी बीमारी में अपनी छाया खो दी। ऐसा कभी न हुआ था। वह रास्ते पर चलता तो उसकी छाया न बनती, गांव के लोग उससे डरने लगे, परिवार के लोग उससे दूर रहने लगे। उसकी पत्नी ने भी उसका साथ छोड़ दिया। यह बड़ी अनहोनी घटना थी कि कोई अपनी छाया खो दे। और लोगों का भयभीत हो जाना स्वाभाविक था। उनकी समझ में आना मुश्किल हो गया कि आदमी किस प्रकार का है, जिसकी छाया न बनती हो? धीरे-धीरे अपने ही परिवार से वह निष्कासित हो गया, मित्रों ने साथ छोड़ दिया। और जिस दरवाजे पर भी पहुंचता, लोग द्वार बंद कर लेते थे। उसके भूखे मरने की नौबत आ गई। वह हाथ जोड़-जोड़ कर चिल्ला कर भगवान से कहने लगा कि मुझे मेरी छाया वापस दे दो। यह मेरी छाया क्या खो गई है, यह तो मेरा जीवन नष्ट हुआ जाता है। पता नहीं ऐसी घटना कभी घटी थी या नहीं घटी, लेकिन मैंने सुना है कि ऐसा कभी हुआ है। वह आदमी अपनी छाया खोकर इतनी मुसीबत में पड़ गया था और हम सारे लोग, हम सारे लोगों ने तो अपनी आत्मा खो दी है। तो हम सब की मुसीबत का क्या हिसाब? छाया भी खो दे कोई तो कठिनाई में पड़ जाएगा, लेकिन आत्मा ही कोई खो दे... उसकी मुसीबत का क्या हिसाब लगाया जा सकता है? हम केवल छायाओं की भांति रह गए हैं, और हमारे भीतर किसी आत्मा का न तो हमें बोध है, न स्मरण है; न प्रतीति है और न अनुभव है।
हम जीते हैं और मर जाते हैं बिना इस बात को जाने कि हम कौन हैं? मैं कौन हूं? इसे बिना जाने ही जीवन समाप्त हो जाता है। क्या यह संभव है कि बिना इस सत्य को जाने कि कौन मेरे भीतर था, मैं जीवन के आनंद को उपलब्ध कर सकूं, क्या यह संभव है कि मैं इस बात को बिना जाने कि कौन था जो मुझमें जन्मा, कौन था जो मुझमें जीआ, कौन था जो मुझसे विदा हो गया, बिना इस सत्य को जाने, जीवन में शांति और संगीत उपलब्ध हो सकता है? नहीं यह संभव नहीं है। स्वयं को जाने बिना न तो जीवन को सौंदर्य उपलब्ध होता है, न शांति उपलब्ध होती है, न संगीत उपलब्ध होता है, न सत्य उपलब्ध होता है।
इसलिए मैं आज की इस चर्चा में आपसे कहना चाहूंगा। धर्म का संबंध परमात्मा से नहीं; धर्म का संबंध परलोक से नहीं, धर्म का संबंध मनुष्य के भीतर जो छिपा है मैं जो हूं उसे जान लेने से है। और यह मैं इसलिए कहना चाहूंगा कि जो यह भी नहीं जानता कि मैं कौन हूं? वह और क्या जान सकेगा? परमात्मा तो बहुत दूर निकट तो मैं हूं। और निकट को भी जो नहीं जानता, वह दूर को कैसे जान सकेगा? जो स्वयं को नहीं जानता, उसका सब जानना झूठा और मिथ्या है। उसका सब ज्ञान, अज्ञान सिद्ध होगा। क्योंकि उसने पहली ही जगह, प्राथमिक निकटतम अज्ञान का जो घर था, वहीं चोट नहीं की, उसने वहीं प्रहार नहीं किया। मैं कौन हूं? इस सत्य की खोज से धर्म का संबंध है, और बड़े रहस्यों का रहस्य यह है कि जो इसको जान लेता है कि मैं कौन हूं? उसके लिए सब कुछ जानने के द्वार खुल जाते हैं। और जो अपने भीतर ही ताले को खोल लेता है, उसके लिए इस जगत में फिर किसी रहस्य पर कोई ताला नहीं रह जाता है। स्वयं को जान लेना, सत्य को जान लेने की अनिवार्य शर्त है। लेकिन हम स्वयं को बिना जाने यदि परमात्मा की प्रार्थनाओं में संलग्न हों, तो वे प्रार्थनाएं कोई फल नहीं लाएंगी। और हम स्वयं को जाने बिना यदि शास्त्रों को सिर पर ढो रहे हों, तो वे शास्त्र बोझ हो जाएंगे। उनसे कोई मुक्ति फलित नहीं होगी।
स्वयं को जाने बिना हम जो भी करेंगे वह सब बंधन निर्मित करेगा, उससे कोई स्वतंत्रता आने को नहीं है। मैं कौन हूं? इस रहस्य पर ही सारी खोज, सारा अन्वेषण, लेकिन हम और सब करते हैं। इस एक बात की खोज में कभी भी संलग्न नहीं होते। कुछ लोग संसार को खोजते हैं, धन, यश, प्रतिष्ठा को खोजते हैं। फिर जब वे ऊब जाते हैं संसार से, धन और प्रतिष्ठा और यश की दौड़ में समझ लेते हैं कि कुछ भी नहीं है, तब वे एक नई दौड़ में संलग्न होते हैं, जिसे

मोक्ष की दौड़ कहें, परमात्मा की दौड़ कहें। संसार के लिए दौड़ते थे, उससे ऊब गए और परेशान होकर फिर वे परमात्मा के लिए दौड़ने लगते हैं, लेकिन एक बात जो संसार की दौड़ में थी वही परमात्मा की दौड़ में भी शामिल रहती है। न तो संसार की दौड़ में उन्होंने अपने को जानने की कोई चेष्टा की थी, और न परमात्मा की दौड़ में ही वे अपने को जानने की चेष्टा करते हैं। इसलिए सांसारिक भी अपने को जाने बिना रह जाते हैं और जिन तथाकथित धार्मिकों को हम जानते हैं, वे भी स्वयं को नहीं जान पाते। दोनों दौड़ते हैं, कोई संसार के लिए, कोई मोक्ष के लिए। लेकिन स्वयं के लिए खोज से वंचित रह जाते हैं, सच यह है कि चाहे कोई संसार के लिए दौड़ रहा हो और चाहे परमात्मा के लिए, जब तक दौड़ रहा है तब तक स्वयं को नहीं जान सकेगा। स्वयं के जानने के लिए ठहर जाना जरूरी है, दौड़ना नहीं।
किसी भी तरह की दौड़ में जो उलझा हुआ है वह अपने को नहीं जान पायेगा। दौड़ने वाला चित्त कैसे अपने को जान सकेगा? दौड़ने वाला चित्त ही तो उलझन है। दौड़ने वाला चित्त ही तो अशांति है। दौड़ने वाला चित्त ही तो अंधकार है। दौड़ने वाले चित्त के कारण ही, दौड़ने वाले चित्त की लहरों के कारण ही तो वह हमसे अपरिचित रह जाता है, जो भीतर छिपा है। दुनिया में दो तरह के दौड़ने वाले लोग हैं, एक को हम कहते हैं सांसारिक लोग, एक को हम कहते हैं आध्यात्मिक और धार्मिक लोग। मैं आपसे निवेदन करना चाहूंगा, चाहे दौड़ संसार की हो चाहे और धर्म की, दौड़ मात्र व्यक्ति को स्वयं से वंचित करती है, और स्वयं को नहीं जानने देती। दौड़ बदल जाती है, धन का खोजी मोक्ष का खोजी बन जाता है, पद का खोजी परमात्मा को खोजने लगता है, दौड़ बदल जाती है, दिशा बदल जाती है, लेकिन दौड़ने वाला चित्त कायम रहता है, उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। और यह दिखाई भी नहीं पड़ता है, यह दिखाई भी नहीं पड़ता है, क्यों? क्योंकि हम जानते हैं कि संसार की दौड़ बुरी है। इसलिए जब कोई संसार की दौड़ छोड़ कर धर्म की दौड़ में लगता है तो हम कहते हैं बहुत अच्छा किया।
मैं आपसे कहना चाहता हूं संसार की दौड़ बुरी नहीं होती, दौड़ बुरी होती
है, दौड़। वह दौड़ चाहे मोक्ष की हो तो भी बुरी होती है। वह दौड़ चाहे परमात्मा के लिए हो तो भी बुरी होती है। क्योंकि दौड़ने वाला चित्त उद्विग्न होता है, अशांत होता है, बेचैन होता है। धर्म का संबंध अदौड़ की स्थिति से है, जो दौड़ छोड़ता है और ठहरता है, जो कुछ भी नहीं पाने के लिए पागल होता है, जो रुक जाता है, ठहर जाता है। उस व्यक्ति के जीवन में धर्म का प्रारंभ होता है, धर्म एक दौड़ नहीं, संसार के विरोध में दौड़ नहीं है धर्म। और इसलिए यदि आप परमात्मा की खोज में भी दौड़ रहे हों तो मैं आपसे निवेदन करूंगा, कभी परमात्मा को आप नहीं जान सकेंगे। क्योंकि दौड़ने वाला कभी स्वयं को ही नहीं जान पाता, परमात्मा को कैसे जान पायेगा?
दो तरह की दौड़ें हैं दुनिया में। धार्मिक आदमी वह है जो दोनों तरह की दौड़ से अपने को बचा लेता है। यह बहुत कठिन है। यह बहुत कठिन प्रतीत होगा। एक दौड़ को दूसरी दौड़ में बदल देना बहुत आसान है, एकदम आसान है। मन को उस पर कोई बोझ नहीं आता, दौड़ बदल जाती है। लोभी त्यागी हो जाता है, दौड़ बदल जाती है, कल तक धन को इकट्ठा करता था, आज धन को छोड़ने लगता है। कल तक धन इकट्ठा करने की दौड़ थी, अब छोड़ने की दौड़ शुरू हो जाती है, मन को कोई फर्क नहीं पड़ता। अहंकारी विनम्र होने लगता है। कल तक कहता था मैं कुछ हूं, अब कहने लगता है मैं नाकुछ हूं, लेकिन दौड़ जारी है, कल तक मैं को बड़ा करने की दौड़ थी, अब मैं को छोटा करने की दौड़ शुरू हो जाती है। चित्त को कोई परिवर्तन नहीं होता, कोई ट्रांसफार्मेशन नहीं होता। जीवन में परमात्मा या सत्य की खोज में चले हुए लोगों के लिए जो सबसे बड़ा उलझाव है वह यही है उनकी दौड़ बदल जाती है लेकिन दौड़ रुकती नहीं। वे यहां भवन बनाते थे, उसे छोड़ कर वे आकाश में और परलोक में भवन बनाने लगते हैं। वे यहां सुख चाहते थे, उसे छोड़ कर वे मोक्ष के सुख की कामना करने लगते हैं। लेकिन दौड़ जारी रहती है। और यदि दौड़ जारी रहे, तो हम कुएं से बच जाते हैं और खाई में गिर जाते हैं।
एक पागलखाने में कुछ लोग गए। वे वहां के पागलों का अध्ययन करने गए थे। वहां का जो डाक्टर था, वह उन पागलों का अध्ययन करने वाले लोगों को एक-एक पागल के संबंध में सारी बातें बता रहा था, उसकी कथा बता रहा था, उसके जीवन की दुर्घटना बता रहा था। पहले ही पागल के पास जब पहुंचे तो उससे उन्होंने

पूछा, इसे क्या हो गया है? वह आदमी कपड़े की बनाई हुई एक बहुत बड़ी गुड़िया को अपनी छाती से लगाए हुए रो रहा था। डाक्टर ने बताया यह आदमी पागल हो गया, जिस स्त्री को यह प्रेम करता था, जिस युवती को इसने चाहा था कि वह इसकी जीवन संगिनी बने, उस युवती ने इनकार कर दिया। वह इससे विवाह करने को राजी नहीं हुई, यह पागल हो गया। और तब से ही यह उसी स्त्री को, उसकी गुड़िया बना कर दिन-रात सजाता है, उसी से बातें करता है। रोता है, तो वे सभी दुखी मन और उदास होकर आगे बढ़े। उनमें से एक ने उस डाक्टर से पूछा कि उस लड़की ने फिर क्या किया? किसी और से शादी कर ली। उस डाक्टर ने कहा कि थोड़ी देर रुको, उस आदमी से भी हम मिलाते हैं। वे गए दूसरी कोठरी पर, उस डाक्टर ने कहा यह वह आदमी है जिससे उस लड़की ने शादी कर ली थी। उन्होंने कहा, यह कैसे पागल हो गया? वह पहला आदमी इसलिए पागल हो गया कि इस स्त्री से विवाह न हो सका, इस आदमी को इसलिए पागल होना पड़ा कि उस स्त्री से विवाह हो गया! उस स्त्री के साथ रहने का यह परिणाम हुआ कि यह पागल हो गया।
मैंने जब यह कहानी सुनी तो मैंने कहा कि यह कहानी बड़ी सच है। कुछ लोग संसार के पीछे दौड़ कर पागल रहते हैं। कुछ लोग परमात्मा के पीछे दौड़ कर पागल हो जाते हैं। कुछ लोग इसलिए पागल रहते हैं कि संसार उन्हें मिल जाता है, और कुछ लोग इसलिए पागल हो जाते हैं कि वे संसार छोड़ देते हैं। लेकिन दोनों हालतों में एक पागलपन की स्थिति पैदा होती है। दौड़ता हुआ चित्त पागलपन की स्थिति है, ठहरा हुआ चित्त, रुका हुआ चित्त स्वस्थ है, स्वस्थ का अर्थ स्वयं में जो ठहर गया, रुक गया। लेकिन हमारा चित्त तो स्वयं में रुकता नहीं, कहीं उसे हम लगा दें, तो ठीक अगर कहीं न लगाएं तो बड़ी बेचैनी मालूम पड़ती है। इसलिए तो सुबह से कोई आदमी उठ आता है, तो जल्दी से अखबार खोजता है कि अखबार पढ़ूं, क्योंकि खाली रहने से घबड़ाहट होती है, अखबार में मन को लगा देता है। एक आदमी अखबार पढ़ता है; दूसरा आदमी सुबह से उठ कर गीता पढ़ने लगता है, तो हम सोचते हैं कि अखबार पढ़ने वाला बुरा और गीता पढ़ने वाला अच्छा। लेकिन मैं आपसे निवेदन करुं दोनों अपने मन को दौड़ाने और भगाने की कोशिश में लगे हैं। ठहराने से दोनों डरते हैं। कोई अखबार में दौड़ा रहा है कोई गीता में दौड़ा रहा है, इससे भेद नहीं पड़ता। एक आदमी सुबह से उठ कर रेडियो खोल लेता है और फिल्मी गाने सुनने लगता है। दूसरा आदमी बैठ कर राम-राम, राम-राम जपने लगता है। लेकिन दोनों मन के ठहराने को राजी नहीं हैं। दोनों मन को भगाते हैं, दौड़ाते हैं। दोनों समान हैं, दोनों में कोई भेद नहीं है, और दोनों में से कोई भी धार्मिक नहीं है।
धार्मिक व्यक्ति वह है जो चित्त को भागने के लिए रास्ते नहीं देता। धार्मिक व्यक्ति वह है जो चित्त को खाली छोड़ने के लिए राजी हो जाता है। धार्मिक व्यक्ति वह है जो चित्त को कोई भी भोजन नहीं देता। और चित्त से कहता है रह जाओ खाली, ठहर जाओ, दौड़ो मत। लेकिन हमें यह खयाल भी नहीं है। हम फिल्मी गाना बंद करते हैं तो भजन गाने लगते हैं, हम सोचते हैं भजन गाने से कोई धार्मिक हो जाएगा। फिल्मी गाना गाओ कि भजन गाओ दोनों से कोई कभी धार्मिक नहीं होता। चित्त जब कुछ भी नहीं करता, कोई गीत नहीं गाता, कोई विचार नहीं करता, कोई दिशा में दौड़ता नहीं है, जब चित्त कुछ नहीं करता और न करने की अवस्था में होता है, स्टेट ऑफ नॉन-डूइंग। जब वह कुछ भी नहीं करता, उस क्षण, उस क्षण धर्म में प्रवेश होता है। उस क्षण स्वयं में प्रवेश होता है, उस क्षण सत्य की झलकें मिलनी शुरू होती हैं।
जापान में एक बहुत बड़ा आश्रम था। उस आश्रम में कोई पांच सौ भिक्षु थे। जापान का सम्राट उस आश्रम को देखने गया। आश्रम का जो प्रधान था, उसने उस बड़े विराट आश्रम के जिसके दूर-दूर तक भवन फैले हुए थे, सम्राट को ले जाकर दिखाए। बीच आश्रम में बहुत विशाल एक भवन था, और आस-पास छोटे-छोटे झोंपड़े थे बहुत, उसने छोटे-छोटे झोंपड़े दिखलाए, यहां भिक्षु रहते हैं, यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भिक्षु भोजन करते हैं, यहां भिक्षु अध्ययन करते हैं, वह राजा बार-बार पूछने लगा कि तुम छोटे-छोटे मकानों को तो बतला रहे हो, लेकिन यह जो बीच में विशाल भवन है यहां क्या करते हैं? लेकिन वह संन्यासी अजीब था, वह इसका उत्तर ही न दे, राजा परेशान हुआ, छोटे-छोटे झोंपड़ों में घुमा रहा था, और बीच में जो विशाल भवन था उसकी कोई बात नहीं करता था। उसने दुबारा पूछा कि मेरे मित्र तुम बड़े अजीब मालूम पड़ते हो जो दिखाने योग्य

मालूम पड़ता है उसको दिखाते नहीं, ये छोटे-छोटे झोंपड़े दिखा रहे हो। यहां क्या करते हैं भिक्षु? फिर भी वह संन्यासी चुप रह गया। फिर तीसरी बार उस राजा ने पूछा कि मैं, मेरे बरदाश्त की सीमा से बाहर हुई जा रही है, यह बात, देखने आया था आश्रम तुम दिखलाते हो फिजूल की बातें, यह जो भवन है बीच में यहां क्या करते हो? संन्यासी ने कहा कि मैं खुद मुसीबत में हूं कि क्या बताऊं कि वहां हम क्या करते हैं? असल में हम वहां कुछ भी नहीं करते। बाकी सारे आश्रम में भिक्षु कहीं स्नान करते हैं, कहीं अध्ययन करते हैं, कहीं बातें करते हैं, जब किसी भिक्षु को कुछ भी नहीं करना होता है तो वह इस भवन में चला जाता है और वहां कुछ भी नहीं करता। अब हम क्या बताएं कि वहां क्या करते हैं, वह हमारा ध्यान का कक्ष है। वह हमारा मेडिटेशन-हॉल है। वहां हम कुछ भी नहीं करते हैं। अगर कुछ करना हो तो इतना बड़ा आश्रम है, वहां हम कुछ करते हैं, यहां हम कुछ करते ही नहीं। जब किसी को कुछ भी नहीं करता होता, तो वहां चला जाता है। तो मैं क्या बताऊं कि हम वहां क्या करते हैं? तो मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं, उसके बाबत आप नाराज न हों, हम वहां कुछ करते ही नहीं। क्या आपने कभी कोई ऐसा क्षण जाना है अपने मन में जब आप कुछ भी न कर रहे हों? क्या कभी कोई ऐसा क्षण जाना है जब मन कुछ भी न कर रहा हो, बस हो? जस्ट, सिर्फ हो, कुछ कर न रहा हो। न करने की कोई अवस्था जानी, अगर नहीं जानी तो धर्म से अभी आपका कोई संबंध नहीं है और न हो सकता है। कोई संबंध नहीं हो सकता। पूजा करो, प्रार्थना करो, ये सब करने की अवस्थाएं हैं, दुकान चलाओ, मंदिर में जाओ, ये सब करने की अवस्थाएं हैं। सेवा करो, मरीज की सेवा करो, कोढ़ी की सेवा करो, ये सब करने की अवस्थाएं हैं। करने की अवस्थाओं से धर्म का कोई संबंध नहीं। लेकिन अगर न करने की अवस्था को जान लें तो जीवन में एक नये प्रकाश का अनुभव होता है और एक नई शक्ति का। और वह अनुभव करने के बाद जीवन को भी आमूल परिवर्तित कर देता है। अभी हम जो करते हैं उस करने का केंद्र होता है, अहंकार, मैं। चाहे हम पूजा करते हों और चाहे दुकान चलाते हों, उस करने का केंद्र होता है, मैं। दुकान करते हैं तो कें द्र होता है, मैं; मेरी दुकान। पूजा करते हैं तो केंद्र होता है, मैं; मेरी पूजा। प्रार्थना करते हैं तो केंद्र होता है, मैं; मेरी प्रार्थना, मेरे भगवान, मेरी गीता, मेरा कुरान, मेरा धर्म। मंदिर बनाते हैं तो मेरा मंदिर, सेवा करते हैं तो मेरी सेवा। जब तक हमने उस अवस्था को नहीं जाना है--न करने की अवस्था को, स्टेट ऑफ नॉन-डूइंग, जब तक हमने उसे नहीं जाना। तब तक हमारे सब कामों का केंद्र होता है, मैं। लेकिन जिसने थोड़ी देर को भी उस अवस्था को जाना है--जब हम कुछ भी नहीं करते हैं, जब हम कुछ भी नहीं कर रहे होते हैं, केवल सिर्फ होते हैं, सिर्फ एक्झिस्टेंस होता है, सिर्फ सत्ता होती है, कर नहीं होते, कुछ कर नहीं रहे होते, कुछ डूइंग नहीं होती, सिर्फ बीइंग होता है। उस क्षण को जो जान लेता है, वह पाता है कि अहंकार तो है ही नहीं, अहंकार तो करने की क्रिया से पैदा हुई भावना है। यह किया, यह किया, यह किया, यह किया... इस सारे करने से अहंकार मजबूत हो गया है। न करने की अवस्था को जानने से ज्ञात होता है कि अहंकार तो है ही नहीं। और उस न करने की अवस्था में ही चित्त इतनी शांति में होता है कि स्वयं को जान पाता है। उसे जानते ही, करने का केंद्र परिवर्तित हो जाता है। उसे जानते ही करने का केंद्र अहंकार नहीं रह जाता, करने का केंद्र परमात्मा हो जाता है। ऐसी जो जीवन स्थिति है, उसका नाम धर्म है। स्मरण रखिए, धर्म कोई कृत्य नहीं है, कोई एक्ट नहीं है, कोई कर्म नहीं है, धर्म तो अकर्म की अवस्था को अनुभव करने से संबंधित है। और अकर्म की अवस्था में ही हम अपने से संबंधित होते हैं, कर्म की अवस्था में हम दूसरों से संबंधित होते हैं।
एक बहुत अदभुत विचारक था, इकहार्ट। वह जंगल में गया हुआ था और एक वृक्ष के नीचे बैठा हुआ था। उसके कुछ मित्र भी जंगल गए हुए होंगे शिकार के लिए, पिकनिक के लिए, किसी और काम से। उन्होंने इकहार्ट को एक झाड़ के नीचे बैठा देखा, सोचा कि अकेले में थक गया होगा, बैठा-बैठा, अकेले में ऊब गया होगा, चलो हम चलें और इसे संग दें, साथ दें, कंपनी दें। वे गए और उन्होंने जाकर इकहार्ट को कहा कि मित्र तुम अकेले बैठे-बैठे थक गए होंगे, ऊब गए होंगे, परेशान हो गए होंगे, तो हम आए हैं यह सोच कर कि तुम्हें थोड़ा साथ दें। इकहार्ट ने क्या कहा? इकहार्ट ने कहाः मेरे मित्रो, तुम अपने रास्ते

पर जाओ, मैं अकेला था तो अपने साथ था। तुम आ गए तो तुमने मेरा साथ अपने से तुड़वा दिया। इकहार्ट ने कहाः मित्रो, तुम अपने रास्ते पर जाओ, मैं अकेला था तो अपने साथ था, तुमने आकर मुझसे मेरा साथ तुड़वा दिया। तुम अपने रास्ते पर जाओ, मैं ऊबा हुआ नहीं हूं। मैं अपने साथ हूं।
जब आप कुछ भी नहीं कर रहे होते हैं तब आप अपने साथ होते हैं, और जो अपने साथ होगा वही तो स्वयं को जान सकेगा। हम कभी अपने साथ नहीं होते, हम किसी और के साथ होते हैं, अपने साथ कभी भी नहीं होते। मित्र के साथ होते हैं, शत्रु के साथ होते हैं, किताब के साथ होते हैं, पत्नी के साथ, पति के साथ, लड़कों के साथ, पिता के साथ होते हैं और अगर इन सबसे ऊब गए तो किसी काल्पनिक भगवान के साथ हो जाते हैं। रख लेते हैं उसकी मूर्ति और उसी के साथ हो जाते हैं। लेकिन अपने साथ... अपने साथ हम कभी नहीं होते। जो अपने साथ नहीं होता उसको धर्म का कैसे अनुभव होगा? वह कैसे जान सकेगा कि क्या हूं मैं? कौन हूं मैं? अपने साथ होने की प्रक्रिया धर्म है। अपने साथ होने की प्रक्रिया योग है, अपने साथ होने की प्रक्रिया ध्यान है, अपने साथ होने की प्रक्रिया समाधि है, अपने साथ कैसे हो सकते हैं? हमारी तो आदत किसी और के साथ होने की है, हम तो सदा भीड़ में होना पसंद करते हैं, अकेला तो कोई नहीं होना चाहता। क्यों नहीं होना चाहता? अकेले में भय लगता है, अकेले में घबड़ाहट लगती है। किस बात की घबड़ाहट लगती है? किस बात का भय लगता है? कभी ख्याल भी नहीं किया होगा कि अकेले में भय क्यों लगता है, घबड़ाहट क्यों लगती है? अकेले क्यों नहीं होना चाहते? क्यों किसी का साथ खोजते हैं निरंतर? भय है एक बुनियादी, अकेले में अहंकार के मिटने का भय। दूसरों के साथ होने में अहंकार निर्मित होता है, अकेले में मिट जाता है। अकेले में मैं की कल्पना टूट जाती है कि मैं हूं। इसलिए हमेशा दूसरों के साथ हम होते हैं। और जो लोग हमारे साथ होकर हमारे मैं को काफी प्रोत्साहन देते हैं, उनके साथ होने में हमें ज्यादा रस आता है, इसलिए शत्रु के साथ हम कम होना चाहते हैं, मित्र के साथ ज्यादा होना चाहते हैं। क्योंकि मित्र हमारे अहंकार को बढ़ावा देता है। अब उनके साथ होना चाहते हैं जो हमारे अहंकार को बढ़ावा दें, शक्तिशाली बनाएं। अकेले होने में घबड़ाहट लगती है। अकेले होने में मैं खो जाएगा, उसको
कोई बढ़ाने वाला नहीं मिलेगा तो वह बिखर जाएगा, टूट जाएगा। इसलिए कोई अकेले में नहीं होना चाहता। लेकिन जिसे स्वयं को खोजना है, उसे यह साहस करना होगा। उसे अहंकार के बिखर जाने को हिम्मत से देखना होगा। इस साहस का नाम ही संन्यास है। इस करेज का नाम ही संन्यास है, घर को छोड़ कर भाग जाने का नाम संन्यास नहीं है। घर को छोड़ कर भाग जाना तो बड़ी आसान बात है, और अगर सब का बस चले तो सभी घर छोड़कर भाग जाएं। घर से कौन परेशान नहीं है? घर से कौन पीड़ित नहीं है? घर से कौन ऊ ब नहीं गया है, सभी भाग जाएं। घर से भाग जाना कोई बहादुरी नहीं है। जीवन में एक ही साहस है, अकेले होने का साहस। तो घर से एक आदमी भाग जाता है तो दस-पच्चीस शिष्यों को इकट्ठा करके एक आश्रम बना कर वहां रहने लगता है। क्योंकि अकेले रहने का साहस तो था नहीं, घर से निकल आए तो फिर आश्रम बनाना पड़ता है। मित्रों को छोड़ कर आ गए, परिवार को छोड़ कर आ गए तो फिर शिष्य और शिष्याएं इकट्ठी करने पड़ते हैं क्योंकि भीड़ चाहिए अकेले होने में बड़ा खतरा है, खुद के मिट जाने का खतरा है। इसलिए जिसके पास जितने शिष्य इकट्ठे हो जाते हैं जिस संन्यासी के पास, वह उतना ही बड़ा संन्यासी हो जाता है, उसके अहंकार का पारा उतना ही ऊपर चढ़ जाता है। जिसको कोई शिष्य नहीं मिलते वह बेचारा दो कौड़ी का संन्यासी हो जाता है, उसका अहंकार का पारा नीचे उतर जाता है। शिष्यों की खोज चलती है, भीड़ इकट्ठा करने की खोज चलती है। आश्रम बनते हैं।
भागे थे वे लेकिन फिर दूसरा चक्कर सामने खड़ा हो जाता है। क्यों? क्योंकि अकेले होने का साहस नहीं। और अकेले होने के लिए कोई पहाड़ और जंगल में जाने की जरूरत नहीं है, जो अकेला होने की प्रक्रिया को समझ लें, वह जहां है वहीं अकेला हो सकता है। ठीक घर में और दुकान पर और बाजार में अकेला हो सकता है। जो अकेला होना जानता है वह भीड़ में भी अकेला होता है और जो अकेला होना नहीं जानता वह, उसको अकेला भी छोड़ दो तो वह काल्पनिक भीड़ को घेर लेता है और उसी में बैठ जाता है। कभी अकेले में जाकर देखें, तो अकेले में कोई भी नहीं होगा कमरा बंद होगा तो भी आप पाएंगे आपके मन में मित्र चले आ

रहे हैं, उनसे बातें चल रही हैं। काल्पनिक भीड़ इकट्ठी हो जाएगी, क्योंकि अकेला होना... अकेला होना बहुत बड़े साहस की बात है। लेकिन जिसे स्वयं की खोज में जाना हो उसे कुछ साहस तो करना पड़ेगा।
अकेला होना बड़ी तपश्चर्या है, भूखा रहना कोई बड़ी तपश्चर्या नहीं है, भूखा रहना एक निरंतर अभ्यास की बात है। महीनों कोई भूखा रह सकता है। सिर के बल खड़े हो जाना, कोई तपश्चर्या नहीं है, सर्कस में बहुत से लोग करते हैं, आप भी कर सकते हैं, मैं भी कर सकता हूं। कोई उलटे-सीधे आसन लगा लेना और धूप में खड़े रहना और सर्दी सह लेना कोई तपश्चर्या नहीं है, सब सर्कसी खेल हैं। तपश्चर्या तो एक है मनुष्य के मन के लिए, सबसे कठिन, आर्डुअस और वह है अकेला होना। मन अकेले होने को राजी नहीं होता, मन अकेले बैठने को राजी नहीं होता। मन की सारी आदत, मन का सारा जीवन किसी के संग, किसी के साथ में, इधर-उधर से ऊब जाते हैं तो सत्संग को चले जाते हैं, वहां भी भीड़ मिल जाती है। किसी गुरु के पास चले जाते हैं, वहां भी साथ मिल जाता है। इसलिए मैं कहता हूं कि सत्संग से किसी को कभी धर्म नहीं मिला है। अकेले और एकांत में सब तरह का संग छोड़ कर जो मन ठहरने को राजी होता है, वह धर्म को जानता है। सत्संग से सिद्धांत मिल सकते हैं, विचार मिल सकते हैं, खूब बातचीत करने के लिए सामग्री मिल सकती है, ज्ञान मिल सकता है तथाकथित कि उपदेश करने में आप भी योग्य हो जाएं। लेकिन किसी सत्संग से कभी सत्य न मिला है और न मिल सकता है। क्योंकि संग से सत्य के मिलने का कोई संबंध नहीं। सत्य मिलता है असंग में, संग में नहीं। सत्य मिलता है असंग में, जहां कोई संगी और साथी नहीं ऐसे मन की स्थिति है।
पहला सूत्र है धर्म की खोज में, स्वयं की खोज में या परमात्मा की खोज मेंः असंग-भाव। मैं अकेला हूं, मैं बिल्कुल अकेला हूं। और इस अकेले होने में ठहरने की दिशा में प्रयत्न, जब मन कहे कि किसी का साथ खोजो, जब मन कहे कि चलो अकेले में भयभीत मालूम होता हूं, तब सजगता से इस मन के प्रति निरीक्षण और अकेले में ठहरने की, ठहरने की दिशा में प्रयत्न अगर थोड़ी सी देर को भी अकेला होना शुरू कर दें। प्रारंभ में तो बहुत कठिन है, क्योंकि निरंतर साथ की आदत है। तो हम पूछते हैं कि अकेले में फिर कोई सहारा, तो कोई मंत्र बता दें कि फिर, कि हम उसको ही जपते रहें, राम-राम करते रहें, कृष्ण-कृष्ण करते रहें, कुछ तो बता दें जिसको हम करते रहें अकेले में। किसी भगवान की प्रतिमा पर ध्यान लगाएं, या आंख बंद करके किसी ज्योति के ऊपर ध्यान लगाएं। फिर हम संग खोज रहे हैं, तरकीबें हैं ये सब, हम साथ खोज रहे हैं। वास्तविक नहीं तो काल्पनिक साथ खोज रहे हैं, कोई ज्योति के साथ ही बैठे रहें, राम-राम ही जपें, हृदय में किसी चक्र की कल्पना करें, या सिर में या नाभि में, लेकिन हम साथ ख्ल्लज रहे हैं, अकेले होने को हम राजी नहीं। और अगर साथ मिल गया तो चक्कर फिर वापिस वही शुरू हो गया, जिससे आप बचना चाहते हैं। इसलिए कोई साथ न खोजें और कोई सहारा न खोजें। न किसी मंत्र का, न किसी रूप का, न किसी प्रतिमा का। न किसी भगवान का। कोई सहारा न खोजें। बेसहारा हो जाएं। और बड़े मजे की बात है कि जो बेसहारा हो जाता है, उसे परम सहारा उपलब्ध होता है। और बड़े मजे की बात है जो अकेला हो जाता है वह परमात्मा को पा लेता है। और बड़े मजे की बात है जब तक कोई संग खोजता है तब तक कभी उसका संग नहीं मिलता, जो कि सदा का साथी है।
एक रात ऐसा हुआ, एक आदमी एक पहाड़ से निकलता था। अंधेरी अमावस की रात थी, उसका पैर फिसल गया, और रास्ते से चूक गया। और किसी बहुत बड़े खड्ढ में गिर पड़ा। लेकिन खड्ढ में गिरने को कौन राजी होता है, तो उसने जल्दी से अंधेरे में जो भी पकड़ में आ सकता था, पकड़ लिया। कोई वृक्ष की जड़ें थी, वे उसने पकड़ लीं। नीचे अंधकार, ऊपर अंधकार, फिसलता हुआ पत्थर, जिस पर पैर न टिकें, ऊ पर बढ़ने की कोई गुंजाइश और उपाय नहीं। नीचे गिरने का कोई साहस नहीं। वह अटका है उन जड़ों को पकड़ कर। ठंडी रात हाथ अकड़ने लगे और ठंडे होने लगे। और आखिर कब तक लटका रहेगा और पूरी रात। और धीरे-धीरे उसकी हिम्मत टूटने लगी। और हाथ जड़ होने लगे ठंड में और जड़ें छूटने लगीं। उसके प्राण कैसे संकट में नहीं पड़ गए होंगे, कैसे दुख को उसने नहीं जाना होगा? कैसी मौत में वह नहीं घिर गया था? लेकिन आखिर जब तक सामर्थ्य थी वह पकड़े रहा। जितनी देर तक संभव था उसने जड़ें पकड़े रखीं। वक्त आ गया और हाथ बिल्कुल जड़

हो गए, और जड़ें छूट गईं। वह आदमी गड्ढे में गिर गया, लेकिन क्या हुआ? गिरते ही जोर की हंसी उस घाटी में गूंजी, वह आदमी हंसने लगा। नीचे गड्ढा था ही नहीं, नीचे जमीन थी, अंधेरे में दिखाई ही नहीं पड़ती थी। जड़ें हाथ से छूटी कि वह नीचे जमीन पर खड़ा था, और तब वह पछताया कि मैंने बहुत पहले हाथ क्यों न छोड़ दिए? मैंने व्यर्थ ही यह कष्ट और तकलीफ क्यों सही? मैं क्यों व्यर्थ ही ठंड में इस अंधेरी रात में लटका रहा जड़ों से। मैं तभी का छोड़ देता तो जमीन नीचे थी। लेकिन जब तक न छोड़ा था, तब तक उसको पता भी न चला था।
मेरे देखने में हर मनुष्य अपने जीवन की अंधेरी रात में रास्ते से भटक गया है और गिर गया है और हर मनुष्य ने अपनी सामर्थ्य के अनुसार कोई न कोई जड़ पकड़ ली है। किसी ने धन की, किसी ने पद की, किसी ने भगवान की, किसी ने धर्म की, किसी ने मोक्ष की कोई न कोई जड़ पकड़ ली है, और उससे लटका हुआ है, और रो रहा है और चिल्ला रहा है कि यह जड़ छूटने वाली है। और जड़ छूटी तो मैं खड्ढे में गिरूंगा, और हर आदमी को गिरना है, मौत करीब है सबके और सभी की जड़ें छूट जाएंगी और हाथ छूटेंगे और गड्ढे में गिरना पड़ेगा। रो रहे हैं चिल्ला रहे हैं, लेकिन जड़ को छोड़ते नहीं, कहते हैं कोई सहारा चाहिए, बिना सहारे के कैसे होगा? कोई न कोई सहारा चाहिए। पत्नी का छूट जाए, परमात्मा का चाहिए, पति का छूट जाए तो भगवान का चाहिए, किसी न किसी का सहारा चाहिए। जमीन के पिता का छूट जाए तो वह जो सुप्रीम फादर है, ऊपर जो बैठा हुआ पिता है, उसका सहारा चाहिए लेकिन सहारा चाहिए। बिना सहारे के नहीं हो सकेगा, कोई न कोई जड़ चाहिए जिससे मैं लटकूं नहीं तो नीचे खड्ढा है और गिर जाऊंगा तो क्या होगा?
लेकिन मैं यह निवेदन करता हूं कुछ यह जो हमारा अटकाव है सहारे का, यही बाधा है, कभी जाने किसी क्षण में सब छोड़ कर और बेसहारा होकर, कभी जाने किसी क्षण में सब सहारे छोड़ दें और हो जाएं बेसहारा तो क्या होगा? देखें एक बार, क्योंकि बिना देखे पता भी नहीं चल सकता कि क्या होगा? और जो होता है उसे शब्दों में कहने का कोई उपाय भी नहीं। आज तक कोई कह भी नहीं सका कि क्या होता है? जब एक आदमी सब सहारा और सब संग छोड़ कर असंग हो जाता है, बेसहारा हो जाता है अकेला हो जाता है, टोटल लोनलीनेस में हो जाता है, तब क्या होता है? आज तक कोई भी नहीं कह सका कि क्या होता है? लेकिन वहीं जो होता है, उसे ही कोई कहता है कि परमात्मा, कोई कहता है आत्मा, कोई कहता है मोक्ष, कोई कहता है निर्वाण। वही कुछ होता है जिसे कुछ नाम दे दें धर्म के या कोई नाम न दें, लेकिन जो आदमी भी उस गहरे एकांत से होकर वापस लौटता है, वह दूसरी तरह का आदमी हो जाता है, उसके जीवन में दुख विलीन हो जाता है, उसके जीवन में आनंद के झरने फूटने लगते हैं, उसके जीवन से बेसुरे स्वर विलीन हो जाते हैं, और संगीत निकलने लगता है। उसके जीवन से दुर्गंध चली जाती है और सुगंध आने लगती है। उसके जीवन से भय विलीन हो जाता है और अभय आ जाता है। उसके जीवन में मृत्यु की छाया समाप्त हो जाती है और अमृत की वर्षा होने लगती है। जो भी उस अकेलेपन से होकर गुजरता है वह दूसरी तरह का ही मनुष्य हो जाता है। उसी तरह के मनुष्य को हम धार्मिक मनुष्य कहते हैं।
आज की इस चर्चा में मैं यही निवेदन करने को हूं आपसे, कभी उस अकेलेपन में जाएं, कभी सब छोड़ दें डूब जाएं शून्य में और कोई सहारा न पकड़ें। हो जाएं अकेले पूरी तरह, क्योंकि यह स्मरण रखें, अगर स्वयं को जानना है, तो बिना अकेले हुए नहीं जान सकते हैं। जब आप ही रह जाएंगे और कोई न होगा, तभी जान सकेंगे उसे जो आप हैं। जब तक कोई और है, तब तक उसको आप जानते रहेंगे स्वयं को न जान पाएंगे। तो सब सहारे तोड़ देने जरूरी हैं, ताकि चेतना बिल्कुल बेसहारा हो जाए, उसके लिए कोई जगह ठहरने को न रह जाए। और जब कोई जगह ठहरने को नहीं रह जाती है चित्त को, तो चित्त अपने पर लौट आता है। अपने पर बैठ जाता है, जब कोई जगह नहीं रह जाती, तो अपने पर वापिस आ जाता है। जगह छीन लें चित्त से, हम जगह छीनते नहीं, जगह बदलते हैं। एक चीज छूटती है तो दूसरी पकड़ाते हैं, दूसरी छूटती है तो तीसरी पकड़ाते हैं, लेकिन कभी खाली नहीं छोड़ते चित्त को। चित्त को बदलाहट सब्स्टीट्यूट देने से कोई आदमी कभी धर्म की दिशा में गतिमान नहीं होता। सब सब्स्टीट्यूट छोड़ देने जैसे हैं। जब कोई कुछ भी हम चित्त को नहीं देते और चित्त भूखा और प्यासा, और बिना;

दिशा के बिना कहीं जाने के, रह जाता है उसी क्षण एक विस्फोट हो जाता है, और क्रांति हो जाती है और जीवन दूसरा हो जाता है।
धर्म एक ऐसे साहस की अपेक्षा है, धर्म एक ऐसे साहस की खोज है लेकिन हम सारे लोग तो धर्म की तरफ साहस के कारण नहीं जाते, भय के कारण जाते हैं। इसलिए आदमी जितना बूढ़ा होने लगता है उतना धार्मिक होने लगता है। युवा आदमी धार्मिक नहीं होता, उसमें थोड़ा बहुत साहस होता है तो वह सोचता है कि अभी धार्मिक होने की क्या जरूरत है? सोचता है कि बुढ़ापे में जब सब काम निपट जाएगा तब हो लेंगे धार्मिक। और बुढ़ापे में आदमी क्यों धार्मिक होने लगता है? धार्मिक इसलिए होने लगता है कि मौत का भय चारों तरफ से घेरता है, उस भय के कारण वह भगवान का सहारा पकड़ने लगता है। और भय से जो भगवान पैदा हेता है, वह एकदम झूठा है, उसमें जरा भी सच्चाई नहीं, कण मात्र भी सच्चाई नहीं है। वह केवल भय का निर्माण है।
जब मौत करीब आने लगती है और हम अंधेरे में धकियाए जाने लगते हैं और लगता है कि अब जीवन छूटा, तब हम सोचते हैं भगवान अब तेरे ही चरण पकड़े लेते हैं। अब तेरा ही सहारा खोजे लेते हैं। भगवान किसी का सहारा नहीं है। उस समय तक जब तक कि कोई बेसहारा होने की हिम्मत न करें। तब तक कोई सहारा नहीं है। तब तक रोएं, गिड़गिड़ाएं, करें प्रार्थनाएं, कुछ भी नहीं होगा। कुछ भी नहीं हो सकता है। होने का उससे कोई संबंध नहीं है। आप अपने भय में परेशान हो गए। और अपने भय में कल्पनाएं कर रहे हैं। भय छोड़ें, धर्म का भय से कोई संबंध नहीं है। और एक बात जानें, मृत्यु आएगी और मिटा देगी यह तय है। इसमें कोई शक-शुबहा नहीं, इसमें कोई संदेह नहीं। मृत्यु आएगी और डुबा देगी और मिटा देगी।
जो समझदार हैं वे मरने के पहले अकेले होकर देख लेते हैं कि मृत्यु
में भी तो अकेले ही तो हो जाना पड़ेगा। सब संगी साथी छूट जाएंगे, सब धन, यश, प्रतिष्ठा छूट जाएगी, सब मित्र-परिजन छूट जाएंगे, मृत्यु अकेला कर देगी, तो एक बार अकेला होकर क्यों न देख लें? उससे यह भी पता चल जाएगा कि मृत्यु में क्या होगा? और यह भी पता चल जाएगा कि अकेले होने से भीतर कुछ सच में मर जाता है या कि नहीं मरता? मृत्यु को जान कर जो व्यक्ति जीवन में ही, किन्हीं क्षणों में मरने का अनुभव कर लेता है। इतना अकेला हो जाता है कि कोई संगी साथी नहीं, जैसा मृत्यु में हो जाएगा, तो फिर उस क्षण में ही वह जानता है कि सब छूट जाए तो भी मैं हूं। सब छूट जाएं तब भी मैं हूं। और जब सब छूट जाते हैं, तभी मैं अपने पूरे रूप में प्रकट हो पाता है। तो मृत्यु में जो हर आदमी को जानना पड़ता है, तो वह ध्यान में धार्मिक मनुष्य जान लेता है। लेकिन जिसने कभी ध्यान को न जाना हो उसकी मृत्य भय, और पीड़ा, और संकट बन जाती है। और जिसने कभी ध्यान में, एकांत में स्वयं को जाना हो, उसकी मृत्यु भी अमृत और मोक्ष का स्वाद दे देती है। उसे मृत्यु का भय भी विलीन हो जाता है क्योंकि मृत्यु में वह पुनः अकेला होता है, जिस अकेलेपन को उसने बहुत बार जाना।
एक फकीर से किसी ने जाकर पूछा कि मुझे मृत्यु के संबंध में कुछ बताओ?
उस फकीर ने कहा तुम गलत जगह आ गए हो, तुम कहीं और जाओ मृत्यु को जानने के लिए। क्यों? पहले जब तक मैं अकेला नहीं हुआ था, मैं भी सोचता था मृत्यु है। और जब मैं परम एकांत और अकेलेपन को जाना, तो मैंने जाना कि मृत्यु तो बिल्कुल नहीं है। जो है वह जीवन है। तो यहां मृत्यु के बाबत मैं कुछ भी न बता सकूंगा। क्योंकि मैं मृत्यु को जानता ही नहीं। मैंने तो जीवन को जाना है। हम जो मृत्यु से घबड़ाए हुए हैं, वह मृत्यु से घबड़ाए हुए नहीं हैं, क्योंकि घबड़ाने के लिए हमें पता होना चाहिए कि मृत्यु क्या है, तब हम घबड़ा सकते हैं। जिसको हम जानते नहीं, जो अननोन है उससे हम घबराएंगे कैसे? हम मृत्यु से घबड़ाए हुए नहीं हैं, हम घबड़ाए हुए हैं अकेलेपन से। मित्र छूट जाएंगे, पत्नी, पिता, मां, भाई बहन सब छूट जाएंगे, वह जो अकेलापन रह जाएगा, उससे हम घबराए हुए हैं। तो जो व्यक्ति जीवित रहते हुए अकेलेपन के स्वाद को अनुभव कर लेता है उसे मृत्यु का भय विलीन हो जाता है, वह पाता है मृत्यु तो है ही नहीं। वह जीवन को शाश्वत जीवन को अनुभव कर लेता है।
उसी शाश्वत जीवन का नाम परमात्मा है। उसी शाश्वत जीवन की एक किरण मेरे भीतर है, एक किरण आपके। अगर हम उस एक किरण से परिचित हो जाएं तो उसी

किरण के सहारे उस सूरज तक पहुंच सकते हैं जहां से वह किरण निकलती है। इसलिए मैंने कहा जो स्वयं को जान लेता है वह परमात्मा को जानने का द्वार पा जाता है, उसने एक किरण पकड़ ली सूरज की, और वह उस किरण के साथ, उस किरण के पथ पर यात्रा करके परमात्मा तक पहुंच सकता है। लेकिन जो स्वयं को नहीं जानता, जिसने एक किरण भी नहीं जानी, वह परमात्मा तक जाने का उसके पास कोई मार्ग नहीं है, और यह भी स्मरण रखिए आपकी किरण को मैं नहीं जान सकता हूं। क्योंकि जब मैं अपनी ही किरण को नहीं जान सकता हूं, आपकी किरण को क्या जानूंगा? मैं अपनी ही किरण को जान सकता हूं, और अपनी किरण को जान कर फिर मैं जान लेता हूं आपकी किरण को भी और जान लेता हूं सारी किरणों को। एक सागर की बूंद को कोई जान ले तो पूरे सागर को जान लेता है। और एक सूरज की किरण से परिचित हो जाए तो सारे सूरज को जान लेता है। लेकिन वह किरण है स्वयं की और उस किरण को जानने के लिए अकेला, एकांत होना जरूरी है। उसे चाहे ध्यान कहें, लेकिन ध्यान का मतलब किसी का ध्यान नहीं है, क्योंकि किसी का ध्यान किया तो संग शुरू हो गया, साथ शुरु हो गया।
ध्यान का अर्थ है अकेला होना, जहां कोई भी नहीं है, जहां बिल्कुल अकेला मैं रह गया, और कोई भी नहीं है। कोई विचार नहीं, कोई कल्पना नहीं, कोई प्रतिमा नहीं, कोई संगी नहीं, कोई साथी नहीं, एकदम अकेला, एकदम अकेला। इस अकेलेपन से ही स्वयं का बोध जागता है और विकसित होता है। तो अकेले होने की दिशा में कुछ करें। सत्संग न खोजें, अकेले होना खोजें। साथ न खोजें, अकेला होना खोजें। सहारा न खोजें, बेसहारा हो जाएं। आलंबन न खोजें निरालंब हो जाएं, तभी कुछ होगा। तभी कुछ हो सकता है। उसके अतिरिक्त कभी कुछ नहीं हुआ है। कभी कुछ होगा भी नहीं। जब भी कुछ हुआ है तो उसी एकांत में, जीवन में जो भी श्रेष्ठ है, और सुंदर है और शिव है, वह सब अकेले में जाना गया है, भीड़ में नहीं, साथ से नहीं। इसलिए धर्म का भीड़ से, साथ से, समुदाय से कोई संबंध नहीं है।
लेकिन हम तो उलटी बात देखते हैं जमीन पर। धार्मिक आदमी समुदाय बनाते हैं, आर्गनाइजेशन बनाते हैं, संगठन बनाते हैं, मंदिर बनाते हैं, चर्च बनाते हैं भीड़ इकट्ठी करते हैं। हिंदू इकट्ठे एक तरफ हैं, मुसलमान दूसरी तरफ, ईसाई तीसरी तरफ, जैन चौथी तरफ ऐसे पच्चीस तरह के पागलपन हैं और लोग अलग-अलग इकट्ठे हैं। भीड़ इकट्ठी है, समाज इकट्ठा है, समुदाय इकट्ठे हैं, धर्म का क्या संबंध समुदाय से, समाज से, भीड़ से? राजनीति का होगा संबंध, धर्म का क्या संबंध है? ये सब राजनीतिक अड्डे हैं, धर्म का नाम है, अड्डा राजनीति का है। इसलिए तो लड़ते हैं, और लड़वाते हैं। नहीं तो धर्म लड़ेगा और लड़वाएगा? खून करवाएगा, हत्या करवाएगा? धर्म का संबंध है व्यक्ति के एकांत से भीड़ से नहीं। राजनीति का संबंध होगा भीड़ से। ये सब राजनीतिक चालबाजियां हैं कि लोग इकट्ठे हों और लड़ें और झगड़ें। धर्म का इससे क्या संबंध? आपके हिंदू होने से धर्म का क्या संबंध है? आपके मुसलमान होने से धर्म का क्या संबंध है? धर्म का संबंध तो व्यक्ति के अकेले होने से है, और उसका दूसरे से कोई वास्ता नहीं है।
धर्म एकदम व्यैक्तिक, एकदम इंडिविजुअल बात है। उसको सोशियलिटी, सोशल, समाज और समुदाय से कोई वास्ता नहीं है। लेकिन अभी तो धर्म भीड़ और समुदाय हो गया है। और इसीलिए धर्म भ्रष्ट हुआ और पतित हुआ और धर्म की प्रतिष्ठा गई, और धर्म का आनंद गया, और धर्म की आस्था गई। और धर्म की सारी जड़ें सूख गईं इसीलिए क्योंकि हमने उसे भीड़ बना लिया। तो मैं निवेदन करूंगा, वक्त आ रहा है जमीन पर; आना चाहिए, जब कि हम इस बात को जान सकें कि धर्म नितांत वैयक्तिक बात है। जैसे प्रेम वैयक्तिक है वैसे धर्म वैयक्तिक है। जब मैं किसी को प्रेम करता हूं तो मैं प्रेम करता हूं, कोई भीड़ थोड़े ही ले जाता हूं। कोई भीड़ से क्या संबंध है? और जब मैं शांत होऊंगा तो मैं शांत होऊंगा भीड़ से क्या संबंध, हम इतने लोग यहां बैठे हैं अगर हम सब आंख बंद करके मौन हो जाएं तो यहां कोई भीड़ न रह जाएगी, एक-एक आदमी अकेला रह जाएगा। दूसरा आदमी मिट जाएगा, पड़ोसी मिट जाएगा, आप यहां अकेले रह जाएंगे। अगर पड़ोसी बना रहे तो भीड़ है, और अगर पड़ोसी मिट जाए तब आप अकेले हैं। वह जो अकेलापन है उसका संबंध धर्म से है। तो उस अकेलेपन को खोजें, कोई संगठन समूह न बनाएं, उस अकेलेपन को खोजें, जिस भांति भी हो सके, किसी तरह

स्वयं के एकांत को जान लें और पहचान लें। जिस दिन भी यह सौभाग्य पूरी तरह फलित होता है कि आदमी एक क्षण को भी अकेला हो जाता है उसी दिन दूसरे आदमी का जन्म हो जाता है। सारा जीवन बदल जाता है, कुछ से कुछ हो जाता है। कैसे यह अकेलापन पूरा हो सके, उसकी बात मैं कल सुबह करने को हूं। अभी और ज्यादा यहां कुछ नहीं कह सकूंगा।
ये छोटी सी थोड़ी सी बातें आपने प्रेम और शांति से सुनीं, इन पर सोचिएगा, विचार करिएगा, लेकिन अकेले विचार करने और सोचने से कुछ बहुत हल नहीं होगा, इन पर थोड़ा प्रयोग करिएगा। देखिए भीड़ में रह कर जिंदगी भर देखा है, थोड़ी सी देर को अकेले में रह कर भी देखिए। अगर थोड़ी सी भी अकेले की गंध मिलनी शुरू हो गई, फिर आपको कुछ ज्यादा नहीं करना पड़ेगा, वह गंध आपको खींचती चली जाएगी। अगर थोड़ी सी भी आनंद की पुलक, एक लहर भी आ गई तो फिर आपको कुछ करना नहीं पड़ेगा वह लहर आपको खींचती चली जाएगी। और आप एक दिन पाएंगे कि आप उस केंद्र पर पहुंच गए जहां कोई भी नहीं है। उस केंद्र पर पहुंच गए जहां कोई भी नहीं है। जिस दिन उसी केंद्र पर पहुंच गए उस दिन पाएंगे कि परमात्मा है, वह जो पॉइंट है, वह जो बिंदु है जहां कोई भी नहीं रह जाता, वहीं परमात्मा का अनुभव हो जाता है।
परमात्मा करे यह अनुभव सबको हो, क्योंकि इस अनुभव के बिना किसा का जीवन सार्थक नहीं होता, कृतार्थ नहीं होता, आनंद से नहीं भरता है।

मेरी बातें प्रेम से सुनीं, उसके लिए पुनः-पुनः धन्यवाद करता हूं।
सबके भीतर बैठे हुए परमात्मा के प्रति मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
पांचवां प्रवचन

जंजीर तोड़ने के सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक चर्च में एक फकीर को बोलने के लिए बुलाया हुआ था। उस चर्च के लोगों
ने कहा था कि सत्य की खोज के संबंध में कुछ कहो। वह फकीर बोलने खड़ा हुआ। उसने बोलने से पहले कहा कि मैं एक प्रश्न इस चर्च में इकट्ठे लोगों से पूछना चाहता हूं। उसके बाद ही मैं बोलना शुरू करूंगा। उसने पूछा कि चर्च में जो लोग इकट्ठे हैं वे बाइबिल का अध्ययन करते हैं? सारे लोगों ने हाथ हिलाए। वे अध्ययन करते थे। उस फकीर ने कहा कि दूसरी बात मुझे यह पूछनी है कि बाइबिल में ल्यूक की पुस्तक है, ल्यूक की पुस्तक का उनहत्तरवां अध्याय आप लोगों ने पढ़ा है? जिन लोगों ने पढ़ा हो वे हाथ ऊपर उठा दें। उस चर्च में बड़ी भीड़ थी, सिर्फ एक आदमी को छोड़ कर सारे लोगों ने हाथ ऊपर उठा दिए। वह फकीर बहुत हंसने लगा, उसने कहाः अब मैं सत्य के संबंध में कुछ कहूंगा, लेकिन उसके पहले मैं कह दूं, बाइबिल में ल्यूक का उनहत्तरवां अध्याय जैसा कोई अध्याय है ही नहीं। और उन सारे लोगों ने हाथ उठाए थे कि हम पढ़ते हैं, और उन्हत्तरवां अध्याय बाइबिल में ल्यूक का कोई है ही नहीं, वैसी कोई पुस्तक ही नहीं है। तो उस फकीर ने कहा कि अब सत्य की खोज के संबंध में जरूर मुझे कुछ कहना होगा, क्योंकि यहां जितने लोग इकट्ठे हैं उनमें सत्य से किसी का भी कोई संबंध नहीं है।
लेकिन उसने कहा कि मुझे हैरानी होती है कि इस मंदिर में एक आदमी सत्य बोलने वाला कैसे आ गया है? एक आदमी ने हाथ नहीं उठाया था। तो उस फकीर ने उस आदमी के पास जाकर पूछा कि मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूं, मंदिरों में सत्य बोलने वाले लोग इकट्ठे होते नहीं दिखाई देते, तुम कैसे भूले-भटके यहां आ गए? तुमने हाथ नहीं उठाया, फिर भी धन्यवाद भाग्य है कि एक आदमी तो कम से कम सत्य का प्रेमी आया है। उस आदमी ने कहा जरा जोर से बोलिए मुझे कम सुनाई पड़ता है, मैं समझ नहीं पाया कि वह बात क्या थी? क्या आपने यह पूछा, उन्हत्तरवां अध्याय ल्यूक का, मैं रोज उसका पाठ करता हूं। लेकिन मैं ठीक से समझ नहीं सका इसलिए मैंने हाथ नहीं उठाया, मैं थोड़ा कम सुनता हूं। मनुष्य का सारा व्यक्तित्व असत्य है। और सत्य की हम खोज करना चाहते हैं। मनुष्य का सारा व्यक्तित्व झूठ पर खड़ा है, और हम सत्य की खोज करना चाहते हैं। मनुष्य का सारा दिखावा असत्य पर खड़ा हुआ है, निश्चित ही असत्य व्यक्तित्व को साथ लेकर सत्य की खोज नहीं की जा सकती। सत्य की खोज के लिए व्यक्तित्व से असत्य का मिट जाना जरूरी है। इसलिए पहला सूत्र आपसे यह मैं कहना चाहता हूं कि क्या हम झूठे आदमी हैं? क्या हमारा व्यक्तित्व असत्य है? क्या हमने एक सूडो पर्सनेलिटी, एक मिथ्या आवरण और वस्त्रों का व्यक्तित्व बना रखा है। जिस आदमी को धर्म से कोई संबंध नहीं वह मंदिर में पूजा करता हुआ दिखाई पड़ता है। जिस आदमी के भीतर अंधकार भरा हो, उसने सफेद वस्त्र पहनने के लिए ढूंढ लिए हैं। और जिस आदमी के भीतर क्रोध हो उसके चेहरे पर क्षमा दिखाई पड़ती है। और जिस आदमी के भीतर हिंसा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है वह प्रेम के गीत गाता है। हमने अपना सारा व्यक्तित्व ही झूठ कर लिया है। रास्ते पर एक आदमी मिलता है और हम नमस्कार करते हैं और कहते हैं बड़े भाग्य, सुबह ही आपके दर्शन हो गए। और मन में हम कहे चले जाते हैं कि दुष्ट सुबह से कैसे दिखाई पड़ गया? हम जिनके प्रति प्रेम प्रदर्शित करते हैं, हमारे प्राणों में उनके लिए कोई प्रार्थना नहीं उठती, कोई प्रेम नहीं उठता। हम जो बोलते हैं, उससे हमारी आत्मा का कोई भी संबंध नहीं। हम जो दिखाई पड़ते हैं उसका हमारे वास्तविक होने से कोई भी नाता नहीं।
मैंने सुना है, लंदन में अदभुत फोटोग्राफर था। उसने अपने स्टूडियो के सामने एक तख्ती लगा रखी थी। उस तख्ती पर उसने कितने-कितने दामों के चित्र निकाले जाते हैं वह लिख छोड़ा था। वह तीन तरह के फोटो निकालता था। एक गांव का ग्रामीण भी फोटो उतरवाने गया था। उसने तख्ती पर देखा तो उसने लिख रखा है कि पहले किस्म के फोटो जो उतरवाना चाहते हैं उसके पांच रुपये दाम

होंगे। और पहले किस्म के फोटो का मतलब है आप जैसे हो वैसा ही चित्र। जो दूसरे प्रकार का चित्र उतरवाना चाहते हैं उसके दाम दस रुपये होंगे। और दूसरे प्रकार के चित्र का अर्थ है, जैसे आप लोगों को दिखाई पड़ना चाहते हो वैसा चित्र। और तीसरे प्रकार के चित्र के दाम पंद्रह रुपये होंगे, और तीसरे चित्र का मतलब है आप जैसा चाहते थे कि परमात्मा आपको बनाए वैसा चित्र। वह ग्रामीण बहुत हैरान हो गया उसने तो सोचा था चित्र एक ही प्रकार का होता होगा, उसने उस स्टूडियो के मालिक को पूछा, क्या तीन प्रकार के चित्र हो सकते हैं एक आदमी के? वह फोटोग्राफर हंसने लगा, उसने कहाः हमारे पास ज्यादा सुविधाएं नहीं हैं, एक-एक आदमी के हजार-हजार चित्र हो सकते हैं। और एक-एक आदमी की हजार-हजार तस्वीरें हैं, पत्नी के सामने उसकी तस्वीर दूसरी होती है, बेटों के बच्चों के सामने उसकी तस्वीर दूसरी होती है, मालिक के सामने उसकी तस्वीर दूसरी होती है, नौकरों के सामने उसकी तस्वीर दूसरी होती है। आदमी चौबीस घंटे तस्वीरें बदलता रहता है। वह गिरगिट की तरह बदलता रहता है। पूरे समय। आदमी के हजार तस्वीरें हो सकती हैं, हमारे पास साधन कम हैं इसलिए हम तीन ही प्रकार की तस्वीरें उतारते हैं, तुम्हें किस प्रकार की तस्वीर उतरवानी है? उस ग्रामीण ने कहा मैं तो हैरान हूं, लोग तो पहली तरह की ही तस्वीर उतरवाते होंगे, जैसा आदमी दिखाई पड़ता है वैसी ही तस्वीर उतरवानी चाहिए। क्या ऐसे लोग भी आते हैं इस स्टूडियो में जो नंबर दो, नंबर तीन की तस्वीर भी उतरवाते हों? उस स्टूडियो के मालिक ने कहाः तुम पहले आदमी आए हो जो पहले नंबर की तस्वीर उतरवाने का विचार कर रहा है। अब तक ऐसा कोई आदमी ही नहीं आया, जो भी आता है अव्वल तो तीसरे नंबर की तस्वीर उतरवाना चाहता है, अगर पैसे कम होते हैं तो दो नंबर की उतरवाता है। पहले नंबर की तस्वीर उतरवाने वाला आदमी अब तक आया ही नहीं। कोई भी आदमी ऐसा दिखाई नहीं पड़ना चाहता है जैसा वह है। आदमी जो सत्य
है उसे भीतर छुपा लेना चाहता है और जो मिथ्या है, उसे ओढ़ लेना चाहता है। हमने कितनी-कितनी तरकीबें ईजाद की हैं अपने व्यक्तित्व को झूठ और धोखे का बना लेने की। और फिर यही आदमी विचार करने लगता है कि मैं सत्य खोजूं। फिर यही आदमी गीता पढ़ने लगता है, कुरान, बाइबिल पढ़ता है, यही आदमी भजन-कीर्तन करता है। यही आदमी भगवान की मूर्ति के सामने हाथ जा.ेड कर खड़ा होता है और प्रार्थना करता है कि मुझे सत्य का पता चल जाए। और यह आदमी कभी भी यह नहीं पूछता कि मैं अगर असत्य हूं तो मुझे सत्य का पता कैसे चल सकता है? अगर मैं ही असत्य हूं तो सत्य से मेरा संबंध कैसे हो सकता है? सत्य की खोज का पहला चरण है, हमारा व्यक्तित्व सत्य होना चाहिए। हमारा व्यक्तित्व वैसा होना चाहिए, जैसा है। सीधा और साफ और सरल। हम जैसे हैं वैसे की ही स्वीकृति होनी चाहिए। लेकिन वह स्वीकृति हमारे मन में कहीं भी नहीं है। और बड़े आश्चर्य की बात है, जिनको हम भले आदमी कहते हैं, उन लोगों में सरलता और भी कम है उन लोगों की बजाय जिन्हें हम बुरे आदमी कहते हैं। जिन्हें हम अपराधी कहते हैं वे तो सरल हो भी सकते हैं, लेकिन जिन्हें हम सज्जन और साधु कहते हैं वे बिल्कुल भी सरल नहीं हैं। इसलिए सभ्यता और संस्कृति जितनी विकसित हुई है, आदमी उतना झूठा होता चला गया है। गांव में, देहात में, दूर जंगल में आदिवासी सरल मिल भी सकता है लेकिन उसे न धर्म का कोई पता है, न उसने गीता पढ़ी है, न कुरान, न बाइबिल, न वह हिंदू है न मुसलमान, न उसे मोक्ष जाने का कोई ख्याल है, न उसने सत्य के संबंध में शास्त्र रचे हैं, न उसने सत्य के लिए विवाद किया है। वहां दूर आदिवासी जंगल में मिल भी सकता है जो सच्चा आदमी हो, वैसा जैसा है। लेकिन जितनी संस्कृति विकसित होती है और सभ्यता विकसित होती है, उतना ही आदमी झूठा होता चला जाता है। उतने ही हम वस्त्रों के ऊपर वस्त्र ओढ़ते चले जाते हैं, धीरे-धीरे आदमी खो जाता है और सिर्फ कपड़ों का ढेर रह जाता है। फिर यह कपड़ों का ढेर चाहता है कि सत्य से मेरा कोई संबंध हो जाए, मैं परमात्मा को जान लूं, मैं जीवन को पहचान लूं। यह असंभव है, यह आश्चर्य की बात है कि सभ्य आदमी असत्य आदमी होता है, होना तो उलटा चाहिए था सत्य आदमी को ही सभ्य आदमी कहा जाना चाहिए। लेकिन जितनी सभ्यता, जितनी संस्कृति, जितनी शिक्षा, उतनी कनिंगनेस, उतनी चालाकी, उतना कपट, उतना झूठ।

लंदन में शेक्सपीयर का एक नाटक चल रहा था, सौ वर्ष पहले की बात है। और गांव भर में शेक्सपीयर के नाटक की चर्चा थी, जो भी बात करता था उसकी प्रशंसा करता था। लंदन का जो आर्चप्रीस्ट था, जो सबसे बड़ा पुरोहित था, उसको भी लोगों ने आकर कहा कि बहुत अदभुत नाटक है, और अभिनेता इतने कुशल हैं, इतने जीवंत हैं, ऐसा कभी देखा नहीं गया। लेकिन उस पादरी ने जैसा कि धर्मगुरु और पुरोहितों की आदत होती है, फौरन कहा, नाटक? नरक जाने का विचार कर रहे हो? मनोरंजन खोजते हो? सुख खोजते हो? इस सब में कोई भी सार नहीं है। यह उस पादरी ने ऊ पर से तो कहा, लेकिन पादरी के भीतर भी आदमी है, उतना ही जितना किसी और आदमी के भीतर। ऊपर से तो उसने यह कहा कि नरक जाओगे, नाटकों में क्यों पड़े हो? सत्य की खोज करो, परमात्मा की खोज करो, समय क्यों गंवा रहे हो? जिंदगी पूरा ही एक नाटक है, और तुम नाटकगृह में देखने क्या जाते हो? लेकिन भीतर उसे रात भर नींद नहीं आई। बार-बार यह खयाल आने लगा कि कैसा होगा नाटक? कैसे होंगे पात्र? कैसा होगा अभिनय? उसने तो कभी भी नाटक नहीं देखा था। उसने दूसरे दिन सोच-समझ कर नाटक के थियेटर के मैनेजर को एक पत्र लिखा कि मैं भी नाटक देखने आना चाहता हूं, क्या ऐसा कोई उपाय नहीं हो सकता कि पीछे का कोई दरवाजा हो, उससे मैं आ जाऊं, कोई मुझे न देख सके और मैं नाटक देख लूं। अगर ऐसा कुछ हो तो इंतजाम कर दें, बड़ी कृपा होगी। मैं नहीं चाहता हूं कि नाटक देखने वाले मुझे देख लें। तो पीछे से जब नाटक शुरू, अंधेरा हो जाए तब मैं भीतर आ जाना चाहता हूं, कोई पीछे का दरवाजा है? थियेटर के मैनेजर ने उसे पत्र का उत्तर दिया, और लिखा, हमें पीछे के दरवाजे हर गांव में व्यवस्थित करने पड़ते हैं, पीछे के दरवाजे बनाने पड़ते हैं, क्योंकि सज्जन हमेशा पीछे के दरवाजे से आते हैं, वे सामने के दरवाजे से कभी नहीं आते।
सामने से तो वे लोग आ जाते हैं, जिन्हें सज्जन होने के दंभ का कोई ख्याल नहीं है। जिन्हें यह कोई अहंकार नहीं है कि हम कोई महापुरुष हैं, कोई ज्ञानी हैं, कोई साधू हैं, कोई महात्मा हैं, वे बेचारे सामने के दरवाजे से आ जाते हैं। वे बेचारे सीधे-साधे लोग हैं, चालाक लोग नहीं। चालाक, लोग हमेशा पीछे के दरवाजे से आते हैं तो पीछे का दरवाजा तो रखना पड़ता है। आप खुशी से आएं। स्वागत है आपका, लेकिन उसने पत्र के बाद पुनश्च करके एक और सूचना लिखी, और उस सूचना में लिखा कि लेकिन एक बात मैं आपको याद दिला देना चाहता हूं, ऐसा दरवाजा तो है थियेटर में जिससे आप आएंगे तो कोई आपको नहीं देख सकेगा, लेकिन मैं यह विश्वास नहीं दिला सकता कि परमात्मा भी नहीं देख सकेगा। और यह भी हो सकता है कि आप मानते ही न हों कि परमात्मा है। क्योंकि पुरोहित मुश्किल से ही मानता है परमात्मा को। दुनिया को मनवाने की कोशिश करता है कि परमात्मा है, लेकिन खुद भलीभांति जानता है, कि मैं धंधा कर रहा हूं परमात्मा के नाम पर। तो उस थियेटर के मैनेजर ने लिखा कि मुझे शक है कि शायद आप मानते भी न हों कि परमात्मा है। पुरोहित परमात्मा को मानते हैं इसका कोई प्रमाण आज तक पृथ्वी पर नहीं मिल सका है। क्योंकि अगर पुरोहित परमात्मा को मानते होते, हिंदू का पुरोहित और मुसलमान और ईसाइ का पुरोहित अलग-अलग नहीं हो सकता था, क्योंकि परमात्मा तीन नहीं है, तीन सौ नहीं हैं। और अगर पुरोहित परमात्मा को मानते होते तो दुनिया में आज तक धर्म की कोई भी लड़ाई और हिंसा नहीं हुई होती। क्योंकि जो परमात्मा को जानते हैं और स्वीकार करते हैं उनके लिए हिंसा का कोई उपाय नहीं है, उनके लिए प्रेम के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं रह जाता।
तो उस थियेटर के मैनेजर ने लिखा कि हो सकता है आप न मानते हों कि परमात्मा है, तब भी मैं एक बात याद दिला दूं कि कोई आपको नहीं देख पाएगा कि आप थियेटर में आए, लेकिन कम से कम आप तो देख ही पाऐंगे कि आप थियेटर में आए हैं। उसका इंतजाम मैं नहीं कर सकता कि आपको भी पता न चले कि आप थियेटर में आए हैं।
आदमी ने बहुत तरह का पाखंड और हिपोक्रेसी विकसित की है और पीछे के दरवाजे निकाल लिए हैं। और धीरे-धीरे दुनिया इतनी सभ्य होती जा रही है कि किसी थियेटर में आगे के दरवाजे रखने की जरूरत धीरे-धीरे खत्म हो जाएगी, सब दरवाजे पीछे की तरफ ही होंगे। क्योंकि सभी आदमी सज्जन होते चले जा रहे हैं। आदमी का सारा व्यक्तित्व ही कृत्रिम, झूठा, आर्टिफिशियल बनाया हुआ

हो जाता है। हम एक शक्ल बनाए हुए हैं जो दूसरों को दिखाने के लिए है और हम सब अपने भीतर जानते हैं कि वह शक्ल झूठी है। हम सब भलीभांति परिचित हैं कि वह शक्ल झूठी है। और हमने न केवल जीवन के संबंध में झूठी शक्ल बना ली है, सत्य के संबंध में भी हमने झूठी शक्ल बना ली है। उसे हम थोड़ा समझें तो सत्य की खोज में कदम आगे बढ़ाए जा सकते हैं।
अगर मैं आपसे पूछूं कि ईश्वर ह? तो निश्चित ही अधिक लोग कहेंगे कि हां ईश्वर है। शायद कुछ थोड़े से लोग हों जो क हें कि नहीं है। लेकिन अगर मैं दूसरा प्रश्न पूछूं कि जो लोग कह रहे हैं कि ईश्वर है, या जो लोग कह रहे हैं कि ईश्वर नहीं है वे जान कर कह रहे हैं, उन्हें पता है, जो कह रहे हैं ईश्वर है उन्हें पता है ईश्वर के होने का? और अगर बिना पता हुए कह रहे हैं तो झूठ बोल रहे हैं। और परमात्मा के सामने भी अपनी एक झूठी तस्वीर खड़ी कर रहे हैं कि मैं आस्तिक हूं। जो लेग कह रहे हैं कि ईश्वर नहीं है, उन्होंने खोज लिया है जीवन को और अस्तित्व को और पा लिया है कि ईश्वर नहीं है, उसके न होने को उन्होंने पा लिया है? अगर उन्हें ईश्वर का न होना अब तक नहीं मिल गया है, तो वे झूठ बोल रहे हैं और ईश्वर के समक्ष, सत्य के समक्ष नास्तिक की झूठी शक्ल खड़ी कर रहे हैं। और हम सारे लोग ही इसी तरह के लोग हैं। हमने जीवन के परम सत्यों के संबंध में भी झूठी शक्लें बना ली हैं, नास्तिक की, आस्तिक की। और कभी हम अपने से नहीं पूछते हैं कि इन झूठी शक्लों को लेकर हम सत्य को खोजने निकल पड़े हैं तो क्या वह हमें मिल सकेगा? सत्य के संबंध में भी हमारी झूठी धारणाएं हैं।
एक फकीर एक गांव में ठहरा हुआ था। उस गांव के लोगों ने कहा कि क्या आप हमारी मस्जिद में प्रवचन देने नहीं चलेंगे? उस फकीर ने कहा लेकिन मुझे कुछ पता हो तो मैं कहूं। मुझे कुछ पता ही नहीं है। लेकिन उस गांव के लोगों ने सुना था कि जो लोग परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं वे ऐसा ही कहने लगते हैं कि हमें कुछ पता नहीं। जो इस साधु को कुछ पता होगा, और उससे बहुत प्रार्थना की और उसे जबरदस्ती मस्जिद ले गए। उसे जाकर मंच पर खड़ा कर दिया। तो उस फकीर ने उस मस्जिद के लोगों से पूछा कि इससे पहले कि मैं कुछ बोलूं मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूं, तुम किस संबंध में मुझसे चाहते हो कि मैं कहूं। उन लोगों ने कहा निश्चित ही हम ईश्वर के संबंध में सुनना चाहते हैं। तो उस फकीर ने पूछा तुम्हें पता है, ईश्वर है? तुम मानते हो ईश्वर है? तुम जानते हो ईश्वर है? उस मस्जिद के सारे लोगों ने कहा कि हां हम जानते हैं, एक स्वर से कि ईश्वर है, परमात्मा है, वही है। उस फकीर ने कहा फिर क्षमा करो जब तुम्हें पता ही है कि वह है तो फिर और मैं क्या बोलूं? अगर तुम्हें पता न होता तो शायद मेरे बोलने का कोई अर्थ भी था, जब पता ही है तो बात खत्म हो गई। ईश्वर के पता होने से और आगे तो ज्ञान की कोई यात्रा ही नहीं। वह तो चरम अंतिम ज्ञान है, उसके बाद तो कोई ज्ञान की कोई यात्रा नहीं, वहां तो आ जाती है सीमा, जो भी जानने योग्य है वह जान लिया गया, जो भी पाने योग्य था, वह पा लिया गया। ईश्वर अर्थात अंत, दि अल्टीमेट। तो अब मेरे और कहने की क्या जरूरत रही, क्षमा करो, व्यर्थ मैं भी श्रम करूं। तुम भी घंटों यहां बैठे रहो, मैं जाता हूं। उस गांव के मस्जिद के लोग फंस गए। उन्होंने सोचा यह तो बड़ी गड़बड़ हो गई, हमें क्या पता था, कि यह आदमी यह कहने से कि ईश्वर है और चला ही जाएगा। उन्होंने कहा कि अगले शुक्रवार को फिर प्रार्थना करनी चाहिए। अबकी बार हम तय कर लें कि हम कहेंगे कि नहीं ईश्वर है ही नहीं। हमें मालूम ही नहीं कि ईश्वर है, हमें पता ही नहीं।
दूसरा उत्तर दूसरे शुक्रवार को उस फकीर को फिर वे पकड़ कर ले आए। उसने फिर पूछा कि मित्रो क्या इरादे हैं? ईश्वर के संबंध में जानना है, फिर वही सवाल, ईश्वर है, मानते हो, जानते हो? उन सारे लोगों ने कहा, कैसा ईश्वर? कहां का ईश्वर? हमें कुछ भी पता नहीं, ईश्वर है भी, नहीं भी है, हमें कुछ मालूम नहीं, न हम कुछ मानते न हम जानते। तो उस फकीर ने कहा, बात खत्म, जब तुम ईश्वर के बाबत न मानते हो, न जानते हो तो फिजूल मेहनत करने की क्या जरूरत है? जो बात है ही नहीं, उसके संबंध में बात करने से फायदा क्या है? बेबात की बात हो जाएगी। हवा में चर्चा हो जाएगी। मैं जाता हूं। ईश्वर तुम्हारा सवाल ही नहीं है, ईश्वर तुम्हारा प्रॉब्लम नहीं है। वह फकीर तो उतर कर चला गया, जिनकी समस्या ही नहीं है ईश्वर कि उनसे ईश्वर की क्या बात करनी? गांव

के लोग तो बहुत हैरान हुए कि यह तो बड़ी मुश्किल हो गई, यह आदमी तो बड़ा धोखेबाज निकल गया। पहली बार हमने हां कहा था तो उसने गड़बड़ कर दी थी, अबकी बार ना कहा तो गड़बड़ कर दी। अब क्या हो सकता है आगे? गांव के लोगों ने सोच कर तय किया कि तीसरा भी एक उत्तर हो सकता है। तीसरे शुक्रवार इसको फिर पकड़ना चाहिए। वे तीसरे शुक्रवार उस फकीर को फिर ले आए, और उसने पूछा कि मित्रो क्या इरादे हैं? अब क्या उत्तर है? उस गांव के लोग होशियार थे। जैसा कि सभी गांव के लोग होशियार हैं। और उन होशियार लोगों ने तीसरा उत्तर खोज लिया था। होशियार लोग उत्तर खोजते रहे हैं बिना जानते हुए। इसलिए होशियारों के सब उत्तर दो कौड़ी के हैं, होशियारों के उत्तर का कोई भी मूल्य नहीं हैं। क्योंकि वे जानते नहीं है, सोचकर उत्तर तैयार कर लेते हैं।
गांव के लोगों ने तीसरा उत्तर तैयार कर लिया। जैसे कि ईश्वर के संबंध में उत्तर तैयार करना गांव के लोगों का अधिकार हो। उस फकीर ने कहा क्या इरादा है आज? ईश्वर है कि नहीं, मानते हो कि या नहीं? आधी मस्जिद के लोगों ने हाथ उठाया और कहा कि आधे लोग जानते हैं कि ईश्वर है। और आधे लोगों ने कहा हम नहीं जानते कि ईश्वर है, अब क्या इरादा है? अब यही उत्तर हो सकता था तीसरा, पुराने दो उत्तरों की कंप्रोमाइज। उन दोनों का समझौता कर लिया था। वह फकीर हंसने लगा, उसने कहा, तब तो मेरा आना बिल्कुल ही फिजूल हुआ, जिनको मालूम है वे उनको बता दें, जिनको मालूम नहीं है। मैं जाता हूं। मेरी क्या जरूरत? मेरा क्या प्रयोजन? और वह फकीर चला गया। उस फकीर से मैंने पूछा है, कि चौथी बार वे लोग नहीं आए? वह फकीर कहने लगा कि अगर चौथी बार वे आ जाते, तो फिर मुझे बोलना ही पड़ता। तो मैंने उससे पूछा कि चौथी बार क्यों बोलना पड़ता? उसने कहा, चौथी बार अब एक ही उत्तर शेष रहा था, उस मस्जिद के लोगों को कि मैं पूछता और वे चुप रह जाते और कोई भी उत्तर न देते। एक ही उत्तर और बाकी रह गया था कि मैं पूछता और वे चुप रह जाते। कोई भी उत्तर न देते। तब मुझे जरूर बोलना पड़ता। क्योंकि मौन के अतिरिक्त सत्य के संबंध में सच्चा व्यक्तित्व कुछ भी नहीं हो सकता। सत्य के संबंध में कोई भी पक्ष लेना असत्य के पक्ष में खड़ा होना है।
सत्य के संबंध में खोजी की पहली अनुभूति मौन की होगी। वह कहेगा मुझे कुछ भी पता नहीं तो मैं क्या बोलूं? हां कहूं कि ना? वह हां कहने में भी भयभीत होगा, हां गलत हो सकता है। वह न कहने में भी भयभीत होगा, न गलत हो सकता है, मुझे पता नहीं है। तो सत्य के खोजी का पहला चरण होगा मौन। वह जीवन के परम प्रश्नों पर चुप हो जाएगा। वह किसी पक्ष में खड़ा नहीं होगा। मौन है निष्पक्ष। हां और न सब पक्षों में बांट देते हैं। आस्तिक और नास्तिक इसलिए दोनों ही धार्मिक नहीं है, दोनों की खोज सत्य की खोज नहीं है, आस्तिक एक पक्ष ले रहा है हां का, नास्तिक विरोधी पक्ष ले रहा है ना का। लेकिन दोनों पक्ष ले रहे हैं, निष्पक्ष कोई भी नहीं है। और सत्य की खोज वह कर सकता है जो निष्पक्ष अनप्रिज्युडिस्ड, जिसके मन में किसी पक्ष ने कोई स्थान नहीं बनाया है। जो कहता है मुझे मालूम नहीं, इसलिए मैं किसी पक्ष में कैसे सम्मिलित हो जाऊं? जिस दिन मैं जानूंगा, उस दिन किसी पक्ष में खड़ा हो जाऊंगा, लेकिन बड़े आश्चर्य की बात है जिन्होंने जाना है वे सारे पक्षों के बाहर हो गए। वे किसी पक्ष में कभी खड़े नहीं हुए। जिन्होंने जाना है वे पक्ष के बाहर हो गए, और जो नहीं जानते वे पक्षों में विभक्त हैं। सत्य की खोज की हत्या इसलिए दुनिया में हो गई, कि सत्य के नाम पर पक्ष
बन गए। सत्य का कोई पक्ष नहीं है। सत्य का कोई मत नहीं है। सत्य का कोई पंथ नहीं है, सत्य का कोई संप्रदाय नहीं है, सत्य का कोई धर्म नहीं है। लेकिन सारी मनुष्यता विभक्त है पंथों में, धर्मों में, पक्षों में, मतों में, फिलासफिज में, सिस्टम्स में, सारी दुनिया विभक्त है, हर आदमी ने कोई पक्ष बना लिया है। और जिस आदमी ने पक्ष बना लिया है वह असत्य के रास्ते पर जा चुका। उसकी सत्य तक यात्रा नहीं हो सकती। सत्य की तरफ जाने के लिए चाहिए निष्पक्ष चित्त, अनप्रिज्युडिस्ड माइंड। एक ऐसी चेतना जो कहे कि मुझे पता नहीं है, इसलिए मैं किसी पक्ष में कैसे विभक्त हो सकता हूं? जो कहे, कि मैं हिंदू नहीं हूं, जो कहे कि मैं मुसलमान नहीं हूं, जो कहे कि मैं जैन नहीं हूं, क्योंकि मुझे पता नहीं है कि सत्य क्या है, तो मैं कैसे निर्णायक हो जाऊं कि मैं कहां हूं और कौन हूं? जो कहे कि मैं आस्तिक नहीं, नास्तिक

नहीं, जो मनुष्य इतनी हिम्मत जुटाता है इस बात को कहने की कि मैं अज्ञानी हूं, मुझे कोई पता नहीं है, मैं कैसे पक्ष ले सकता हूं। पक्ष लेने के लिए ज्ञानी मान लेने की जरूरत है अपने आप को। और इसलिए मैं कहता हूं पक्ष मनुष्य को असत्य की यात्रा पर ले जाता है। पक्ष में सम्मिलित होने का मतलब यह है कि मैंने यह स्वीकार कर लिया कि मैं जानता हूं। तभी तो पक्ष लिया जा सकता है। और हम जानते नहीं हैं और हमें ख्याल है कि हम जानते हैं। न केवल हमने पक्ष लिया है बल्कि हमने पक्ष के लिए तलवारें चलाई हैं।
धर्म के नाम पर आज तक जितनी हत्याएं हुई हैं, न तो डाकुओं ने इतनी हत्याएं की हैं, न चोरों ने, न बदमाशों ने, बड़े आश्चर्य की बात है। धर्म के नाम पर जितने मकान जले हैं, और जितनी स्त्रियों की बेइज्जती की गई है, उतनी आज तक के सारे पापियों ने मिल कर भी नहीं की। यह आश्चर्य की बात है। धर्म के नाम पर यह कैसे हो सकता है? और अगर धर्म के नाम पर यह सब होगा तो फिर अधर्म के करने के लिए कुछ भी बच नहीं रहता, फिर अधर्म क्या करेगा? अधर्म के लिए तो कोई उपाय ही नहीं छोड़ा है धार्मिक लोगों ने। यह हो सका है धर्म के नाम पर इसीलिए कि हमने धर्म को पक्ष समझा है, पंथ समझा है, धर्म का पक्ष और पंथ से कोई भी संबंध नहीं है। धार्मिक व्यक्ति होता है निष्पंथ, निष्पक्ष। क्या आप धार्मिक व्यक्ति हैं? आप कहेंगे हम धार्मिक हैं, मैं हिंदू हूं, टीका लगाता हूं, जनेऊ रखता हूं, मैं मुसलमान हूं, रोज मस्जिद जाता हूं, मैं जैन हूं, मैं नमोकार पढ़ता हूं रोज सुबह से बैठ कर। धार्मिक आदमी हूं। और आपको कभी खयाल भी न आया होगा, आप पक्ष में खड़े हो गए हैं, आप धार्मिक नहीं रह गए हैं। धार्मिक व्यक्ति खोज कर सकता है, सत्य की अधार्मिक नहीं। और धार्मिक होने के लिए निष्पक्षता पहला सूत्र है। लेकिन हम तो बच्चों के पैदा होते से ही जहर उनके दिमाग में घुसेड़ने की कोशिश करते हैं। बच्चा पैदा हुआ जल्दी उसको हिंदू बनाओ, कहीं उसको बुद्धि आ गई और उसने इनकार कर दिया कि मैं हिंदू नहीं बनता तो बड़ी देर हो जाएगी, इसलिए बहुत जल्दी खून में उसके डाल दो कि वह हिंदू है, मुसलमान है, ईसाई है, जैन है। निर्बोध बच्चों के साथ जो अत्याचार चलता रहा, दस हजार सालों से उसका हिसाब लगाना मुश्किल है।
आज तक मनुष्य-जाति ने बच्चों के साथ जो अनाचार किया है वह और किसी से साथ नहीं किया। बच्चों को पक्ष में बांध दिया गया, यह सबसे बड़ा अनाचार है, उनकी सत्य की खोज हमेशा के लिए कुंठित हो गई, अब वे कभी भी हिम्मत के साथ प्रश्न नहीं पूछ सकेंगे कि सत्य क्या है? उन्हें उत्तर पहले से ही दे दिए गए। और उन्होंने प्रश्न पूछे थे उसके पहले उत्तर दे दिए गए, इसके पहले कि वे खोज करने निकलते उन्हें शास्त्र पकड़ा दिए गए। उन्हें शास्त्र पकड़ा दिए गए, इसके पहले कि वे खुद की जिज्ञासा को जगाते उनके हाथों में सिद्धांत थमा दिए गए। वे बच्चे हमेशा के लिए असत्य में जीएंगे। असत्य में मरेंगे, वे कभी सत्य की खोज नहीं कर सकेंगे।
सत्य की खोज का दूसरा सूत्र हैः जिज्ञासा। पहला सूत्र हैः निष्पक्ष चित्त। दूसरा सूत्र हैः जिज्ञासा, इंक्वायरी। और हम बच्चों की सारी जिज्ञासा की हत्या कर देते हैं। जिज्ञासा की हत्या करने के हमने उपाय खोज रखे हैं। हमने हर जिज्ञासा का रेडिमेड उत्तर बना रखा है। कोई भी प्रश्न हो उत्तर तैयार है। हमें प्रश्न से ज्यादा मूल्य उत्तर का है। प्रश्न को दबा दो, उत्तर को ऊपर से थोप दो। बच्चा पूछे कि मृत्यु के बाद क्या है? और कह दो कि आत्मा अमर है। न खुद पता है कि आत्मा अमर है। नहीं खुद भी कुछ पता नहीं है। लेकिन बच्चे के दिमाग पर थोप दो कि आत्मा अमर है। बच्चा पूछता था कि मृत्यु क्या है? बच्चा एक प्रश्न उठाता था, एक जिंदगी का बड़ा सवाल उठाता कि मृत्यु के बाद क्या है? और मैं आपसे कहता हूं, बच्चे ने ज्यादा कीमती सवाल उठाया था, वह आपके उत्तर से बहुत ज्यादा कीमती था। क्योंकि आपका उत्तर झूठा है आपको कुछ भी पता नहीं। मौत आएगी तब आपको पता चलेगा कि आत्मा अमर है या नहीं। तब आप घबड़ाएंगे और चिल्लाएंगे कि मुझे बचा लो किसी तरह से अब मैं मर रहा हूं। तब आपको पता चलेगा कि वह आत्मा की अमरता की जो मैं बात कहता था, जानता नहीं था, सुना हुआ था। सुन लिया था, दोहरा रहा था, और दोहरा भी सिर्फ इसलिए रहा था कि मौत का बहुत मन में डर था, तो अपनी हिम्मत जुटा रहा था कि नहीं आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, मैं नहीं मरूंगा,

यह हिम्मत जुटा रहे थे। अंधेरी गली में आदमी निकलता है, तो हरे राम, हरे राम कहने लगता है, घबड़ाहट की वजह से, डर की वजह से, यह मत समझ लेना कि यह धार्मिक है। जोर-जोर से चिल्ला कर वह यह भ्रम पैदा करता है कि मैं डरा हुआ नहीं हूं। लेकिन उसका जोर से चिल्लाना बताता है कि वह डरा हुआ है। डरा हुआ नहीं होता तो हरे राम चिल्लाने की भी कोई जरूरत नहीं थी। ठंडी नदी में सुबह आदमी नहाने जाता है, पानी डालता है और चिल्लाता है, जय सीताराम, जय सीताराम, यह मत समझ लेना कि यह धार्मिक आदमी है, ठंड को भुलाने की कोशिश कर रहा है, चिल्ला कर। चिल्लाने में मन लग जाए तो भूल जाए कि ठंड लग रही है। जल्दी से नदी के बाहर हो जाएगा।
ये जो लोग आत्मा अमर है का मंत्र रटते रहते हैं, यह मत समझ लेना कि इन्हें आत्मा की अमरता का कोई भी पता है। अगर इन्हें पता होता तो इनकी जिंदगी एक सुगंध बन जाती, एक सत्य बन जाती। इनका जीवन कुछ से कुछ और हो जाता। ये आदमी ही दूसरे होते। जिस आदमी को यह पता चल गया कि मृत्यु नहीं है, वह आदमी दूसरे ही जगत में प्रवेश कर गया। उसने उस सत्य को जान लिया, जिसे जानने से सब कुछ जान लिया जाता है। उसने अमृत को अनुभव कर लिया। और जिस आदमी ने अमृत को अनुभव कर लिया, उसके जीवन में घृणा होगी? उसके जीवन में क्रोध होगा? उसके जीवन में बेईमानी होगी? जिस आदमी ने अमृत को जान लिया, उसके जीवन में क्रोध की कहां संभावनाएं हैं? क्रोध तो मृत्यु से बचने का उपाय था, वह तो सेफ्टीमेजर है। वह तो डर लगता है कि कोई मार न डाले तो हम अपनी ताकत इकट्ठा करने के लिए क्रोधित होकर सुरक्षा करते हैं। घृणा तो मौत से बचने का उपाय है। सुरक्षा के उपाय हैं ये सब। जिस आदमी को यह पता चल गया कि मौत नहीं है, उसका इस जगत में कोई शत्रु हो सकता है? शायद आपने कभी सोचा ही नहीं होगा।
मौत के भय के कारण शत्रु पैदा होते हैं, अन्यथा कोई शत्रु नहीं है,
फिर सब मित्र हैं। जब मुझे कोई मिटा ही नहीं सकता तो शत्रु हो कैसे सकता है? शत्रु का मतलब जो मुझे मिटा सकता है, जिसकी संभावना है कि जो मुझे मिटा सकता है, वह मेरा शत्रु है। लेकिन अगर मैं मिट ही नहीं सकता, तो इस जगत में शत्रु कैसे हो सकता है? फिर सब मित्र हो गए। लेकिन नहीं हमें कुछ पता नहीं है कि आत्मा अमर है। हम मौत को झुठलाने के लिए दोहरा रहे हैं कि आत्मा अमर है। और अगर एक पुरुष एक कोने में बैठ कर दोहराने लगे कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं तो क्या मतलब होगा इसका? इसका मतलब होगा कि उसको अपने पुरुष होने में खुद भी शक है। नहीं तो दोहराता नहीं है। हमें जिस बात का संदेह होता है, वही हम दोहराते हैं नहीं तो हम कभी नहीं दोहराएंगे। जो हम जानते हैं वह हम जानते हैं, दोहराने की कोई जरूरत नहीं है। मंदिरों में आश्रमों में लोग बैठे हैं वे कहते हैं कि मैं तो अजर-अमर आत्मा हूं, सुबह से मंत्र रट रहे हैं कि मैं अजर-अमर आत्मा हूं, मैं अजर हूं। पागल हो गए हैं, अगर तुम्हें पता चल गया है कि तुम अजर-अमर आत्मा हो तो यह बकवास क्यों जारी किए हो? यह किसको सुनाने के लिए चला रहे हो? यह किसलिए दोहरा रहे हो? और अगर पता नहीं चला है तो इस भ्रम में मत रहो कि बहुत बार दोहरा लेने से पता चल जाएगा। अगर इतना सत्य आसान होता कि हम किसी बात को बहुत बार दोहराएं और हम उसके जानने वाले बन जाएं, तो दुनिया में सारे लोग सत्य को कभी का जान गए होते। दोहराने से भ्रम पैदा हो सकता है, दोहराने से सत्य का पता नहीं चल सकता। जो मुझे मालूम नहीं है, मैं उसे एक बार दोहराऊं कि करोड़ बार दोहराऊं जो मुझे मालूम नहीं है वह मालूम नहीं है।
हां, लेकिन करोड़ बार दोहराने से यह पैदा हो सकता है कि वह पहली बुनियादी बात कि मुझे मालूम नहीं है, करोड़ बार दोहराने से भूल सकती है। विस्मृत हो सकती है। करोड़ बार दोहराने से यह भ्रम पैदा हो सकता है कि मुझे मालूम है। क्योंकि मैं कितने साल से दोहरा रहा हूं कि आत्मा अमर है। लेकिन आपके दोहराने से कभी कुछ नहीं होता है। बच्चे ने एक बुनियादी सवाल पूछा है कि मौत के बाद क्या है? अगर आपको मालूम नहीं है तो अपने अज्ञान को स्वीकार कर लें, यह बच्चे के साथ हित और मंगल होगा। और बच्चे की जिज्ञासा को बढ़ाने में सहयोगी होगा और बच्चे को कहें कि मुझे पता नहीं, मैं भी खोज रहा हूं और अब तक जान नहीं सका हूं। तुम भी खोजना और खोजने के पहले भूल से भी कभी मान मत लेना क्योंकि जो मान लेता है उसकी खोज बंद हो जाती है। जो मान लेता है

उसकी खोज बंद हो जाती है। जिज्ञासा का अर्थ है, बिलीफ नहीं, विश्वास नहीं, श्रद्धा। जिज्ञासा का अर्थ हैः पूरे प्राणों की यह चेष्टा कि मैं जानना चाहता हूं कि क्या है सत्य जीवन का? क्या है रहस्य जीवन का? क्या है छिपा इस सारे जगत में? इस सारी प्रकृति में? कौन है छिपा इस दृश्य के भीतर कौन अदृश्य है? इस शरीर के भीतर कौन अशरीरी है? इन शब्दों के भीतर कौन सा सत्य है? इन फूलों के भीतर कौन सा सौंदर्य है? इस सारे जीवन और जगत के भीतर क्या है छिपा? उसे मैं जानना चाहता हूं, मैं जानना चाहता हूं। और अगर मुझे जानना है तो मुझे उधार बातों से बच जाने की जरूरत है। लेकिन मनुष्य-जाति के पाखंड ने, उधार बातों ने बहुत बड़ा हाथ जुड़ाया है।
कृष्ण को पता है कि सत्य क्या है, बुद्ध को पता है कि सत्य क्या है, उनको पता है और हम उनके शब्दों को दोहरा रहे हैं। और सोच रहे हैं हमें भी पता हो जाए। उधार हैं वे शब्द, बासे और मृत। जिसे पता है, उसके शब्दों में प्राण होते हैं। लेकिन जैसे ही वे शब्द हमारे पास आते हैं निष्प्राण हो जाते हैं। हमारे पास शब्द ही आते हैं, अनुभव पीछे छूट जाता है।
एक कवि समुद्र की यात्रा पर गया हुआ था। सुबह ही जब समुद्र के तट पर पहुंचा और उसने आकाश की तरफ उठती हुई झागदार लहरों को देखा। दूर से आती हुई लहरें दिखाई पड़ीं। हवाओं के झोंके, सुबह के सूरज की बरसती हुई किरणें दिखाई पड़ीं, सुबह की सुगंध से भरी हुई हवा। उसे तत्क्षण अपनी प्रेयसी की याद आई, जो एक अस्पताल में बीमार पड़ी थी। और उसके मन को हुआ कि काश वह भी आ सकती और इस सौंदर्य को देख सकती। लेकिन वह तो बीमार है और नहीं आ सकती, फिर क्या उपाय हो सकता है? तो उसने सोचा कि मैं एक खूबसूरत पेटी खरीद कर लाऊं सूरज की किरणों को हवाओं को, समुद्र के सौंदर्य को उसमें भर दूं। और भेज दूं, कुछ तो जान सकेगी, कुछ तो देख सकेगी। कवि था इसलिए इस तरह की नासमझी की बात सोच सकता था। वह गया बाजार से एक खूबसूरत पेटी खरीद लाया। बड़ी खूबसूरत पेटी थी। और उसने जाकर समुद्र की हवाएं, और सूरज की रोशनी में पेटी को खोला और पेटी बंद कर दी। ताला लगाया। सब तरफ से बिल्कुल सील्ड कर दी पेटी। कि कहीं से सूरज की किरणें और हवाएं बाहर न निकल जाएं। और एक पत्र लिखा अपनी प्रेयसी को कि एक अपूर्व सौंदर्य का मैंने अनुभव किया है, उसे मैं पेटी में भर कर तेरे पास भेजता हूं, तू भी खुश होगी। थोड़ी सी झलक तो तुझे मिल ही जाएगी। पेटी पहुंच गई, पत्र भी पहुंच गया। उसकी प्रेयसी बहुत हैरान हुई, स्त्रियां सदा से ही पुरुषों से ज्यादा व्यावहारिक हैं। बेवकूफी की बातें उनके मन को ज्यादा अपील नहीं करतीं। इसलिए स्त्रियों को देख कर न मालूम कितने कवि पैदा हो गए, स्त्रियां कविताएं भी नहीं करतीं।ेवह बड़ी हैरान हुई कि पागल हो गया है। समुद्र की हवाएं और सूरज की रोशनियां कहीं पेटियों में बंद होती हैं? कहीं सुबह के सौंदर्य भी पेटियों में बंद होते हैं, लेकिन शायद उसने कोई तरकीब की हो, उसने पत्र पढ़ लिया पेटी खोली, वहां तो कुछ भी न था। वहां तो घुप्प अंधकार था। न कोई किरण थी, न कोई हवा थी, न कोई सुगंध थी, न कोई सौंदर्य था, वहां तो कुछ भी न था, पेटी खाली थी।
जो लोग सत्य के किनारे पहुंचे हैं, उनके प्राणों में भी लगता होगा कि
यह सौंदर्य, यह सत्य का अनुभव, यह प्रतीति उनको भी मिल जाए जो पीछे रह गए हैं, यात्रा में। उनकी करुणा के कारण वे शब्दों में भरकर उस सत्य के सौंदर्य की खबर हम तक भेजते हैं, लेकिन शब्द हम तक पहुंच जाते हैं सौंदर्य वहीं सत्य के किनारे ही रह जाता है। और शब्दों की पेटियों को हम सिर पर लेकर ढोते रहते हैं, जिंदगी भर। कोई गीता को ढो रहा है, कोई समयसार को ढो रहा है, कोई कुरान को ढो रहा है, कोई कुछ और ढो रहा है। ये शब्दों की पेटियां हैं। इन शब्दों की पेटियों को ढोने से आप कभी उस समुद्र के किनारे नहीं पहुंच पाएंगे जहां इन शब्दों को भेजने वाले लोग पहुंचे थे। यह वैसा ही पागलपन है कि मैं अंगुली उठा कर दिखाऊं कि आकाश में चांद है, और आप मेरी अंगुली पकड़ लें कि बड़े सौभाग्य की बात, चांद मिल गया। मैं दिखाऊं आकाश की तरफ कि वह रहा चांद और आप पकड़ लें मेरी अंगुली कि मिल गया चांद। तो मैं भी अपनी खोपड़ी ठोक लूंगा। अगर महावीर, और बुद्ध, और कृष्ण, और क्राइस्ट कहीं भी हैं, तो अपनी खोपड़ी ठोक-ठोक कर थक गए होंगे, हमने दिखाए थे इशारे, और लोग उन्हीं को पकड़ कर मजे से समझ रहे हैं कि सत्य मिल गया है। शब्द इशारे हैं, शास्त्र इशारे हैं और उनको हम पकड़े बैठे हुए हैं। और गुरु हैं, और महंत

हैं, संत हैं वे समझा रहे हैं, श्रद्धा रखो, आंख बंद रखो और पकड़े रहो। अगर जरा भी आंख खोली तो गड़बड़ हो जाने का डर है क्योंकि आंख खोलने से आपको भी दिखाई पड़ जाएगा कि पेटी खाली है।
इसलिए आंख खोलना मत, आंख बंद रखना, यही भक्त का लक्षण है; यही धार्मिक आदमी का लक्षण है। आंख मत खोलना। इसलिए सारी दुनिया पाखंड और झूठ से भर गई है, सारे मनुष्य का व्यक्तित्व झूठा हो गया है। आंख खोलने की जरूरत है, चाहे आंख खोलने से हमारे कितने ही दिन के पाले और पोसे हुए सत्य गिरते हों तो गिर जाएं। आंख खोलने की जरूरत है, विचार करने की जरूरत है, चाहे हमारे हजारों वर्ष के बनाए हुए भवन धूल में मिटते हों तो मिट जाएं। क्योंकि जो भवन खुली आंख को नहीं सह सकते वे भवन सपने के भवन होंगे, वे सत्य के भवन नहीं हैं। जो सत्य, सच्ची जिज्ञासा के सामने नहीं टिक सकते वे सत्य झूठ से भी बदतर हैं। जो सत्य है वह जिज्ञासा की अग्नि में निखर कर और साफ हो जाता है, सत्य के लिए विश्वास की कोई भी जरूरत नहीं है। और सत्य ने कभी भी विश्वास मांगा नहीं है, असत्य मांगता है विश्वास करो, क्योंकि असत्य केवल विश्वास के आधार पर ही खड़ा हो सकता है। सत्य कहता है विश्वास की कोई जरूरत नहीं, सोचो विचारो, खोजो क्योंकि सत्य को पता है कि तुम जितना खोजोगे, जितना विचारोगे उतने मेरे निकट आ जाओगे।
तो मैं आपसे कहता हूं, जो लोग भी सिखा रहे हैं दुनिया को विश्वास करो, श्रद्धा करो, बिलीफ करो, वे सारे लोग दुनिया में असत्य के पक्षधर हैं, वे सारे लोग दुनिया में असत्य को मजबूत कर रहे हैं। सत्य को किसी विश्वास के सहारे की कोई भी जरूरत नहीं है, सत्य अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है, असत्य के लिए विश्वास की जरूरत है। सत्य के लिए किसी की कोई जरूरत नहीं है, सत्य अपने में खड़े होने में समर्थ है। सत्य नहीं कहता कि आंख बंद करके मेरी बात मानो। सत्य कहता है खोजो, तोड़ो, जितना तुम काट सकते हो, काट दो लेकिन जो सत्य है वह हमेशा पीछे शेष रह जाएगा। लेकिन असत्य डरता है कि विचार मत करना, असत्य घबड़ाता है कि विचार किया कि उसके प्राण निकले। विश्वास हटा कि नीचे के आधार खिसके।
एक गांव में एक दुकान पर एक दिन सुबह एक बात होती थी। वह मैंने सुन ली थी, वह मैं आपसे कहता हूं। एक तेली की दुकान है, वह तेल बेचता है और एक आदमी तेल खरीदने आ गया है। तेली की दुकान के पीछे ही जहां तेली बैठा हुआ है उसके ठीक पीछे ही कोल्हू का बैल चल रहा है और तेल पेर रहा है। वह ग्राहक जो तेल खरीदने आया है, देख कर बहुत हैरान हुआ। उस बैल को कोई भी चला नहीं रहा है, वह अपने आप ही चल रहा है और तेल पेर रहा है। उसे बड़ी हैरानी हुई, उसने कहा कि यह बैल बड़ा पुराना और बड़ा धार्मिक मालूम पड़ता है। बड़ा रिलीजियस। अब ऐसे कहां लोग हैं, जो बिना चलाए चल जाएं? अब तो ऐसे लोग हैं कि सारा मुल्क भी उनको चलाने की कोशिश करे तो वे नहीं चलते! छोटा क्लर्क नहीं चल रहा है, बड़ा क्लर्क उसको चलाने की कोशिश कर रहा है। बड़ा क्लर्क भी नहीं चल रहा है, सुप्रिनटेंडेंट उसको चलाने की कोशिश कर रहा है। और छोटे क्लर्क से लेकर राष्ट्रपति तक कोई नहीं चल रहा है, सब एक दूसरे को चलाने की कोशिश कर रहे हैं और कोई भी नहीं चल रहा है। यह बैल तो बड़ा धार्मिक मालूम पड़ता है। इतना रिलिजियस, इतना धार्मिक, इतना विश्वासी। उस ग्राहक ने कहा कि धन्यवाद तुम्हारे बैल को, बड़ा आश्चर्य, कोई चला नहीं रहा है और बैल कोल्हू चला रहा है। उस तेली ने कहा आपको पता नहीं शायद, हम दुकानदार हैं, हम तरकीबें खोजना जानते हैं, उसने कहा क्या तरकीब है? उसने कहा गौर से देखों उसकी आंखों पर हमने पट्टियां बांध रखी हैं, उसे दिखाई नहीं पड़ता कि पीछे कोई चलाने वाला है कि नहीं। आंख पर पट्टियां हों तो कैसे दिखाई पड़ेगा? तो जिन लोगों का धंधा अंधेरे पर चलता है, अंधेपन पर चलता है वे आंख पर पट्टियां बांधने के लिए कहते हैं।
पुरोहित भी बड़े पुराने व्यापारी हैं, साधारण लोग तो साधारण चीजों का धंधा करते हैं कोई किराना बेचता है, कोई कपड़ा कोई सोना-चांदी, पुरोहित परमात्मा को बेच रहा है। उसके धंधे बहुत गहरे हैं। उसने उतनी गहरी ही पट्टियां आदमी की आंख पर बांध देनी चाही हैं। जितना अंधा आदमी होगा, उतना ही झूठ के व्यवसाय में उसे शोषित किया जा सकता है। वह ग्राहक बहुत हैरान हुआ, उसने कहा मैं समझा, लेकिन वह थोड़ा सोच-विचार का आदमी होगा। जैसे कि

आदमी मुश्किल से ही कभी होते हैं। उसने कहा कि मैं समझा कि आंख पर पट्टियां बंधी हैं, लेकिन बैल कभी रुक कर यह पता भी तो लगा सकता है कि कोई पीछे हांकने को है या नहीं। क्या बैल में इतनी भी बुद्धि नहीं है कि वह रुक जाए और पता लगा ले कि पीछे कोई है या नहीं? उस दुकानदार ने कहा कि अगर इतनी बुद्धि बैल में होती तो हम कोल्हू चलाते, बैल दुकान चलाता। हमने उसके गले में घंटी बांध रखी है, बैल चलता रहता है, घंटी बजती रहती है, हमको पता है कि बैल चल रहा है। घंटी जरा रुकी कि मैं उचका और बैल को चला आया। उसको यह खयाल नहीं पैदा होने देता कि मैं पीछे हमेशा मौजूद नहीं रहता हूं। घंटी बजती रहती है, मैं जानता हूं कि बैल चल रहा है, घंटी जरा ही धीमी पड़ी कि मैं उठा और बैल को चला देता हूं। बैल को भ्रम बना रहता है कि कोई आदमी हमेशा पीछे मौजूद है। लेकिन वह आदमी थोड़े विचार का आदमी रहा होगा, जैसे कि आदमी होते नहीं हैं। उस आदमी ने कहा यह तो समझ गया कि घंटी लेकिन बैल कभी खड़े होकर सिर हिला कर भी तो घंटी बजा सकता है। तुम तो पीठ किए बैठे हो। उस दुकानदार ने कहाः भाई, थोड़े धीरे बोल, अगर बैल सुन लेगा तो बड़ी मुसीबत हो जाएगी। और आगे से आप और किसी दुकान से तेल खरीद लेना, यह धंधा महंगा है।
मनुष्य के साथ भी जो लोग कहते हैं विश्वास करो, वे साथ में यह भी कहते हैं कि कहीं भी संदेह की और जिज्ञासा की बातें सुनने मत जाना। यह भी समझाते हैं कि ऐसी कोई बात मत सुन लेना जिससे विश्वास डगमगा जाए। और मैं कहता हूं जो चीज डगमगा सकती है उसका कोई भी मूल्य नहीं है। उसका दो कौड़ी मूल्य है जिसे कोई डगमगा सकता है। इसलिए जरूर उन सारी बातों को सोच लेना और खोज लेना जिनसे कि विश्वास डगमगाता हो, डगमगाता हो तो डगमगा जाए। और गिर जाए। उसका कोई मूल्य भी नहीं है, और जो संदेह की बात से डगमगा जाएगा, स्मरण रखना मौत के क्षण में मौत के धक्के से टिक नहीं सकेगा। मौत का धक्का उसको मिट्टी कर देगा, जो संदेह से ही गिर जाता है वह मौत के धक्के को कैसे सहेगा?
थोथे विश्वासियों को मौत के क्षण में पता चलता है कि जिंदगी व्यर्थ गंवा दी। कुछ भी नहीं जाना, सिर्फ मानते रहे और व्यर्थ हो गया सब कुछ। इसलिए तीसरा सूत्र आपसे कहता हूं विचार। पहला सूत्र है निष्पक्ष चित्त, दूसरा सूत्र है जिज्ञासा, तीव्र जिज्ञासा, जो किसी चीज को मानने को तैयार नहीं होती। और तीसरा सूत्र है विचार अनथक विचार।
सोचना होगा, जिंदगी के एक-एक पहलू पर सब तरफ से परीक्षा करनी होगी। और
जब तक पूरे विवेक को कोई बात अंगीकार न हो तब तक अंगीकार नहीं करनी होगी। जब तक पूरे प्राण किसी बात को स्वीकार करने को तैयार न हो जाएं, तब तक दुनिया का कोई गुरु कहता हो, कोई तीर्थंकर कहता हो, कोई अवतार कहता हो, मानने की जरूरत नहीं है। इसलिए नहीं कि तीर्थंकर और अवतार गलत कहते हैं, इसलिए नहीं मानना गलत है। वे ठीक कहते होंगे, आपका मान लेना गलत है। अगर आप न मानोगे और साहसपूर्वक चिंतन, और विचार, और मनन की तीव्र प्रक्रिया से गुजरते ही रहोगे, तो एक दिन इस प्रक्रिया और संघर्ष का यह परिणाम होगा कि प्राणों का दर्पण स्वच्छ हो जाएगा, और जिसे तीर्थंकर कहते हैं, जिसे अवतार कहते हैं वह आपको भी दिखाई पड़ेगा। उस दिन सारे धर्मग्रंथ सत्य हो जाएंगे। उसके पहले नहीं। धर्मग्रंथों से कोई सत्य नहीं पा सकता, लेकिन सत्य को पा ले तो सारे धर्मग्रंथ सत्य जरूर हो जाते हैं। धर्मग्रंथों से कोई सत्य को नहीं पा सकता, तीर्थंकर से कोई सत्य को नहीं पा सकता, अवतार से कोई सत्य को नहीं पा सकता, गुरु से कोई सत्य को नहीं पा सकता, लेकिन सत्य को पा ले तो सारे जगत के गुरु और सारे जगत के तीर्थंकर एक ही बात कह रहे हैं, एक सत्य यह जरूर दिखाई पड़ जाता है।
हम उलटी यात्रा कर रहे हैं, हम विश्वास से खोज रहे हैं, श्रद्धा से खोज रहे हैं, चरणों को पकड़ कर खोज रहे हैं, हम सत्य तक कभी भी नहीं पहुंच सकते। सत्य तक पहुंचने के लिए चाहिए साहस, करेज, अंधेरे में खड़े होने का साहस, अज्ञान में खड़े होने का साहस, इस बात का साहस कि मैं नहीं जानता हूं, और मैं आपसे कहता हूं अपने अज्ञान को स्वीकार करने से बड़ा साहस पृथ्वी पर दूसरा नहीं है। इस बात को स्वीकार करना कि मैं नहीं जानता हूं, यह बड़े से बड़ा साहस है यह बड़ा मॉरल करेज है, यह थोड़े से लोगों में यह हिम्मत होती है कि कह सकें कि हम नहीं जानते हैं, वे ही थोड़े से लोग यात्रा पर निकलते हैं खोज की

क्योंकि जो नहीं जानता है उसके प्राणों में एक पीड़ा और एक द्वंद्व शुरू हो जाता है कि मैं जानूं। और जानने की यात्रा शुरू हो जाती है।
जानने की यात्रा के तीन सूत्र मैंने आपसे कहे, उन्हें दोहरा देता हूं। और एक छोटी सी कहानी और अपनी बात को मैं पूरा कर दूंगा। निष्पक्ष हो जाएं, सारे पक्षों को आग लगा दें। मनुष्य को पक्षों की कोई जरूरत नहीं है, संप्रदायों की कोई भी जरूरत नहीं है, अगर दुनिया में चाहते हैं कि धर्म पैदा हो, तो धर्मों से मुक्त हो जाएं, अगर चाहते हों कि रिलीजन पैदा हो, तो रिलीजंस को विदा कर दें। निष्पक्ष हो जाएं। जिज्ञासा करें, डरें न। डरें न कि जिज्ञासा पूछने पर, इंक्वायरी करने पर हमारी मानी हुई मान्यताएं कहीं गिर तो न जाएंगी। जरूर गिरेंगी, गिर जाने दें, गिरना चाहिए। एक-एक मूर्ति गिर जाए हमारी मान्यता की तो हर्ज नहीं है, जिज्ञासा की तलवार से सब कुछ टूट जाए तो हर्ज नहीं है। क्योंकि जिसकी जिज्ञासा जितनी तीव्र होती है, वह परमात्मा का उतना ही प्यारा हो जाता है। उसकी प्यास उतनी तीव्र है, उसकी व्याकुलता उतनी तीव्र है, वह अपने बीच में और सत्य के बीच में कोई प्रतिमा खड़ी नहीं करना चाहता, वह कहता है कि मैं जानूंगा सत्य को, मैं बीच के दलालों से कुछ भी सीखने को राजी नहीं हूं। मैं जानना चाहता हूं।
कभी आपने सोचा, आपकी जगह कोई और प्रेम कर सकता है? हो सकता है कभी ऐसी दुनिया आ जाए, अल्डुअस हक्सले ने कहीं लिखा है, कि जब दुनिया और आराम तलब हो जाएगी, लोग और कम्फर्ट को प्रेम करने लगेंगे, तो जैसे वे अभी दूसरे काम नौकरों से करवाते हैं, प्रेम का काम भी नौकरों से करवा लेंगे। हो सकता है आदमी बड़ा अजीब है, यह भी कर सकता है कि नौकर रख ले कि प्रेम का काम तू कर दे, मुझे झंझट में मत डाल, यह हो सकता है क्योंकि प्रार्थना का काम नौकरों से हम करवा रहे हैं, हजारों साल से। और प्रार्थना प्रेम का ही गहनतम रूप है। एक आदमी एक पुजारी को पकड़ लाता है और कहता है तू प्रार्थना कर, मैं दुकान करता हूं, हम तुझे प्रार्थना की तनख्वाह दे देंगे। यज्ञ कर, हम तुझे तनख्वाह दे देंगे, प्रार्थना की। प्रार्थना हम नौकरों से करवा रहे हैं तो कभी हम प्रेम भी करवा सकते हैं, वह एक कदम और आगे है। परमात्मा और अपने बीच नौकर को लिया, प्रेमी और अपने बीच भी नौकर को लेने में कौन सी कठिनाई है? कौन सी लाजिकल तकलीफ है? नहीं लेकिन जिज्ञासा जिसकी तीव्र है, वह बीच में किसी को लेने को तैयार नहीं है। जिज्ञासा के तीव्र होने का यही मतलब है कि मैं अपने और सत्य के बीच किसी को स्वीकार नहीं करूंगा। और वे लोग धोखेबाज हैं जो सत्य के और आदमी के बीच खड़े होने की चेष्टा करते हैं, वे व्यवसायी हैं। वे धंधा करते हैं और धंधे से सत्य नहीं मिल सकता।
और तीसरी बात चाहिएः अथक विचार। चाहे सारा जीवन आग से भर जाए, चाहे सारी श्रद्धा खो जाए, सारी सांत्वना खो जाए, सारा संतोष खो जाए, जीवन एक चिंता और एक एंजायटी बन जाए, लेकिन विचार का साथ मत छोड़ना, क्योंकि विचार ही वह नाव है, जो विवेक तक पहुंचाती है। और विवेक ही वह दर्पण है जिसमें सत्य की छवि अंकित होती है। विचार है नाव, तूफान आएंगे, किनारे पर खड़े रहने में एक सुख है, वहां तूफान नहीं आते आंधियां नहीं आतीं, डूबने का और मरने का कोई भय नहीं होता। इसलिए कम साहसी लोग विश्वास के किनारे पर खड़े रह जाते हैं, हिम्मतवर लोग विचार की नाव लेते हैं और अनंत सागर में छोड़ देते हैं, जहां तूफान हैं, आंधियां हैं, मरने का डर है। लेकिन जो आदमी मरने का डर उठाने का हिम्मत नहीं रखता वह आदमी जी भी नहीं पाता, यह याद रखना। जीने की उतनी ही पात्रता गहरी होती है, जितनी मौत में उतरने की क्षमता होती है। जो मरने को जितना स्वीकार करता है, वह उतने ही गहरे अर्थों में जिंदा हो जाता है। तो किनारे पर बैठे हुए लोग हैं, विश्वास के किनारे पर, वहां संतोष है, शांति है, बैठे हैं, सागर की घबड़ाहट नहीं है, डूब जाने, मर जाने का डर नहीं है। विचार की नाव डगमगाती है हजारों बार, आंधियां आ जाती हैं, पानी भरने लगता है, ऐसा लगता है कि गए अनेक बार मन होता है कि लौट चलो विश्वास के किनारे पर जहां सारे लोग शांति से बैठे हैं। लेकिन अगर दूसरे किनारे पर पहुंचना है, जहां कि सत्य है तो यह बीच का सागर पार करना ही होगा। मैं इसको ही तपश्चर्या कहता हूं। विचार तपश्चर्या है। तपश्चर्या धूप में खड़े रहना नहीं है, वे सब सर्कस के खेल हैं। तपश्चर्या भूखे मरना नहीं है, वह सब सर्कस के खेल हैं। तपश्चर्या है विचार, क्योंकि विचार प्राणों को कंपा

देगा। सारे संतोष नष्ट हो जाएंगे, सारे कनसोलेशंस छिन जाएंगे, सारा ज्ञान छिन जाएगा, और एक अज्ञात यात्रा पर धक्का शुरू होगा, जहां न कोई संगी है, न साथी, बस विचार की नाव है और अनंत सागर है। तपश्चर्या का अर्थ है विचार, लेकिन जो विचार के साथ जाते हैं वे निश्चित पहुंच जाते हैं।
आज तक विश्वास से गया हुआ आदमी कभी नहीं पहुंचा, और विचार से गया हुआ आदमी कभी रुका नहीं है निश्चित पहुंच गया है। विचार पहुंचा देता है, विवेक के तट पर, और विवेक के तट पर उससे मिलन होता है जिसका नाम सत्य है। उसे हम प्रेम से परमात्मा कह सकते हैं, उसे हम मोक्ष कह सकते हैं, उसे हम जो चाहें वह नाम दे सकते हैं। सत्य है, लेकिन दूर है किनारा उसका। अज्ञात सागर है बीच में, और एक ही नाव है आदमी के पास। सिवाय विचार के और कोई नौका नहीं है मनुष्य के पास, क्या है आपके पास जिससे आप जाएंगे? सिवाय विचार के आपकी क्या सामर्थ्य है? सिवाय विचार के आपकी क्या शक्ति है? सिवाय विचार के आपके पास कौन सी चेतना है? कौन सी कांशसनेस है? विचार के अतिरिक्त मनुष्य के पास कुछ भी तो नहीं है। इसलिए विचार से ही मार्ग बनता है और विचार से ही मनुष्य पहुंचता है और उपलब्ध होता है।
ये थोड़ी सी बातें मैंने कहीं। एक कहानी और अपनी बात पूरी कर दूंगा।
एक पूर्णिमा की रात है और एक गांव के कुछ मित्र एक शराबखाने में इकट्ठे होकर शराब पी रहे हैं। चांदनी बरसती है; वे नाच रहे हैं, गीत गा रहे हैं। आदमी की जिंदगी इतनी दुखी हो गई है कि सिवाय शराब के न वह कभी नाचता है, न गाता है। यह बड़ी दुखद बात है। होश में आदमी रहता है तो गंभीर रहता है, दुखी और चिंतित और परेशान रहता है। जब बेहोश होता है तभी थोड़ा खुश होता है। होना उलटा चाहिए था कि आदमी होश में आनंदित होता और प्रसन्न होता। और जब बेहोश होता तो दुखी और उदास हो जाता। जिस दिन ऐसा होगा उसी दिन शराब समाप्त होगी दुनिया से। नहीं तो चिल्लाते रहें नेता दुनिया भर के, शराब नष्ट होने वाली नहीं है। क्योंकि आदमी की सामान्य जिंदगी आनंद से शून्य हो गई है। वह सिर्फ शराब में आनंदित दिखाई पड़ता है। वे नाच रहे थे, गीत गा रहे थे, वे नशे में थे। फिर किसी ने कहा कि अरे, पूर्णिमा की रात है, और उन सबने आकाश की तरफ आंखें उठाईं। होश में कोई आदमी आकाश की तरफ देखता ही नहीं। चांद को कौन देखता है? बंबई में तो शायद ही किसी को पता चलता होगा कि कब पूर्णिमा आती है और कब निकल जाती है? उनका भी बेहोशी में सिर ऊपर उठ गया--चांद! और किसी ने कहाः क्या ही अच्छा हो कि हम चलें नदी पर, नौका विहार करें, ऐसी बरसती चांदनी!
वे नौका पर पहुंच गए नदी पर। मछुए जा चुके थे। वे एक नाव में सवार हो गए। उन्होंने पतवारें उठा लीं और नाव को खेना शुरू कर दिया। आधी रात थी, सुबह होने के करीब आ गई, तब सुबह की ठंडी हवाएं चलीं और थोड़ा होश आया उन्हें। उनमें से एक ने कहाः हम पता नहीं कितनी दूर निकल आए और न मालूम किस दिशा में, अब लौटना पड़ेगा, सुबह होने के करीब हो गई, अब घर के लोग याद करते होंगे। तो कोई एक व्यक्ति नीचे उतर जाए और देखे कि हम कितनी दूर निकल आए हैं? एक व्यक्ति नीचे उतर आया और उसने कहा कि पागलो, सभी नीचे उतर आओ, हम कहीं भी नहीं गए, नौका वहीं की वहीं खड़ी है जहां हम रात खड़े थे। वे सब लोग नीचे उतरे और दंग रह गए। असल में वे नाव की जंजीर जो किनारे से बंधी थी उसे छोड़ना भूल गए। तो पतवार तो उन्होंने बहुत चलाई थी रात भर, लेकिन नौका कैसे आगे जाती, उसकी जंजीर बंधी थी।
तट से जंजीर बंधी है मनुष्य के चित्त की, इसलिए जीवन भर दौड़िए, सत्य तक नहीं पहुंच सकते हैं। उस जंजीर को तोड़ने के तीन सूत्र मैंने कहे। वह जंजीर टूट जाए तो सत्य अत्यंत निकट है, अपने से भी ज्यादा निकट सत्य है।

मेरी इन बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना, उसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
छठवां प्रवचन

श्वास का महत्व

मेरे प्रिय आत्मन्!
ध्यान अस्तित्व के साथ एक हो जाने का नाम है। हमारी सीमाएं हैं-- उन्हें तोड़ कर असीम के साथ एक हो जाने का नाम। हम जैसे एक छोटी सी बूंद हैं और बूंद जैसे सागर में गिर जाए और एक हो जाए। ध्यान कोई क्रिया नहीं है बल्कि कहें अक्रिया है, क्योंकि क्रिया कोई भी हो उससे हम बच जाएंगे पर अक्रिया में ही मिट सकते हैं। ध्यान एक अर्थ में अपने ही हाथ से मर जाने की कला है। और आश्चर्य यही है कि जो मर जाने की कला सीख जाते हैं वही केवल जीवन के परम अर्थ को उपलब्ध हो पाते हैं।
आज की सुबह इस एक घंटे में हम अपने को खोकर वह जो हमारे चारों ओर विस्तार है उसके साथ एक होने का प्रयास करेंगे। भाषा में तो यह प्रयास ही मालूम पड़ेगा। लेकिन बहुत गहरे में भीतर प्रयास नहीं हो सकता। अपने को सम्भालेंगे नहीं, छोड़ देंगे। इसके पहले कि मैं ध्यान की प्रक्रिया के लिए आपसे कहूं, केवल दो छोटी सी बातें खयाल कर लें। थोड़े से लोग हों उसमें बहुत सुखद है, और इसलिए मैनें कहीं सूचना भी नहीं की, ताकि थोड़े से ही लोग आ सकें।
एक तो सब इतने फासले पर बैठ जाएं कि कोई अगर बीच में गिर जाए तो किसी दूसरे के ऊपर न गिर जाए। जब पूरी तरह अपने को छोड़ेंगे, तो बहुत बार ऐसा लगेगा, शरीर गिर रहा है अगर उसे रोका तो बाधा हो जाएगी। वह गिरता हो तो गिर जाने दें या फिर कहीं टिक कर बैठ जाएं। और जो लोग ऊपर बैठे हैं वे नीचे आएं, क्योंकि वहां उनको पूरे वक्त यही खयाल बना रहेगा कि अपने को सम्हाले रखें। फासले पर बैठें, बहुत पास-पास न बैठें। कोई किसी को छूता हुआ तो हो ही नहीं और फिर भी फासला रखें क्योंकि अगर कोई लेटना चाहे बीच में तो लेट सके। क्योंकि जो प्रयोग मैं आपको करावाने को हूं उसमें बहुतों को बीच में लगेगा कि लेट जाएं, तो उन्हें लेट जाना है उन्हें बैठे नहीं रहना है। जैसा लगे वैसा हो जाने देना है। दूसरे की कोई चिंता नहीं करनी है कि कोई दूसरा मौजूद है। और कोई भी मौजूद हो आप अकेले ही हैं, वह दूसरा भी अकेला है। ध्यान में श्वास का सर्वाधिक महत्व है। जीवन में भी है। श्वास चल रही
है तो आदमी जीवित है और श्वास खो गई तो आदमी खो गया।
अभी-अभी मैं एक घर में गया। एक स्त्री नौ महीने से बेहोश है, और वह कोमा में पड़ी है, और डाक्टर कहते हैं कि वह कभी होश में आएगी भी नहीं। उसके होश के तंतु ही टूट गए हैं। लेकिन वह कम से कम तीन साल जिंदा रह सकेगी। वह बेहाश ही पड़ी रहेगी। उसको इंजेक्शन से दवाई पहुंचाते हैं और सारा इंतजाम करते हैं। वह करीब-करीब मृत है। मैं उनके घर देखने गया। उस स्त्री की मां से मैंने पूछा कि यह तो मर गई। उन्होंने कहाः नहीं, अभी कहां मर गई। जब तक श्वास है तब तक आशा है। अभी उसकी श्वास चल रही है। और सब तरह से मर गई परंतु श्वास चल रही है। तो जीवन से एक संबंध तो है। उस बूढ़ी औरत ने कहा कि डाक्टरों का क्या भरोसा है। जिसको वे कहते हैं कि वह जीएगा तो वह मर जाता है और जिसको वे कहते हैं कि मीन साल में मर ही जाएगा, कुछ पक्का नहीं, बच सकता है।
जीवन में श्वास हमारा संबंध है। और शायद इस बात पर कभी खयाल न किया होगा कि मन का जरा सा परिवर्तन भी श्वास पर शीघ्रता से प्रतिफलित होता है। आप क्रोध में हों तो श्वास और तरह से चलती है, आप शांत हैं तो और तरह से चलती है, आप बेचैन हैं तो और तरह से चलती है, आप कामवासना से भरे हैं तो श्वास और तरह से चलती है। श्वास पूरे समय मन की खबरें देती रहती है। जो श्वास की पूरी प्रक्रिया को समझते हैं वे आपकी श्वास को देख कर कह सकते हैं कि आप भीतर कहां होंगे, क्या कर रहे होंगे। अगर आदमी की श्वास समझी जा सके तो आदमी के भीतर का सब कुछ समझा जा सकता है।
ध्यान में तो श्वास बहुत कीमती है, सर्वाधिक कीमती। क्योंकि ज्यों- ज्यों आप लीन होंगे विराट में वैसे-वैसे श्वास रूपांतरित होगी। इससे उलटा

भी होगा, अगर श्वास रूपांतरित हो तो आप विराट में लीन होना शुरू हो जाएंगे। जैसे अगर कोई आप से कहे कि श्वास शांत रखो और क्रोध करो, तो आप बहुत मुश्किल में पड़ जाएंगे। श्वास शांत रख कर क्रोध करना असंभव है। एकदम असंभव है। श्वास में रूपांतरण अनिवार्य है।
इसलिए आप छोटे सा प्रयोग करके कभी देख लें। जब भी क्रोध आए तो क्रोध
की फिकर मत करना और श्वास को धीमा करना और तब आप अचानक पाएंगे कि क्रोध असंभव हो गया। श्वास धीमी हो तो क्रोध असंभव हो जाएगा। क्रोध असंभव हो रहा हो तो श्वास धीमी होती चली जाएगी।
अगर बुद्ध और महावीर की मूर्तियां देखें, तो क्या ऐसा नहीं लगता कि ये लोग श्वास ले रहे हों। श्वास ठहरी हुई मालूम पड़ती है। वह रुक गई। मूर्तियों की वजह से ऐसा नहीं है। मन पूरी तरह शांत होगा भीतर सारे उपद्रव मन के लीन हो जाएंगे और व्यक्ति विराट के साथ एक होगा। तो श्वास आमूल रूपांतरित होती है।
हम श्वास से ही शुरू करेंगे। दो-तीन छोटी सी बातें समझ लें फिर बीच-बीच में मैं सुझाव दूंगा। और आप समझते रहेंगे। पहली बात यह कि ध्यान में आंख बंद करके बैठेंगे लेकिन आंख ऐसे बंद नहीं करनी है कि आंख पर दबाव पड़े। आंख को ढीला छोड़ देना है और आंख अपने से बंद हो जाए। इसलिए आंख बंद न करेंगे सिर्फ छोड़ देंगे ताकि आंख बंद हो जाए। आंख पर दबाव जरा भी न हो क्योंकि आंख हमारे मस्तिष्क का सर्वाधिक संवेदनशील हिस्सा है। अगर आंख पर जरा भी दबाव है तो भीतर के मस्तिष्क के शांत होने में बड़ी कठिनाई होगी। तो सबसे पहले तो आंख की पलकों को धीरे से छोड़ दें और ऐसा खयाल करें कि आंख बंद हो रही है, आप कर नहीं रहे हैं और आंख की पलक को छोड़ें। पलक को धीरे से छोड़ दें और आंख को बंद हो जाने दें, आंख को बंद हो जाने दें, बंद न करें। बस आंख की पलक को ढीला छोड़ दें और आंख को बंद हो जाने दें। छोड़ दें, आंख को बंद हो जाने दें। जैसे ही आंख बंद हो जाए और ध्यान रहे कि यहां एक व्यक्ति भी खुली आंख से नहीं बैठेगा।
यहां इसलिए आए हैं कि इस प्रयोग को करना है अन्यथा नहीं आना चाहिए।
सो कोई भी व्यक्ति खुली आंख से नहीं बैठेगा। आंख चुपचाप बंद कर दें। ढीला छोड दें आंख खुद-ब-खुद बंद हो जाने दें और फिर बीच-बीच में भी आपको आंख खोल कर देखने की जरूरत नहीं है क्योंकि देखने हम भीतर जा रहे हैं और भीतर आंख के खुले होने की कोई जरूरत नहीं। आंख को बंद कर लें ढीला छोड़ दे और शरीर को भी शिथिल कर लें ताकि शरीर से आपको कोई बाधा न रहे, कोई स्ट्रेन न रहे। किसी को लेटना हो तो पहले ही लेट सकता है। शरीर को भी ढीला छोड़ दें। आंख बंद कर ली है, शरीर ढीला छोड़ दिया है। जिसने लेटना हो वह चुपचाप लेट जाएं। अब ध्यान श्वास पर ले जाए। भीतर देखें श्वास जा रही है आ रही है। श्वास को देखें। जैसे ही श्वास को देखना शुरू करेंगे वैसे ही उस जगह खड़े हो जाएंगे उस द्वार पर जहां से घर खुलता है।
श्वास को देखना शुरू करें। यह श्वास भीतर गई। बहुत बारीक सी है, गौर
से देखेंगे भीतर तो दिखाई पड़ने लगेगी। दिखाई पड़ने लगेगी मतलब अनुभव होने लगेगा कि श्वास भीतर जा रही है, श्वास बाहर जा रही है। अगर किसी को अनुभव न हो रहा हो, फीलिंग न हो रही हो तो थोड़ी सी गहरी श्वास लें ताकि उन्हें फीलिंग साफ मालूम पड़ने लगे। थोड़ी सी धीमी व गहरी श्वास लेकर देख लें ताकि पता चल जाए यह रही श्वास। यह श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है, श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है। देखें भीतर अनुभव करें श्वास भीतर जा रही है, श्वास बाहर जा रही है। थोड़ा सा श्वास गहरा लें ताकि साफ-साफ खयाल में आ जाए। थोड़ी गहरी श्वास लें। दस मिनट तक गहरी श्वास लेते रहें और देखते रहें, श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है। बस एक ही काम खयाल में रह जाए कि मैं श्वास को देख रहा हूं। श्वास को बिना देखे भीतर न जाने दूंगा, बिना देखे बाहर न जाने दूंगा। मैं श्वास को जानता रहूंगा, पहचानता रहूंगा, देखता रहूंगा। श्वास को देखते-देखते ही मन शांत होना शुरू हो जाएगा। एक दस मिनट श्वास को देखते रहें। मैं चुप हो जाता हूं... गहरी श्वास लें। श्वास भीतर जाएगी तो अनुभव करें कि भीतर जा रही है व श्वास बाहर जाएगी तो अनुभव करें बाहर जा रही है। बस श्वास रह जाए--आप रह जाएं एक दृष्टा की भांति जो देख रहा है श्वास के आने को व जाने को। देख रहा

है। श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है; श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है--सिर्फ देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें और मन शांत होता जाएगा, शांत होता जाएगा, शांत होता जाएगा... दस मिनट श्वास को देखते रहें। किसी को भी इस बीच लगे कि लेट जाना है तो चुपचाप लेट जाए। शरीर कंपने लगे तो रोकें नहीं कंपने दें। आंख से आंसू बहने लगें तो रोकें नहीं बहने दें। जो भी हो रहा हो उसे होने दें और आप एक ही काम करें कि श्वास को देखते रहें। फिर दस मिनट बाद मैं दूसरी सूचना आप को दूंगा। दस मिनट तक आप श्वास को देखने में लीन हो जाएं। यह श्वास आ रही है, यह श्वास जा रही है और मैं सिर्फ दृष्टा की भांति श्वास को देख रहा हूं।
गहरी श्वास लेते रहें, गहरी श्वास लें और देखते रहें। आंख बंद रखें, गहरी श्वास लें और देखते रहें कि श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है। श्वास को देखते रहें। देखते-देखते ही मन बिल्कुल शांत हो जाएगा। गहरी श्वास लें, आंख बंद रखें और देखें भीतर, श्वास बाहर जा रही है, श्वास भीतर आ रही है श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है। श्वास देखते रहें, श्वास देखते-देखते ही मन शांत हो जाता है। मैं सिर्फ श्वास को देखने वाला हूं और मैं सिर्फ श्वास को देख रहा हूं। अब मैं कुछ सुझाव देता हूं मेरे साथ अनुभव करें, वैसा ही होता चला जाएगा और धीरे-धीरे भीतर गहराई में उतर जाएंगे। जो लोग नये आए हैं वे भी आंख बंद कर लें, गहरी श्वास लें और श्वास को देखते रहें श्वास बाहर जा रही है व श्वास भीतर आ रही है।
अब मैं सुझाव देता हूं ठीक मेरे साथ अनुभव करें। बहुत शीघ्र वह जो विराट हमारे चारों ओर उपस्थित है उसमें हम लीन हो जाएंगे। सबसे पहले शरीर को ढीला छोड़ दें। श्वास जारी रहेगी और श्वास को देखते रहें साथ में शरीर को ढीला छोड़ें। मेरे साथ अनुभव करें कि शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, बिल्कुल ढीला छोड़ दें जैसे मिट्टी हो। अपने आप शरीर गिर जाए तो रोकें नहीं, गिर जाने दें। शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। भीतर श्वास को गहरा लेते रहें और देखते रहें श्वास आ रही है, श्वास जा रही है और साथ ही अनुभव करे कि शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल छोड़ दें, गिरे तो गिर जाए, आगे झुके तो झुक जाए, जो होना है वह हो जाए पर शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है। श्वास भीतर आ रही है, बाहर जा रही है। श्वास पर ध्यान रहे और शरीर को ढीला छोड़ दे। एक-एक शरीर का अंग इस तरह से ढीला छोड़ दे कि शरीर जैसे है ही है। जो मन में हो रहा है उसकी चिंता न लें। मैं देख रहा हूं कि कोई रोक रहा है, कोई सम्हाल रहा है, उसे सम्हलने न दें। चाहे वह झुकता हो झुक जाने दें, गिरता हो गिर जाने दें, शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। दस मिनट के लिए फिर श्वास को देखते रहें और शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल होता जा रहा है जैसे कोई प्राण ही न हो। शरीर शिथिल हो रहा है छोड दें। हिले, कंपन आए, शरीर गिर जाए कोई रुकावट न डाले अपनी तरफ से। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है जैसे बिल्कुल प्राण ही न हो। आप चुपचाप श्वास को देखते रहे। जिसका भी लेटने को मन हो चुपचाप लेट जाए, बैठे न रहे लेट जाए। शरीर को बिल्कुल ढीला छोड दे कोई बाधा न डाले। हमें खो देना है अपने को तो शरीर को रोकना नही। श्वास को देखते रहें और शरीर को ढीला छोड़ दे। शरीर बिल्कुल निष्प्राण हो गया जैसे है ही नहीं और शरीर की तरफ से पकड़ छोड़ते ही मन बहुत गहराई मे चला जाएगा। शरीर की पकड़ छूटी की मन गहरा गया। शरीर को बिल्कुल डीला छोड़ दे ताकि गहरे उतर सके। शरीर छूटा मन से कि गहराई आई। छोड़ दें, कोई रोके नहीं। शरीर को जरा भी न रोकें। शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है, शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिल्कुल शिथिल हो गया। श्वास पर ध्यान रखे और शरीर को निष्प्राण छोड़ दें। श्वास भीतर आ रही है, श्वास भीतर आ रही है, श्वास बाहर जा रही है, बस श्वास ही रह गई हे शरीर से पकड़ छोड़ दें। श्वास पर ध्यान रहे शरीर शिथिल हो गया है। श्वास को देखते रहे, देखते रहे, देखते रहे और शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया। उसे छोड़ दें ताकि मैं तीसरा प्रयोग आपसे कहूं।

शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें, क्योंकि तीसरे प्रयोग में वे ही जा सकेंगे जो शरीर से पकड़ छोड़ देंगे। शरीर छूट गया है। शरीर बिल्कुल ढीला छूट गया है। जो वह झुकता हो झुक जाए, गिरता हो गिर जाए, आप अपनी तरफ से शरीर को न सम्हाले। शरीर शिथिल हो गया है। एक-दो मिनट में बिल्कुल ढीला छोड़ दें ताकि तीसरे प्रयोग में प्रवेश कर सकें। शरीर शिथिल हो गया है और श्वास भीतर व बाहर दिखाई पड़ रही है, अनुभव हो रही है। अब में तीसरा प्रयोग कहता हूं। आंख बंद रखें, श्वास देखते रहें। यह ध्यान का गहरा प्रयोग है। तीसरे प्रयोग को भीतर में शुरू करें। श्वास दिखाई पड़ रही है कि भीतर आ रही है जा रही है, शरीर शिथिल छोड़ दिया है। ओंठ बिल्कुल बंद रहे व जीभ तालु से लग जाए। भीतर वहन कर लें कि होठ बंद हो गए है व जीभ तालु से लग गई है, शरीर शिथिल है, श्वास देखी जा रही है। अब प्रयोग श्वास को देखते हुए ही साथ में मन में पूछने लगे कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? श्वास को देखते रहे, श्वास का देखना जारी रहे और भीतर तीव्रता से पूछे मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? भीतर मन में ही तीव्रता से पूछे मैं कौन हूं? इतनी तेजी से पूछे की दो पूछने के बीच जगह न रह जाए मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? अपने भीतर पूरी शक्ति लगा दें और पूछे मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? श्वास दिखाई पड़ती रहें और पूछे भी तो मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक तूफान भीतर उठ जाए मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? इतने जोर से जैसे किसी बंद दरवाजे पर आई ठोकरें कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? इतने जोर से कि प्राण की पूरी शक्ति भीतर लग जाए पूछने में कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?
एक दस मिनट के लिए तीव्रता से भीतर पूछे कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? सारा शरीर कंप जाएगा, प्राण कंप जाएगा, श्वास कंप जाएगी जब भीतर पूछेगें मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? सारी शक्ति लगा दें यह पूछने में कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? श्वास का देखना जारी रहे। श्वास दिखाई पड़ रही है, अंदर आ रही है, बाहर जा रही है और साथ ही प्रत्येक श्वास के पूछते रहें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? दूसरें में कोई रुचि न लें केवल अपनी फिकर करें। आंख बंद रखें और कहें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक दस मिनट इतनी तेजी से कि पसीना- पसीना हो जाए। सारी ताकत लगा दें। इसके बाद अदभुत शांति में प्रवेश हो जाएगा। दस मिनट आप पूछे मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी, शक्ति से पूछना है मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? जोर से पूछे। पूरी तरह से अपने को थका डाले। जितना पूछ सकते है उतना पूछ लें ताकि पीछे सब शांत हो जाए। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक पांच मिनट पूरी शक्ति से भीतर पूछें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? इतनी शक्ति से जिससे तूफान उठ जाए। फिर सब छोड़ देंगे और फिर शांत रह जाएंगे। जितने तूफान में जितनी आंधी में मन जाएगा उतनी ही गहरी शांति भी उपलब्ध होगी। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? श्वास को देखते रहे। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? आखिरी ताकत लगा दें।
मैं कौन हूं? यह प्राणी के पोर-पोर में गूंजने लगे। यह रोम-रोम में गूंजने लगे कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? आखिरी दो मिनट मैं कौन हूं? में पूरी शक्ति लगा दें। फिर दस मिनट के लिए हम बिना कुछ किए पड़े रह जाएंगे। फिर श्वास देखेंगे, न फिर पूछेगे बस फिर रह जाएंगे। जो है उसके साथ फिर पड़े रह जाएंगे। तो आखिर में जितनी तेजी से पूछेगे उतनी ही गहरी शुन्य से उतर जाएंगे। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? आखिरी दो मिनटों में अपनी पूरी शक्ति भीतर लगा दें। पूरी चर्म ताकत से पूछे मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? और जब मैं कहूंगा की छोड़ कर शांत हो जाए तो फिर सब छोड़ देंगे श्वास भी, पूछना भी, देखना भी, फिर सिर्फ रह जाएंगे, जस्ट ब्लेंक अंतिम एक मिनट जोर से पूछे मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?
छोड़ दें... देखना भी व सुनना भी, सब छोड़ दें... दस मिनट के लिए कुछ भी न करें, बस रह जाएं। पक्षियों की आवाज सुनाई पड़ेंगी, सागर की लहरों की आवाज सुनाई पड़ेंगी, हवाएं पत्तों को हिलाएंगी। चारों तरफ जो हो रहा है उसमें डूब कर रह जाएं, उसके साथ एक हो जाए। यह पक्षियों की आवाज अलग न रहे, यह सागर की गर्जन अलग न रहे, सूरज की धूप अलग न रहे, अब दस मिनट के लिए कुछ भी न करें, बस इस विस्तार में डूब कर रह जाएं और मन परम गहराइयों को छुएगा, बहुत

शांति में उतर जाएगा। अब दस मिनट बिल्कुल डूब जाएं, कुछ न करें और जो है उसके साथ एक रह जाएं।
अब धीरे-धीरे आंख खोल लें... आंख न खुले तो दोनों हाथ आंख पर रख लें और फिर धीरे-धीरे आंख खोलें। जो लोग गिर गए हैं या लेट गए हैं वे धीरे-धीरे उठें। अगर उठना न बने तो उठने से पहले दो-चार गहरी श्वास लें फिर आहिस्ता- आहिस्ता उठें। झटके से कोई भी न उठे। लेकिन अगर बिल्कुल उठते न बनें तो पड़े रहें, गहरी श्वास लें और फिर धीरे-धीरे उठें। जिससे उठते न बनें वे पहले गहरी श्वास लें और फिर आहिस्ता से उठें।
कल दो-तीन बात आने के पहले खयाल कर लें। एक तो स्नान करके आएं। और आठ बजने में पांच मिनट पहले सब लोग पहुंच जाएं। और पीछे कोई भी न आए। आठ बजे दरवाजा बंद कर दिया जाएगा। तो आठ के पीछे जो लोग आते हैं उनको समझ में नहीं आता कि क्या हो रहा है। फिर वे बैठे रहते हैं, इधर-उधर देखते हैं कि कोई बात करेगा। आठ बजने में पांच मिनट पहले सारे लोग आ जाएं। जो पहले आ जाएं वे चुपचाप आंख बंद करके प्रयोग जारी कर दें। ठीक आठ बजे आकर मैं प्रयोग जारी करवाऊंगा। घर से ही चुप होकर चलें ताकि यहां आते-आते तक मन शांत हो जाए। पर यहां आकर तो बात बिल्कुल न करें और किसी भी को कोई भीतरी अनुभव हो, भीतरी प्रश्न उठे तो वह दोपहर तीन से चार आकर मिलें, परंतु बौद्धिक चर्चा के लिए नहीं। ध्यान में जिसको भीतर कुछ भी प्रतीत हो, कुछ नया अनुभव हो, कुछ समझ में न पड़े वह तीन से चार के बीच आकर मेरें पास बात कर ले, अकेला चुपचाप। अगर किसी को भी कोई अनुभव हो तो कृपया करके दूसरे से बात न करें अन्यथा अनुभव को नुकसान पहुंचता है। अगर आपको कुछ भी पता चला, कुछ भी एहसास हो, भीतर कोई शक्ति सक्रिय हो, कोई चक्र चलता मालूम पड़े, कोई प्रतिती हो तो दूसरे से बात न करे। सीधा मुझसे तीन-चार के बीच में आकर बात कर लें। रात सोते समय बिस्तर पर प्रयोग को करें और करते-करते ही सो जाए ताकि जब सुबह कल आप यहां आए तो मन पूरी तरह से तैयार हो। इन चार-पांच दिनों में गहरी यात्रा की जा सकती है और ध्यान रखें कि यहां कोई दर्शक की हैसियत से न आए। दो-चार मित्र ऐसे आते हुए मालूम होते है जो इस फिकर में है कि किसको क्या हो रहा है। यहां तो सिर्फ वही लोग आएं जो इस फिकर में हों कि उनको क्या हो सकता है। दूसरे से जिनका कोई लेना-देना नहीं। दर्शक की हैसियत से यहां कोई भी न आएं। क्योंकि ध्यान के संबंध में बाहर से देख कर कुछ भी नहीं जाना जा सकता।
अगर कोई एक व्यक्ति रोने लगे, तो आप उसको देख कर कुछ भी नहीं जान सकते
कि उसके भीतर क्या हो रहा है। और अगर उसको देख कर आप कुछ भी सोचें तो गलत होगा। उसके भीतर जो कुछ हो रहा है वह वही जान सकता है आप नहीं जान सकते हैं। और आप को पता भी नही कि एक व्यक्ति रो ले, तो उसके भीतर के कितने भार कट सकते हैं, इसका आपको पता नहीं। कोई व्यक्ति गिर पड़ा है, आप नहीं जान सकते कि उसके भीतर क्या हो रहा है। कोई व्यक्ति चक्कर खा रहा है उसके शरीर, उसके भीतर क्या हो रहा है आप नहीं जान सकते हैं। इसलिए आप दूसरे के संबंध में विचार ही न करें और दूसरे से आपनी बात भी मत कहें क्योंकि जो नहीं जानते है वे आपको पागल ही कहेंगे कि यह सब हो रहा है यह पागलपन है। जो भी कुछ आप को प्रतीत हो तीन-चार के बीच मेरे पास आ जाए और मुझसे बात कर ले। और अच्छा तो यह हो कि चार दिन प्रयोग कर लें जो कुछ भी हो वक्त में आप ही रूपांतरित हो जाएगा, हल हो जाएगा।
फिर भी कोई प्रश्न हो तो वे लिख कर दे देंगे, तो मैं कल सुबह बात कर लूंगा।

हमारी सुबह की बैठक पूरी हुई।

मैं कौन हूं?
सातवां प्रवचन

शक्ति का तूफान

मेरे प्रिय आत्मन्!
कल मैंने कहा कि ध्यान अक्रिया है। तो एक मित्र ने पूछा हैः वे समझ नहीं सके कि ध्यान अक्रिया कैसे है। क्योंकि जो हम करेंगे वह तो क्रिया ही होगी व अक्रिया कैसे होगी?
मनुष्य की भाषा के कारण बहुत भ्रम पैदा हो रहे हैं। हम बहुत सी अक्रियाओं को भी भाषा में क्रिया समझे हुए हैं। जैसे हम कहते, है फलां व्यक्ति ने जन्म लिया। सुनें तो ऐसा लगता है कि जैसे जन्म लेने में उसको भी कुछ करना पड़ा होगा। जन्म माने क्रिया। हम कहते है फलां व्यक्ति मर गया और ऐसा लगता है कि मरने में उसे कुछ करना पड़ा होगा। हम कहते हैं कोई सो गया तो ऐसा लगता है कि सोने में उसे कुछ करना पड़ा होगा। जन्म क्रिया नहीं है, मृत्यु क्रिया नहीं है लेकिन भाषा में वे क्रियाएं बन जाती हैं। आप भी कहते हैं कि मैं कल रात सोया लेकिन अगर कोई आप से पूछे कि कैसे सोए, सोने की क्रिया क्या है तो आप कठिनाई में पड़ जाएंगे। सोए आप बहुत, बाद में लेकिन सोने की क्रिया आप नहीं बता सकेगें कि सोए कैसे। हो सकता है कि कहीं पर तकिया लगाया, बिस्तर लगाया, कमरा अंधेरा किया लेकिन इन में से सोने की क्रिया कहीं भी नहीं है।
यह भी हो सकता है कि तकिया भी हो, बिस्तर भी हो, अंधेरा हो और नींद न आए। तकिया, बिस्तर और अंधेरा नींद नहीं। हां, उनकी उपस्थिति में नींद का आना सरल हो जाता है। लेकिन नींद का आना अलग ही बात है। और आप कभी-कभी नींद नहीं ला सकते, कहें की नींद आती है इसलिए नींद अक्रिया है। आप ला नहीं सकते, पकड़ नहीं सकते, कोशिश भर कर सकते हैं। फिर भी नींद आ सके इसके लिए तैयारी कर सकते हैं। प्रकाश में नींद आ सके इसके लिए तैयारी कर सकते हैं। प्रकाश में नींद आने में कठिनाई पड़ेगी अंधेरे में आसानी होगी। नीचे कांटे बिछे हों तो नींद आने में कठिनाई होगी, ठीक बिस्तर हो तो आसानी होगी। लेकिन फिर भी नींद आप नहीं लाते हैं, नींद आती है। जब में कहता हूं ध्यान अक्रिया है तो मेरा मतलब यही है कि आप जो भी कर रहे हो, वह व्यायाम ध्यान की बाहरी व्यवस्था है फिर उस व्यवस्था में ध्यान आएगा आप ला नहीं सकते है। आप सिर्फ ऊपरी समझ लेना चाहिए, इंतजाम कर रहे हैं। ऊपरी इंतजाम का क्या मतलब है-यह भी समझ लेना चाहिए। इसलिए दुनिया में ध्यान की कोई विधि, कोई मेथड नहीं है। न नींद की कोई विधि है, न कोई मेथड है, रिचुअल है, क्रिया का और नींद का। एक छोटा बच्चा मुंह में अंगूठा डाल कर सो जाता है। अंगूठा बाहर खींचो और उसकी नींद पड़नी मुश्किल हो जाए। उसने भी इंतजाम कर रखा है, एसोसिएशन बना रखा है कि जब भी उसका अंगूठा मुंह में गया तो उसका मन नींद के लिए तैयार हो जाता है। अंगूठे का मुंह में जाना सिग्नल का काम करता है उसके लिए कि अब नींद आ जाएगी और कुछ भी नहीं। तकिया और बिस्तर भी सब सिग्नल का काम करते हैं और कुछ भी नहीं। इसलिए नए मकान में तकिए पर नए बिस्तर पर नींद मुश्किल हो जाती है। थोड़ा सा भेद हो गया है। छोटे कमरों में सोने वाला आदमी बड़े कमरों में सोने में थोड़ी अड़चन कर रहा है। मन कहता है कि यह वह जगह नहीं जहां रोज नींद आती थी। थोड़ी बाधा डालता है। तो ऊपरी इंतजाम का मतलब है कि मन बाधा न डाले ऐसी व्यवस्था कर लें। अब जैसे यहां जो भी हम करेंगे वह ध्यान नहीं है, व्यवस्था है अब ध्यान आएगा। हम सब इतना ही करेंगे कि हमारी तरफ से ध्यान में जो बाधाएं उपस्थित होती हैं वे हम अलग कर देंगे और फिर कुछ न करेंगे। सुबह सूरज निकला है। आप दरवाजा बंद कर के बैठे हैं। सूरज भीतर नहीं आ रहा है। आप मुझसे पूछते हैं कि हम सूरज को भीतर लाने के लिए क्या करें? टोकरियों में सूरज की रोशनी भर लाएं, गठरियों में बांध लें, मजदूर लगा लें, क्या करें? सूरज की रोशनी को भीतर लाना है। मैं आपसे कहता हूं कि आप न ला सकेंगे। सूरज की रोशनी भीतर आ सकती है लाई नहीं जा सकती। उसको क्रिया नहीं बना सकते हैं। आप कृपा करके इतना ही करें कि सूरज की रोशनी में जो बाधा पड़ गई दरवाजा बंद होने की उतना दरवाजा भर खोल

दें। वह क्रिया है। दरवाजा खोलना क्रिया है कि सूरज आएगा। हालांकि आप मेरे से कह सकते हैं कि आज मैं दरवाजा खोल कर सूरज को भीतर ले आया, लेकिन आप गलत कह रहे हैं। आपने सिर्फ दरवाजा खोला व आने का काम सूरज ने किया आपने नहीं, लेकिन दरवाजा न खोलते तो सूरज को रोकने का काम आप करते।
इसका मतलब ध्यान को हम रोक सकते हैं, ला नहीं सकते, और हम सब मिलकर ध्यान को रोक रहे हैं। तो जब मैं कहता हूं कि यह व्यवस्था करना तो उसका मतलब है कि ध्यान को रोकने का आपका जो इंतजाम है, कृपा करके उसको हटा दें, ध्यान आ जाएगा दरवाजा खोल दें, सूरज आ जाएगा। और जिस दिन ध्यान आएगा उस दिन हम जाकर किसी से कह न सकेंगे कि मुझे ध्यान नहीं आया। उस दिन हम कहेंगे प्रभु की कृपा। जिसको मिलेगा वह यह नहीं कह सकेगा कि मैंने पा लिया, वह कहेगा, उसका प्रसाद, वह कहेगा, उसकी ग्रेस और अगर परमात्मा को नहीं मानता तो वह कहेगा कि मुझे कुछ पता नहीं कि कहां से आ गया। अनजान अज्ञात से आगमन हुआ, मेरा कोई हाथ नहीं। जिसको मिलेगा वह यह न कह सकेगा कि मैंने पा लिया क्योंकि उसे साफ दिखाई पड़ेगा कि मैंने तो पाने की बहुत कोशिश की, मैं न पा सका। इसलिए जिन्होंने पाया है वे उतना ही कहेंगे कि हम बाधा न बने बस। जिस दिन बुद्ध को ज्ञान मिला तो किसी ने पूछा कि आपने कैसे पाया। तो बुद्ध ने कहा जब तक पाने की कोशिश की तब तक तो नहीं पाया। जिस दिन भाग-दौड़ छोड़ दी और अपनी तरफ से जो हमने दीवारें उठाई थीं वह गिरा दीं। वह मिला ही हुआ था, वह द्वार पर ही खड़ा था लेकिन द्वार बंद थे।
तो आप द्वार बंद कर सकते हैं, खोल सकते हैं लेकिन प्रकाश को ला नहीं सकते, प्रकाश आएगा। तो जब मैंने कहा कि ध्यान अक्रिया है तो मेरा मतलब है आपकी क्रिया नहीं है। लेकिन आप इससे यह मत सोच लेना कि आपको कुछ भी नहीं करना दरवाजा तो खोलना ही है, बिस्तर तो लगाना ही है, तकिया तो लगाना ही है, अंधेरा तो करना ही है। नींद आएगी तो उसके लिए पूर्ण भूमिका भी बनानी जरूरी है। कभी-कभी बिना पूर्व भूमिका के भी आती है। अगर बहुत थक गए हों, बहुत दिन सोने को न मिला हो, तो पत्थर पर भी आती है, भरी दोपहर में भी आती है, तकिए की भी जरूरत नहीं पड़ती। रात की भी आवश्यकता नहीं रहती, शांति की भी जरूरत नहीं रहती, बाजार में भी आ सकती है, सड़क के रास्ते पर भी आ सकती है और कभी आ गई लेकिन इतना थका होना जरूरी है और इतना कोई थका हुआ है नहीं। परमात्मा की, सत्य की इतनी प्यास हो जाए, इतने थक गए हो, इतने दौड़े हों, इतना चाहा हो, इतना खोजा हो, तो ध्यान बिना किसी इंतजाम के भी आता है। इसलिए जब किन्हीं को बिना इंतजाम के आ जाता है तो दूसरों से कहते हैं कि इंतजाम की कोई जरूरत नहीं। लेकिन इतने इंतजाम की जरूरत है। फिर भी यह इंतजाम ध्यान का नहीं है यह फर्क समझ लेने का है, यह सिर्फ पूर्व भूमिका है जिसमें आ सके इसके लिए हम द्वार खोल देते हैं।
इस पूर्व भूमिका के लिए सर्वाधिक महत्वपूर्ण जो सूत्र है वह मैं आपको
कह दूं क्योंकि प्रयोग कहने से नहीं, प्रयोग करने से ही समझ में आ सकता है। कई बार जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ध्यान में प्रवेश के लिए वह श्वास है, श्वास है द्वार। जीवन की समस्त महत्वपूर्ण चीजों का द्वार श्वास है। श्वास के ही मार्ग से जन्म आता है, श्वास के ही मार्ग से मृत्यु आती है, श्वास के ही मार्ग से ध्यान आता है, श्वास के ही मार्ग से परमात्मा आता है। श्वास जो है वह मार्ग है। श्वास से ही संबंधित होकर जीवन प्रकट होता है और श्वास से ही विछिन्न होकर जीवन अप्रकट होता है। ये पौधे भी श्वास ले रहे हैं, यह सागर भी श्वास ले रहा है, और ये पक्षी भी श्वास ले रहे हैं। सारा जीवन श्वास का खेल है। ऐसा समझ सकते हैं कि श्वास की अनंत लहरों का नाम जीवन है। जहां-जहां से श्वास विदा हो जाती है वहां-वहां जीवन क्षीण हो जाता है। श्वास के पथ से ही परमात्मा भी आएगा। श्वास के ही पथ से सब कुछ आया है और गया है। फिर श्वास ध्यान के लिए बड़ी महत्वपूर्ण बात है। लेकिन श्वास दो तरह से ली जा सकती है। एक अनजाने, बेहोशी में, मूर्च्छित, जैसा हम ले रहे हैं। श्वास चल रही है चौबीस घंटे लेकिन हमने कभी खयाल नहीं दिया श्वास पर। जो जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण क्रिया है वह बिल्कुल ही अनजान, चुपचाप चल रही है। हमने कभी उस पर ध्यान नहीं दिया। श्वास पर हम कभी जागे नहीं। यदि हम श्वास के प्रति जाग सके तो तत्काल श्वास के साथ ध्यान के आगमन का द्वार खुल जाता है। कुछ और करने की जरूरत नहीं। अगर कोई

व्यक्ति चौबीस घंटे में, जब भी उसे खयाल आ जाए, श्वास के प्रति होश से भर जाए, माइंडफु ली हो जाए कि यह श्वास जा रही, यह श्वास आ रही, तो तत्काल एक दूसरा मार्ग भीतर खुलना शुरू हो जाता है। श्वास की अवेयरनेस, श्वास को होशपूर्वक देखने से तत्काल चेतना में नए दरवाजे खुलने शुरू हो जाते हैं। श्वास मूचि्र्छत और श्वास अमूचि्र्छत। अगर श्वास मूचि्र्र्छत ले रहे हैं आप, तो आप ध्यान के रास्ते पर प्रवेश न कर सकेंगे। होशपूर्वक ले रहे हैं, जान कर ले रहे हैं, खयाल है कि यह श्वास जा रही है, आ रही है तो आपके भीतर दो चीजें हो गईं, एक श्वास और एक आप, ये दो अलग हो गए तत्काल। अभी श्वास और आप एक हैं। अभी आइडेंटिटी है। अभी ऐसा लगता है कि मैं श्वास हूं। अगर कोई आपकी नाक दबा दे तो आप चिल्ला कर कहेंगे मुझे मारो मत, मार डालोगे क्या? छोड़ो मुझे। कोई गर्दन दबाए श्वास रोके तो आप कहेंगे, मरा। अभी मैं और श्वास एक हैं। अज्ञानी और ज्ञानी में एक ही फर्क है। जिसकी मैं और श्वास एक हैं वह अज्ञानी है और जिसकी मैं और श्वास दो हो गए हों वह ज्ञानी है। जिसे यह साफ दिखाई पड़ रहा है कि मैं अलग और श्वास अलग। उसके बाद उसकी मृत्यु नहीं हो सकती। जब तक श्वास से समझा है उसने कि मैं श्वास हूं तब तक मृत्यु होगी क्योंकि कल श्वास टूटेगी। जिस दिन उसने जाना कि मैं श्वास के पीछे हूं अलग, उस दिन के बाद मृत्यु असंभव हो गई। श्वास टूटेगी फिर भी वह जानेगा कि मैं हूं। श्वास बंद हो जाएगी फिर भी वह जानेगा कि मैं हूं। इसलिए श्वास पर पहला सूत्र है कि हम श्वास को देखते हुए कैसे ले सकें, होश से कैसे ले सकें, श्वास को कैसे देख सकें, जान सकें, पहचान सकें। और हमारे भीतर जो क्रिया हो रही है वह श्वास की ही क्रिया हो रही है। यह हमारा पूरा शरीर श्वास की क्रिया को करने के लिए इंतजाम है, सिचुएशन है। यह सारा इंतजाम, यह खून का दौड़ना, इन हड्डियों का होना, इस हृदय की धड़कन, यह सारा का सारा यंत्र एक काम के लिए है इसके केंद्र पर श्वास है। श्वास लेने के लिए सारी की सारी व्यवस्था है। यह पूरा शरीर श्वास लेने का यंत्र है। तो जैसे ही हम श्वास से अलग हुए हम शरीर से भी अलग हो गए। तत्काल पता चलेगा कि मैं शरीर नहीं हूं। और जिसे यह अनुभव होने लगा कि मैं शरीर नहीं हूं, उसे अनुभव होने लगेगा कि मैं कौन हूं?
एक मित्र ने पूछा है कि क्या श्वास गहरी और तीव्र दोनों एक साथ होनी चाहिए?
दोनों एक साथ हों तो ज्यादा परिणाम होगा। गहरी भी हो और तीव्रता से भी हो, गहरी भी हो और तेजी से भी हो। चाहता मैं यह हूं कि श्वास पर ही सारी शक्ति लग जाए ताकि मन को करने को और कोई काम शेष न रहे। थोड़ा भी मन बाकी न रह जाए सारा श्वास पर लग जाए। जो थोड़ा बहुत बाकी रह ही जाता है इसीलिए बाद में मैं कौन हूं, इस पर उसे भी लगा देना है। लेकिन मित्रों ने पूछा है कि जब "मैं कौन हूं" तीव्रता से पूछते हैं तो श्वास की तीव्रता पहले जैसी नहीं रह जाती। नहीं रह जाएगी, क्योंकि शक्ति फिर "मैं कौन हूं" के पूछने में थोड़ी चली जाती है। इसकी चिंता न करें, शक्ति पूरी लग जाए। चाहे वह श्वास पर लग जाए, चाहे "मैं कौन हूं" पर लग जाए। ऐसा हो जाए कि आपके भीतर अब करने के लिए और कोई शक्ति पीछे शेष नहीं रह गई। रिमेनिंग कुछ भी न रह जाए पूरी शक्ति आप की तरफ से लग जाए और परिणाम आ जाएगा।
दो-तीन मित्रों ने पूछा हैः कुंडलिनी क्या है?
वह तो बड़ी बात है। अगली बार संभव हुआ तो दो-चार दिन उस पर ही बात करनी पड़े। बहुत संक्षिप्त में इतना समझें कि मनुष्य के शरीर के भीतर अदभुत शक्तियों का निवास है लेकिन सोई हुई हैं बहुत सी शक्तियां। कुंडलिनी उस शक्ति को कह रहे हैं जो मनुष्य के पहले केंद्र से उठ कर अंतिम केंद्र की तरफ यात्रा करती है। वह उसकी डिंब से होकर गुजरेगी मस्तिष्क के ऊपर तक जाएगी जैसे कोई विद्युत की धारा भीतर बहती हो ऊपर उठती हो या जैसे कोई सांप सोया हो और फन उठाता हो। बहुत तरह का अनुभव हो सकता है। जब ऐसा अनुभव हो रहा हो तब भयभीत होने की जरूरत नहीं है क्योंकि जहां भयभीत हो गए वहीं अनुभव रुक जाएगा। जब वैसा अनुभव हो रहा हो तो तब अत्यंत प्रफुल्लता से, अत्यंत रिसैप्टिविटी से, निमंत्रण से, इनवाइटिंग हो ताकि वह पूरा हो सके। बहुतों ने तो यह पूछा है कि पूरे शरीर में विद्युत की धाराएं दौड़ती हुई मालूम पड़ती हैं। मालूम पड़ेगी। उन विद्युत की दौड़ती हुई धाराओं को पूरी

तरह से स्वीकार कर लें। और वे बड़ी तेजी से दौड़ें तो रोकने की कोशिश मत करें। यह विद्युत की धाराएं शरीर को सब तरफ से शुद्ध कर जाएंगी, मन को शुद्ध कर जाएंगी। लेकिन अगर उनको रोका तो नुकसान हो सकता है। इसलिए निरंतर मैं कहता हूं कि जरा भी रोकें न, सिर्फ छोड़ दें, एक ओपन रह जाएं। आप जो भी हो रहा है होने दें।
बहुत से मित्रों के मुख से जोर से चिल्लाहट निकल गई। निकल जाएगी और भी ज्यादा। कुछ तो रोक लेते हैं। तो किन्हींने पूछा है कि वे रोकें या न रोकें।
निरंतर मैं कह रहा हूं कि कुछ भी न रोकें। पूछा है कि क्यों आवाज मुंह
से निकल जाती है, क्यों रोना निकल जाता है, क्यों हंसना आ जाता है इतनी तीव्रता से? ऐसा लगता है कि कहीं हम अपने होश के बाहर तो नहीं? हमने अपने मन के साथ बहुत दुर्व्यवहार किए हैं। कभी रोना चाहा है जोर से तो उसे भी रोक लिया, वह अटका रह गया है। कभी हंसना चाहा है जोर से तो उसे भी रोक लिया है, वह भी अटका रह गया है। कभी चिल्लाना चाहा है वह भी नहीं चिल्ला पाए हैं, वह भी अटका रह गया है। सभ्यता ने आदमी को अधूरा कर दिया है सब तरफ से। न पूरा हंसता है, न पूरा रोता है, न पूरा जीता है, न पूरा प्रेम करता है, न पूरा क्रोध करता है, न मित्रता करता है पूरी, न लड़ सकता है पूरी तरह। सब तरफ अधूरा-अधूरा है। वह सब अटका रह गया। ध्यान की गहराई तभी उपलब्ध होगी जब वह सब अटका हुआ बिखर कर बह जाएगा। उसे रोकेंगे तो ध्यान की गहराई में जाना असंभव है। इसलिए रोकें मत। चिल्लाने की स्थिति हो गई हो भीतर और फूट रहा है पूरा प्राण चिल्लाने को तो चिल्ला लेने दें। थोड़ी देर में वे आवाजें निकल जाएंगी और भीतर आप हलके हो जाएंगे। वर्षों का भार निकल सकता है। नही तो वहीं अटक जाएंगे। और इसकी चिंता ही न करें कि कौन क्या सोचेगा? यह कौन क्या सोचेगा, यही हमारी मृत्यु बन गई। चौबीस घंटे सिर्फ डरे हुए जी रहें हैं कि कौन क्या सोचेगा। उनके सोचने की वजह से हम जी ही नहीं पाते। अकेले हैं आप, किसी से सोचने का कोई मूल्य ही नहीं। जीना है आपको, होना है आपको, तो बिल्कुल छोड़ दें।
अब कुछ मित्रों ने पूछा है कि ऐसा लगता है कि किसी और की आवाज है, हमारी आवाज नहीं है। कल एक मित्र करीब-करीब ऐसी हालत में थे जैसे कि कोई दहाड़ने के पहले सिंह हो, लेकिन उन्होंने बहुत संभाल लिया, वे दहाड़ लेते तो बहुत सुख होता। क्या कारण है कि पशु की आवाज हमारे भीतर से?
इसके कारण तो लंबे हैं। लेकिन एक संक्षिप्त बात आपसे कह दूं कि हम सब किसी न किसी पशु योनियों से यात्रा करके मनुष्य तक आते हैं। किसी पशु की आवाज बहुत जोर से निकलने लगे तो वह बहुत सिंबालिक है। वह इस बात की खबर है कि आप किस योनि से यात्रा करके मनुष्य तक आ रहे हैं। वह आपकी पिछली योनि की खबर देती है। उसे निकल जाने दें उसकी कोई चिंता न लें। किसी के शरीर में इतने जोर से शक्ति का अविर्भाव होगा तो नाचने लगे, खड़ा हो जाए, चिल्लाने लगे, दूसरे की चिंता नहीं करनी है। आप अगर आंख खोल कर भी देखेंगे तो आप भटक जाते हैं। आप गए आपका काम बंद हो गया। किसको क्या हो रहा है वह उसे होने दें। आपको जो हो रहा है वह आप होने दें, रोकें न। अगर खड़े होने की शरीर की स्थिति है तो खड़े हो जाएं, क्योंकि खड़े होने की स्थिति का मतलब यह है कि भीतर कोई धारा उठना चाहती है जो बैठे में नहीं पूरी तरह उठ पाएगी, इसीलिए शरीर खड़ा हो रहा है। किसी के हाथ मुद्रा बना रहे हैं, किसी का सिर घूम रहा है, कोई चक्कर खा रहा है, कोई गिर पड़ा है कोई मछली की तरह तड़फ रहा है, किसी का एक पैर ही कंप रहा है, किसी का एक हाथ ही ऊंचा-नीचा उठ रहा है। वह जो भी हो रहा है आप छोड़ दें। शक्ति भीतर काम कर रही है उसे काम करने दें। वह शक्ति आपको पहले से नई अदभुत स्थितियों में छोड़ जाएगी।
कोई बीस-पच्चीस मित्र उस जगह आ गएं हैं जहां एक नया अनुभव भी हो सकता है। उसकी मैं आज बात करूंगा, संभव है वह आज हो सके। जब आप पूरी तीव्रता में, टोटल इनटेंसिटी में, जब आप समग्रता से समर्पण करते हैं, जब आप पूरी तरह अपने को छोड़ते हैं, और जब आपके भीतर जो भी होता है आप होने देते हैं, रोकने वाले नहीं बनते। जब यह ठीक चरम स्थिति में पहुंचे तो आपके भीतर कोई बड़ी शक्ति ऊपर से उतर गई हो जैसे कोई नदी किसी सागर में गिरे, जैसे कोई विद्युत की धारा ऊपर से आपके ऊपर आ जाए और आपमें प्रवेश कर जाए, वैसा अनुभव भी शुरू

होगा। जब वैसा अनुभव होगा तो आप बिल्कुल ही मुश्किल में पड़ जाएंगे क्योंकि उतनी बड़ी शक्ति का अवतरण कभी भी आपके लिए खयाल में नहीं है। जब वह आएगी तो बिल्कुल ही आप मंत्रवत घूमने लगेंगे, गिरेंगे, लोटेंगे, चिल्ला सकते हैं, नाच सकते हैं, कुछ भी हो सकता है, कुछ भी कहा नहीं जा सकता। अपनी तरफ से आप चरम स्थिति में पहुंच जाए तो बड़ी शक्ति ऊपर से भी आपके साथ संबंधित हो सकती है लेकिन आप जब तक अपनी तरफ से पूरे न पहुंच जाएं तब तक यह नहीं होगा। यह कांटेक्ट, यह संपर्क आपकी चरम स्थिति में ही हो पाएगा। इसलिए आज हम पूरी कोशिश करें, पूरी ताकत की।
इन चार दिनों में काफी गति हुई है और ध्यान रहे एक भी आदमी दर्शक की भांति न बैठा रहे क्योंकि वह पूरे एटमास्फियर को नुकसान पहुंचाता है। वह आदमी जिस जगह बैठा है उस जगह सब तरफ जो विद्युत की धाराएं फैलने लगती हैं उस आदमी की वजह से निरंतर बाधा पड़ती है। वह नॉन-कंडक्टर की तरह बीच में बैठ जाता है। किसी को देखना भी हो तो वह बीच से एकदम हट जाए। वह कहीं भी किनारे दूर दिवालों पर बैठ जाए। बीच में यहां न बैठा हो। और देखने का कोई मूल्य भी नहीं है। देखने से कुछ होने वाला भी नहीं है। आज मैं आशा करता हूं कि हम पूरी शक्ति लगाएंगे। हमने कोशिश की है लेकिन फिर भी बहुत शक्ति बाकी रह जाती है।
कल मैंने कहा था कि मैं ध्यान के पहले कुछ लोगों को जाकर स्पर्श करूंगा वे ही दोपहर आ सकते हैं। लेकिन उसमें कम से कम घंटा भर लग जाएगा। इसलिए वह संभव नहीं है और मैं जिस वजह से स्पर्श करना चाहता था वह आपको ही कह देता हूं, आप खुद भी खयाल कर लेंगे। मैं उन लोगों को स्पर्श करना चाहता था जिनके भीतर बहुत तीव्रता से शक्ति जग रही है लेकिन जो कहीं छोटी-मोटी बाधा डाल रहे हैं। तो जिनको भी ऐसा लगता है कि कुछ हो रहा है लेकिन मैं बाधा डाल रहा हूं वे लोग दोपहर मिलने को आ जाएं और फिर जो मुझे करना था आपको स्पर्श करके वे नारगोल के शिविर में संभव हो सकेगा क्योंकि चार दिनों में हम साथ होंगे, ज्यादा समय होगा। और जिन मित्रों को भी खयाल हो और गहरे जाने को वे नारगोल जरूर ही आ जाएं। इस बार बहुत पूर्व लक्षण है कि वहां बहुत कुछ हो सकेगा।
अब हम ध्यान के लिए बैठें।
तो पहले तो हम देख लें कि कोई किसी को स्पर्श न करे और एक दूसरे से दूर
हो जाएं। जिनको लेटना है या उन्हें पता है कि बीच में वे गिर जाएंगे, वे पहले से लेट जाएं ताकि उनके लिए जगह बन जाए। चुपचाप। एक संकल्प लेकर बैठें कि आज अपनी पूरी शक्ति लगा देंगे। दूसरी प्रार्थना लेकर बैठें कि अपनी पूरी शक्ति जब जग जाए तो परमात्मा की शक्ति भी उतर सके।
ढीला छोड़ दें, आंख बंद कर लें। बीच में भी लेटने का मन हो तो तत्काल लेट जाएं। इसके लिए फिकर मत करें कि किसी के पैर पर भी सर पड़ जाएगा। पड़ जाएगा तो चिंता नहीं है। गिरते हैं तो गिर जाएं, रोके भर नहीं। और आज पूरी ताकत लगानी है।
आंख बंद कर लें। श्वास गहरी लेना शुरू करें। जितनी गहरी ले सकते हों श्वास लें। उतनी ही गहरी छोड़ें, उतनी ही गहरी लें, गहरी श्वास लेना शुरू करें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें, गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें, गहरी श्वास छोड़ें। पूरी शक्ति से गहरी श्वास लेना शुरू करें। श्वास ही लेना है, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास भीतर जाए, गहरी श्वास बाहर जाए; गहरी श्वास भीतर जाए, गहरी श्वास बाहर जाए। श्वास भीतर, श्वास बाहर। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास... और देखते हुए, भीतर देखते रहें, श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई। इसके साक्षी बने रहें, इसके दृष्टा बने रहें। श्वास भीतर जा रही है हम देख रहे हैं, श्वास बाहर जा रही हम देख रहे हैं, श्वास बाहर जा रही हम देख रहे हैं, देखते रहें और गहरी श्वास लेते रहें, दो काम।
दस मिनट के लिए पूरी शक्ति से करें। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास लें, पूरा शरीर कंप जाए, गहरी श्वास लें, सारे शरीर में विद्युत की तरंगें दौड़ने लगेंगी, गहरी श्वास लें, और गहरी श्वास छोड़े। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास छोड़ें, और देखने वाले बने रहें भीतर, यह श्वास भीतर गई, यह श्वास बाहर गई, देखते रहें, देखते रहें, देखते रहें, गहरी श्वास, देखते रहें। दस

आप गहरी श्वास लें और देखते रहें और पूरी शक्ति लगा दें, दांव पर सब लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। यह पूरा वातावरण सिर्फ श्वास लेने लगे, श्वास छोड़ने लगे। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास और देखते रहें श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई, गहरी श्वास। यह पूरा वातावरण बस श्वास लेने और छोड़ने लगे। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, शक्ति पूरी लगा दें। शरीर बिल्कुल थक जाए। शक्ति पूरी लगा दें, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास और मन बिल्कुल शांत होने लगेगा। गहरी श्वास, देखते रहें, देखते रहें, मन शांत होता चला जाएगा। गहरी श्वास लें, गहरी श्वास लें, गहरी श्वास लें, बस श्वास लेने का एक यंत्र रह जाए, सारा शरीर, और भीतर देखते रहें कि यह श्वास भीतर गई, यह श्वास बाहर गई। श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई, शक्ति पूरी लगा दें, शुरू से ही पूरी लगा दें ताकि अंत तक पहुंचते-पहुंचते वह चरम बिंदु आ जाए जिसे चाहता हूं कि आए, छोड़ें, पूरी ताकत लगाएं, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, देखते रहें, गहरी श्वास, गहरी श्वास, थका डालें और दूसरे की चिंता न करें और बीच में कोई भी आंख खोल-खोल कर न देखें। अपनी फिकर करें, गहरी श्वास, पूरी शक्ति लगा दें। पूरी शक्ति लगा दें, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी। पूरी शक्ति दांव पर लगा दें और गहरी और गहरी... और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, देखते रहें। बस श्वास लेने की एक धौंकनी हो जाएं, श्वास, श्वास, श्वास ही रह जाए और सब मिट जाए। श्वास ही रह जाए और सब मिट जाए। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। पूरी शक्ति लगाएं, पूरी शक्ति लगाएं। गहरी श्वास, और गहरी... और गहरी, और गहरी, दांव पर सब लगा दें।
और गहरी, और गहरी, पीछे कुछ बाकी न बचे। और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी। दूसरे सूत्र में प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगाएं। एक दो मिनट के लिए पूरी शक्ति लगाएं, ताकि दूसरे सत्र में प्रवेश हो सकें। पूरी शक्ति से दूसरे में प्रवेश करना है। और गहरी, और गहरी, और गहरी श्वास, देखते रहें और गहरी श्वास। श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई, श्वास भीतर गई, श्वास बाहर गई। लगाएं पूरी शक्ति और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी, और गहरी। और गहरी लगाएं, और गहरी शक्ति लगाएं। एक मिनट के लिए पूरी शक्ति लगाएं, दूसरे सूत्र में प्रवेश के पहले पूरी शक्ति लगाएं, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। दूसरे सूत्र की सूचना मिलने की तैयारी करें, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी श्वास, और गहरी और गहरी श्वास ही रह जाए, श्वास ही रह जाए, श्वास ही रह जाए, श्वास ही रह जाए। सिर्फ श्वास रह गई, देखने वाले रह गए हैं, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास।
अब दूसरे सत्र में प्रवेश कर जाएं। गहरी श्वास लेते रहें, गहरी श्वास लेते रहें और शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, शरीर को छोड़ दें। शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, शरीर को जो हो, सो हो। शरीर घूमे, चक्कर खाए, गिरे, चिल्लाए, रोए, चिंता छोड़ दें, शरीर को ढीला छोड़ दें, गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। गहरी श्वास लें और शरीर को छोड़ दें। शरीर को जो होना हो होने दें। शरीर को बिल्कुल छोड़ दें ताकि साफ दिखाई पड़े कि शरीर अलग है। शरीर अलग यंत्र की भांति घूमने लगे, गिरने लगे, रोने लगे, चिल्लाने लगे, उसे छोड़ दें। भीतर जो शक्ति उठे वह शरीर को जैसा चलाए कोआपरेट करें, हाथ हिलते हों, पैर हिलता हो, सिर घूमता हो, शरीर गिरता हो, आवाज निकलती हो, चिल्लाहट आती हो, रोना आता हो, मुद्रा बदलती हो, छोड़ दें बिल्कुल। दूसरा सूत्र है शरीर को छोड़ दें। श्वास गहरी जारी रहे, शरीर को छोड़ दें। शरीर उतना थक जाए जितना थक सके। छोड़ दें बिल्कुल। अब दस मिनट के लिए शरीर को होने दें जो होता है, श्वास गहरी जारी रखें, श्वास गहरी रहे, श्वास गहरी रहे, श्वास गहरी रहे, शरीर को छोड़ दें, बिल्कुल छोड़ दें, जरा भी रोकें ना, संकोच न करें। छोड़ दें, शरीर को जैसा होना हो होने दें।
शरीर के भीतर शक्ति जो करती है उसे करने दें। जो भी होता है होने दें।
न मालूम कितनी बीमारियां समाप्त हो जाएंगी। शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, न मालूम कितने दबे वेग सदा के लिए निकल जाएंगे। शरीर को बिल्कुल छोड़ दें,

श्वास गहरी जारी रहे और शरीर को छोड़ दें, शरीर को छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें। जो भी होता है होने दें। श्वास गहरी जारी रहे और भीतर श्वास को देखते रहें और शरीर को छोड़ दें। जो भी होता है, जो भी होता है होने दें। शरीर को ढीला छोड़ दें। शरीर घूमता है, घूमता है घूमने दें। हाथ-पैर कंपते हैं, हिलते हैं, हिलने दें। सारा शरीर एक यंत्र की भांति चक्कर खाता है खाने दें, गिरता है गिरने दें, खड़ा हो जाए शरीर खड़ा हो जाने दें। आवाज निकले, निकल जाने दें। चिल्लाहट निकले, निकल जाने दें। रोना निकले, निकल जाने दें, छोड़ दें, छोड़ दें। बढ़ाते जाएं, श्वास बढ़ाते जाएं, शरीर को छोड़ते जाएं, बढ़ाते जाएं श्वास को गहरा लेते जाएं और शरीर को छोड़ दें। छोड़ दें, शरीर को बिल्कुल छोड़ दें, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी। रोकें न जरा भी, कुछ भी न रोकें जो होता है होने दें। श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी, श्वास गहरी और बिल्कुल छोड़ दें। पांच मिनट बचते हैं। इस पांच मिनट में पूरे शरीर को जो होता है होने दें, छोड़ दें। शरीर को जो होता है वह होने दें ताकि साफ दिखाई पड़े कि शरीर अलग, मैं अलग। शरीर को छोड़ दें। रोता है रोए, हंसता है हंसे, चिल्लाता है चिल्लाए, नाचता है नाचे, जो होता है होने दें। भीतर छोड़ दें बिल्कुल छोड़ दें। भीतर कोई पकड़, कोई रेसिस्टेंस न रहे। जरा भी रोकें नहीं, गहरी श्वास जारी रहे। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। छोड़ दें, छोड़ दें, शरीर जो करे, करने दें आप न रोकें, संकोच न करें, नियंत्रण न करें, आप श्वास गहरी जारी रखें और शरीर को छोड़ दें शक्ति भीतर जो करे होने दें। छोड़ दें, शक्ति जो करवाए होने दें, चेहरे की मुद्रा बदले बदलने दें, आवाज निकले निकलने दें, कोई पशु भीतर से चिल्लाने लगे चिल्लाने दें, जो भी होता है होने दें, गहरी श्वास, गहरी श्वास पूरी शक्ति लगा दें, पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास। थका ही डालना है सारे यंत्र को। कंजूसी न करें, बिल्कुल थका डालें, छोड़ दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। श्वास गहरी लें पूरी ताकत लगाएं। दो ही मिनट हैं।
तीसरे सत्र में जाने के लिए पूरी ताकत लगाएं। गहरी श्वास लें और शरीर
को बिल्कुल छोड़ दें, गहरी श्वास लें, शरीर को बिल्कुल, बिल्कुल छोड़ दें, जो होता है होने दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, छोड़ दें शरीर को बिल्कुल। आखिरी मिनट है। तीसरे सत्र के पहले शरीर को जो करना है करने दें, रोना है, चिल्लाना है, गिरना है, हिलना है, डुलना है, छोड़ दें, पूरी ताकत से छोड़ें, गहरी श्वास, गहरी श्वास, शरीर को छोड़ दें। छोड़ दें, रोकें नहीं, छोड़ दें, छोड़ दें। पूरा वातावरण एक साथ रोने-चिल्लाने लगे, छोड़ दें, छोड़ दें। आखिरी मिनट है। तीसरे सत्र में जाने के पहले पूरी शक्ति लगाएं। गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास और गहरी और गहरी, और गहरी और शरीर को छोड़ें आखिरी बार, बिल्कुल छोड दें, जो भी होता है होने दें।
पूरी ताकत लगाएं, पूरी ताकत लगाएं, पूरी ताकत लगाएं, तीसरे सत्र में जाने के पहले पूरी ताकत लगाएं, पूरी ताकत लगाएं। पूरी ताकत लगाएं। और तीव्रता, और तीव्रता, और तीव्रता, और तीव्रता, पूरी ताकत लगा दें। पूरी ताकत, पूरी ताकत जरा भी रोकें नहीं, पीछे कुछ बचे नहीं, बिल्कुल छोड़ दें। पीछे कहने को न रहे कि मैने कुछ रोक लिया। छो--ड़ें, छोड़ दें। एक मिनट के लिए बिल्कुल छोड़ दें। जो होता है होने दें। जो होता है होने दें। छोड़ें, छोड़ें, छो.ड़ें, तीसरे सत्र में जाने के लिए छोड़ दें। बिल्कुल छोड़ दें, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास। और गहरी, और गहरी और गहरी, और गहरी और तीसरे सत्र में प्रवेश करें। श्वास गहरी रहेगी, शरीर को जो करना है करता रहेगा। आप भीतर ताकत से पूछना शुरू करें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? भीतर अपने मन में जोर से पूछें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर को हिलने दें, श्वास को गहरा चलने दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं। पूरे प्राण से पूछने लगें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर का रोआं, रोआं पूछने लगे। हृदय की धड़कन धड़कन पूछने लगे, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत भीतर लगाएं, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? दस मिनट के लिए पूरी शक्ति

लगा दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी शक्ति लगाएं भीतर कि मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक तूफान उठ जाए। दस मिनट के बाद फिर विश्राम करेंगे। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? सारे प्राण कंप जाएं, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? दो मैं कौन हूं के बीच जगह न बचे।
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कान हूं? पूरी शक्ति लगा दें। अपने को तूफान में डाल दें। तभी हम ध्यान में जा सकते हैं। जो जितनी तीव्रता से पूछेगा वह उतने ही गहरे ध्यान मे जा सकेगा। चौथे सत्र तक पूरी शक्ति लगाएं--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... पूरी शक्ति लगाएं... आखिरी विश्राम के पहले शक्ति पूरी लगा दें ताकि विश्राम गहरा हो सके। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? ... शरीर घूमता रहे, शरीर को घूमने दें, शरीर में शक्ति को पूरा घूमने दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी शक्ति से घूमने दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पांच मिनट बचे हैं पूरी शक्ति लगाएं, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? इस पांच मिनट के लिए पूरी शक्ति लगा दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? गहरी श्वास, थका डाले अपने को गहरी श्वास, गहरी श्वास, शरीर को जो होता है होने दें, शरीर को पूरा छोड़ दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? गहरी श्वास, गहरी श्वास, गहरी श्वास, शक्ति पूरी लगाएं ताकि ऊपर की शक्ति से संबंध हो सके, जैसे ही संबंध होगा शरीर एकदम नाचने लगे उसकी फिकर भी न करें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शक्ति पूरी लगाएं सिर्फ तीन मिनट बचे हैं शक्ति पूरी लगा दें। पूरी शक्ति लगा दें। गहरी श्वास, गहरी श्वास और गहरी, और गहरी, और गहरी, और भीतर पूछें तूफान की तरह मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? चौथे सत्र में जाने के पहले शक्ति पूरी लगा दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगाएं, अपनी शक्ति को पूरा लगा दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शक्ति पूरी लगाएं और ऊपर से शक्ति आती मालूम पड़े, तो जो भी शरीर को होने दें, नाचने लगे फिकर न करें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? एक-दो मिनट और बचते हैं, पूरी शक्ति लगाएं, फिर विश्राम करना है। विश्राम उतना ही गहरा होगा जितनी शक्ति हम लगाएंगे। अपने को पागल कर दें, पूरी ताकत लगा दें। पूरी ताकत लगा दें और इस बीच ऊपर से किसी को शक्ति आती मालूम पड़े तो अपने को छोड़ दें जो भी हो सो हो।
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? बिल्कुल पागल हो जाएं, छोड़ दें अपने को। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? चौथे सत्र में प्रवेश का क्षण करीब आता है। जोर लगाएं--मैं कौन हूं? छोड़ दें और शक्ति ऊपर से उतरे तो फिकर न करें, ऐसा लगे कि नाच आ जाए तो नाचे, घबड़ाएं नहीं।
मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगाये गहरी श्वास, अवसर को चूकें न, पूरी शक्ति लगाएं। एक ही मिनट की बात है। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? तूफान पूरा उठा दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? बढें तीव्रता से बढ़े, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? थका दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? किसी का भी शरीर खड़ा होना चाहे, रोकें नहीं, छोड़ दें, छोड़ दें। शरीर खड़ा होता है हो जाने दें छोड़ दें मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? रोकना नहीं किसी का भी शरीर खड़ा होता है, हो जाने दें, मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? छोड़ दें, शरीर खड़ा होता है, हो जाने दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? शरीर खड़ा होता है, रोकें मत, छोड़ दें, खड़े हो जाएं, नाचता है

नाचने दें। जिनका भी शरीर खड़ा होता है, छोड़ दें। जिनका भी शरीर खड़ा हो रहा है उठ जाने दें, छोड़ दें, खड़े हो जाएं। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?
एक सेकेंड और छोड़ दें, बिल्कुल शरीर खड़ा होता है हो जाने दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? छोड़ दें... जिनके शरीर भी खड़ा होना चाहते हैं हो जाने दें... मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? रोकें नहीं, छोड़ दें। मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? पूरी ताकत लगा दें--मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं? मैं कौन हूं?
अब छोड़ दें, सब छोड़ दें, श्वास की गहराई भी छोड़ दें, पूछना भी छोड़ दें... चौथे सूत्र में प्रवेश कर जाएं। मैं कौन हूं? यह भी छोड़ दें, श्वास का गहरा लेना भी छोड़ दें, जहां जो जैसा है, वैसा ही रह जाए। बैठना है, बैठ जाएं, लेटना हो, लेट जाएं, सब छोड़ दें। अब दस मिनट के लिए परम विश्राम में चले जाएं। द्वार खुला है, प्रभु को आना है आ जाए। अब दस मिनट कुछ भी न करें, रह जाएं, बस मात्र रह जाएं। पक्षी बोलेंगे, सुनते रहें; सागर की लहरें चिल्लाएंगी, सुनते रहें; रास्ते पर आवाज होगी, सुनते रहें; बस पड़े रह जाएं। प्रतीक्षा में, जस्ट अवेटिंग, खोल दिया मेहमान आना हो आ जाए। द्वार खोल दें, द्वार पर प्रतीक्षा में बैठ जाएं, कुछ करना नहीं है। दस मिनट बस पड़े रह जाना है। इस दस मिनट में ध्यान की झलक आएगी, इस दस मिनट में ही उसका पता चल सकता है जो है। अब मैं चुप हो जाता हूं। दस मिनट बस रह जाएं, कुछ करना नहीं...
अब धीरे-धीरे आंखें खोल लें। जिनकी आंख न खुले वे दोनों हाथ आंख पर रख लें। फिर आहिस्ता से आंख खोलें। जो लेट गए हैं और गिर गए हैं, वे धीरे-धीरे उठें उनसे न बने तो पहले दो-चार गहरी श्वास लें, फिर उठें। फिर भी उठने को न बने तो लेटे रहें और गहरी श्वास लेते रहें। लेकिन उठने में कोई जल्दी न करें, आहिस्ता उठें। जो खड़े हैं वे भी धीरे-धीरे आंख खोलें। थोड़ी गहरी श्वास लें, फिर आहिस्ता से बैठें, एकदम से न बैठे। धीरे-धीरे आंख खोल लें, गहरी श्वास लें, फिर आहिस्ता से बैठ जाएं।
इस प्रयोग को रोज रात्रि में करते रहें। प्रयोग करें और सो जाएं, ताकि रात्रि की पूरी नींद में प्रयोग का सारा परिणाम गूंजता रहे।
इन पांच दिनों में बहुत सा काम हुआ। कुछ मित्र बहुत ही निकट तक पहुंचे, कुछ का उस शक्ति से संपर्क भी हुआ। कुछ कदम दो कदम, सीढ़ी दर सीढी। तो कुछ दो कदम पर ही रुक गए। लेकिन सभी की गति हुई है। और मैं चाहूंगा कि नारगोल आ जाएं, ताकि उन चार दिनों में सच की ही छलांग लग जाए। नारगोल बहुत कुछ होने की संभावना है। इसलिए अवसर को मत चूकें। जो भी किसी भी भांति आ सके आ ही जाए।

हमारी आज की बैठक पूरी हुई।
जो लोग दोपहर, जिन्हें लगता हो कहीं शक्ति का उठाव रुक गया या ऊपर से किसी शक्ति का प्रवेश हुआ लेकिन कहीं रुक गया, जिन्हें कहीं भी कोई कठिनाई, अड़चन मालूम पड़ती हो, वे दोपहर तीन से चार मिलने आ जाएं। लेकिन बौद्धिक जिज्ञासाओं को लेकर नहीं। जिनकी व्यक्तिगत साधना से ही कोई सवाल उठा हो, केवल वे ही दोपहर आएं।

हमारी सुबह की बैठक पूरी हो गई।

मैं कौन हूं?
आठवां प्रवचन

सौंदर्य के अनंत आयाम

मेरे प्रिय आत्मन्!
एक मित्र ने पूछा है कि सौंदर्य को देखते ही उसे भोगने की इच्छा पैदा होती है। सौंदर्य को देखते ही उसके मालिक बनने की इच्छा पैदा होती है। उसे पजेस करने का मन होता है। ऐसी स्थिति में साधारण मनुष्य क्या करे? अब तक साधारण मनुष्य को जो संदेश दिया गया है, वह दमन करने का है कि वह अपने को दबाए, अपने को रोके, संयम करे, वहां से आंख मोड़ लें जहां सौंदर्य हो। वहां से भाग जाए जहां डर हो। अभी एक स्वामी जी महाराज लंदन होकर वापस लौटे, लाखों रुपया उनके ऊपर खर्च किए गए थे कि कोई स्त्री उन्हें दिखाई न पड़ जाए। इतना भय सौंदर्य का जिस मन में हो उस मन की कामुकता और सेक्सुअलिटी का हम अंदाज लगा सकते हैं। और जो पुरुष स्त्री से इतना भयभीत हो उस पुरुष के भीतर कैसी वास्तविक वृत्तियां हमला कर रही हों, इसका भी अनुमान लगा सकते हैं। सौंदर्य में भी अगर सेक्स दिखाई पड़े और परमात्मा न दिखाई पड़ सके उसके दमन की कहानी बहुत स्पष्ट है। लेकिन हजारों साल से आदमी को यही सिखाया गया है कि अपने को दबाओ, दबाने से कोई मुक्त नहीं होता। दबाने से जहर और बढ़ता है। दबाने से बीमारी और बढ़ती है। तो साधारणतया दिखाई पड़ता है कि दबाओ मत तुम भोगो हो। एक रास्ता तो यह है कि स्त्री दिखाई न पड़े, आंख ही फोड़ लो अपनी, सूरदास हो जाओ। दूसरा रास्ता यह है कि स्त्री दिखाई पड़े तो चंगेज खां हो जाओ, कि फौरन उसे अपने हरम में पहुंचाओ।
जहां सौंदर्य दिखाई पड़े उसे फौरन अपने घर की चारदीवारी में बंद करो।
ये दोनों रास्ते दो रास्ते नहीं हैं, एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ये एक ही आदमी की दो शक्लें हैं। चंगीज खां में और स्वामी जी महाराज में बुनियादी फर्क नहीं है। जो आदमी स्त्री से इतना भयभीत है वह स्त्री पर हमला करने को उत्सुक है। वह अपने हमले से ही भयभीत है। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। पाश्विक भोग की आकांक्षा और अमानवीय दमन की इच्छा एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। मैं इन दोनो में से किसी के समर्थन में नहीं हूं। इसलिए थोड़ी मेरी बात सहानुभूति से समझने की कोशिश करनी पड़ेगी।
पहली बात तो मैं यह कहना चाहता हूं कि दमन के कारण ही सौंदर्य को तत्काल मालकियत में ले लेने की इच्छा पैदा होती है। सौंदर्य का भोग बहुत और बात है। जब रास्ते के किनारे से आप एक फूल के सौंदर्य को देखते हैं, तो यदि आपके मन में तत्काल उस फूल को तोड़ने की इच्छा पैदा होती है तो मैं आपसे कहूंगा कि आप फूल के सौंदर्य को जान ही नहीं पाए। क्योंकि तोड़ते ही फूल निर्जीव और मृत हो जाएगा। जो आदमी फूल को प्रेम करता है वह फूल को तोड़ ही नहीं सकता। उसका प्रेम ही उसे रोकने का कारण बनेगा। क्योंकि तोड़ने का अर्थ क्या होगा? तोड़ने का अर्थ है फूल को नष्ट कर देना। असल में हम जब भी किसी चीज को अपनी मुट्ठी में लेते हैं, तो उसे नष्ट कर देते हैं। असल में किसी चीज को मुट्ठी में लेना बहुत कुरूप चित्त का लक्षण है। सौंदर्य का जिसके पास बोध है उसके पास मालकियत होती ही नहीं। क्योंकि मालकियत का मतलब है गुलामी। मालकियत का मतलब है किसी को गुलाम बनाने की कोशिश, और जिसके मन में सौंदर्य का अनुभव हुआ है वह गुलामी की कुरूपता का भी अनुभव करेगा। नहीं, हमारे सौंदर्य का बोध ही बहुत क्षीण है। जिसको एस्थेटिक सेंस कहें, वह हममें है ही नहीं। वह विकसित ही नहीं हो पाया। हमारे भीतर तो तत्काल खा जाने को, हड़प जाने को, मालिक बन जाने को बैठा हुआ पशु है और इसे जितना हमने दबाया है वह उतना ही प्रबल होता गया है। जितना उसे दबाया है उतना ही वह जोर से मांग करता है।
सौंदर्य का बोध यदि विकसित हो सके तो आदमी मालिक बनना नहीं चाहता है।
और सौंदर्य का बोध अपने में ही इतना बड़ा भोग है कि और किसी भोग की आकांक्षा नहीं रह जाती। तो मैं चाहूंगा कि सौंदर्य का बोध विकसित होना चाहिए, उसका भी प्रशिक्षण है। हम साधारणतया सोचते हैं कि फूल को देख कर हम सभी को सौंदर्य दिखाई पड़ जाता है, तो हम गलती पर हैं। फूल का सौंदर्य सभी को दिखाई

नहीं पड़ता। हमने कविताएं सुन लीं, हजारों साल से आती हुई बात सुन ली कि फूल सुंदर है इसलिए हम फूल को सुंदर कहे चले जाते हैं। लेकिन यह केवल एक परंपरा है इसका हमें कोई बोध नहीं है। कोई फूल हमें रोक नहीं पाता। न ही किसी फूल को देख कर हम किसी विभोर अवस्था में चले जाते हैं। न किसी फूल को देख कर हम नाचते हैं। न किसी फूल को देख कर दो क्षण हम उसके पास ठहर कर अपनी आंखों में उस फूल को पूरा प्रवेश कर जाने देते हैं। नहीं, फूल का हमें कुछ भी पता नहीं। हमने कविताएं पढ़ीं और हमने चित्र देखे हैं और हमने परंपराओं से बात सुनी है कि फूल सुंदर है। बस, हमने स्वीकार कर लिया है। हम मनुष्य के शरीर के सौंदर्य को भी नहीं जानते। हम आंखों के सौंदर्य को भी नहीं पहचानते। हमारी सौंदर्य को समझने की क्षमता न के बराबर है। हम सबने यह मान रखा है कि जन्म से ही हमें सौंदर्य का बोध है, यह वैसे ही है जैसे हम मान रखे हैं कि जन्म से ही सबको गणित का पता है, और गणित का कोई शिक्षण न हो। अब दुनिया में हर आदमी समझे कि जन्म से ही हमें गणित का पता है, तो पक्का मानिए उस दुनिया में जो भी गणित होंगे सब गलत होंगे। अगर हम जन्म से ही मान लें कि भाषा का हमें पता है तो दुनिया में कोई भाषा न बोली जाएगी। हमने जन्म से जिन चीजों को मान लिया है वे सब कठिनाई में पड़ गई है। हमने मान लिया है कि सौंदर्य का हमें पता है। सौंदर्य का पता बहुत बड़ा प्रशिक्षण है। सौंदर्य का बोध बहुत बड़ी साधना है। और जब सौंदर्य का बोध होना शुरू होता है, तब हम मालिक नहीं बनना चाहते। क्योंकि मालिक बनना कुरूप चित्त का लक्षण है। असल में जो आदमी भी किसी स्त्री का पति बनना चाहता है, स्वामी बनना चाहता है वह आदमी उस स्त्री को प्रेम नहीं करता है। क्योंकि स्वामी बनने की आकांक्षा ही किसी को गुलाम बनाने की आकांक्षा है। और जिसे हम प्रेम करते हैं, उसे हम गुलाम बनाना चाहेंगे। जिस दिन अच्छी दुनिया होगी उस दिन प्रेमी और प्रेयसी तो होंगे, पति और पत्नी बिल्कुल नहीं हो सकते। इनसे ज्यादा अग्ली इनसे ज्यादा कुरूप संबंध को खोजना बहुत मुश्किल है। और स्त्रियां अपने पतियों को चिट्ठियों में लिख रही हैं कि आपकी दासी और पति बड़े प्रसन्न हो रहे हैं और पति का मतलब ही होता है स्वामी। लेकिन अब तक हमने जो मनुष्यों के संबंध बनाए हैं, उनके भीतर सौंदर्य का कोई संबंध नहीं।
हम एक-दूसरे व्यक्ति को साधन की तरह उपयोग करना चाहते हैं। एक पति अपनी पत्नी का एक साधन की तरह उपयोग करना चाहता है, एक मशीन की तरह; जो उसके भीतर के कुछ उबलते हुए वेगों को निकालने में सहयोगी हो जाए। यह कोई संबंध नहीं है, और न कोई इसमें सौंदर्य का बोध। इससे ज्यादा कुरूप और कोई बात नहीं हो सकती। मनुष्य जाति के मन को हमने जिस भांति तैयार किया है उसमें हमने सौंदर्य की शिक्षा ही नहीं डाली। काश, हम सुंदर के प्रति जाग सकें तो वह हमें सिर्फ मनुष्यों में नही दिखाई पड़ेगा, चांद-तारों में भी दिखाई पड़ेगा, आकाश में भी दिखाई पड़ेगा, बादलों में भी दिखाई पड़ेगा, कंकड़-पत्थरों में भी दिखाई पड़ेगा, फूल-पत्तों में भी दिखाई पड़ेगा। वह हमें चारों तरफ दिखाई पड़ेगा। और उस चारों तरफ दिखाई पड़ते सौंदर्य का ही एक हिस्सा पुरुष को स्त्री में दिखाई पड़ेगा, स्त्री को पुरुष में दिखाई पड़ेगा। तब इस सौंदर्य का विशेष रूप से सेक्सुअल अर्थ खो जाएगा।
एक पत्थर में जब सौंदर्य दिखता हो, एक फूल में जब सौंदर्य दिखता हो,
एक पत्ते में दिखता हो, चांद-तारों में दिखता हो, हवा की झोकों में दिखता हो, पानी की लहरों में दिखता हो, रात के अंधेरे में दिखता हो, सुबह के सूरज में दिखता हो। जब सब तरफ सौंदर्य दिखता हो तब फिर पुरुष में जो सौंदर्य है, स्त्री में जो सौंदर्य है वह इस विराट सौंदर्य का एक हिस्सा मात्र हो जाता है। उसका कामुक अर्थ, उसका सेक्सुअल मीनिंग खो जाता है। लेकिन हमने सब जगह सौंदर्य नहीं देखा। हम सौंदर्य देखते ही नहीं, इसलिए जहां हमें कामुकता की तृप्ति की संभावना दिखाई पड़ती है वहीं बस हम सुंदरता की बातें करना शुरू कर देते हैं। यह सौंदर्य भी दो दिन में कुम्हला जाता है। सुंदर से सुंदर स्त्री पत्नी बनने के बाद सुंदर नहीं रह जाती। सुंदर से सुंदर पुरुष पति बन जाने पर सुंदर नहीं रह जाता। जैसे ही मिल जाता है, सौंदर्य खो जाता है। सौंदर्य नहीं था, आकांक्षा, भीतर कुछ और थी, इच्छा भीतर कुछ और थी। शरीर को भोगने की, कामवासना को तृप्त करने की इच्छा थी। सौंदर्य तो

सिर्फ ऐसा ही था कि जैसे हम मछली को पकड़ते हैं, तो कांटे पर थोड़ा आटा लगा देते हैं। कोई मछली को आटा खिलाने के लिए नहीं। कांटे पर थोड़ा आटा लगा देते हैं क्योंकि मछली कांटा खाने को सीधी राजी नहीं होगी। आटा खाने को राजी होगी और कांटा उसके गले में अटक जाएगा। जिसे हम अभी सौंदर्य कह रहे हैं, वह हमारी कामोत्तेजना के कांटे पर लगाए हुए आटे से ज्यादा नहीं है। हमें सौंदर्य का कोई बोध नहीं। सौंदर्य का जब बोध होगा तो वह सौंदर्य हमें समस्त जीवन में दिखाई पड़ना शुरू होगा। तो मैं आपसे कहना चाहूंगा कि सौंदर्य के बोध को बढ़ाएं। जब तक स्त्री भी सुंदर दिखती है और पुरुष भी सुंदर दिखता है तब तक आप समझ लेना कि यह कामुकता के ऊपर लगाए गए आटों से ज्यादा बातें नहीं हैं। और फिर इनके दो ही परिणाम होंगे। या तो अपने हरम में सारी दुनिया की सुंदर स्त्रियों को बंद कर लो, और या फिर किसी स्वामी जी महाराज की तरह आंख बंद करके लाखों रुपये खर्च करो कि कोई स्त्री दिखाई न पड़ जाए। ये दोनों एक ही चित्त के लक्षण हैं। नहीं, सौंदर्य का बोध इतना विकसित हो कि हमें जीवन में जहां भी सौंदर्य हो वहीं दिखाई पड़ने लगे। तब वह नॉन-सेक्सुअल, काममुक्त हो जाता है, क्योंकि एक पत्ते के साथ सेक्स का क्या संबंध, एक फूल के साथ सेक्स का क्या संबंध? आकाश में भटकती हुई एक अकेली बदली के साथ काम का, भोग का क्या संबंध है? लेकिन जो आदमी सौंदर्य से डर जाएगा स्त्री के वह अनजाने फूल से भी डर जाएगा। क्योंकि बहुत गहरे में उसे डर लगेगा।
क्योंकि जहां भी सौंदर्य है वहीं आटा है, वहीं कांटा है। उसे घबड़ाहट पैदा हो जाएगी। इसलिए संन्यासी फूल से भी डरने लगेगा। रात की चांदनी से भी डरने लगेगा। सुंदर संगीत से भी डरने लगेगा, सुंदर चित्रों से भी भयभीत होने लगेगा। क्योंकि उसके मन में सौंदर्य अर्थात यौन। उसके मन में सौंदर्य का एक ही अर्थ है काम। वह अर्थ अनर्थ है, वह अर्थ उचित नहीं है। जिंदगी बहुत अर्थों में सुंदर है। काम सुंदर भी हो सकता है लेकिन वह सिर्फ एक आयाम है सौंदर्य का, और जिनकी जिंदगी में सब तरफ से आयाम खुलते हैं, उनकी जिंदगी में काम का आयाम अपने आप उस विराट सौंदर्य के आयाम में तिरोहित हो जाता है। नहीं, मैं कहता हूं कि उनकी जिंदगी में काम नहीं रह जाएगा लेकिन एक बुनियादी फर्क होगा। अभी सिर्फ काम में ही सौंदर्य दिखाई पड़ता है, और जैसे ही काम तृप्त हुआ, सौंदर्य विदा हो जाता है। इसीलिए पजेसन की इच्छा होती क्योंकि जिसे हमें साधन की तरह उपयोग करना है, उस पर मालकियत पूरी होनी चाहिए। जिसे हमें एक साधन की तरह व्यवहार करना है, उस पर हमारी गुलामी पक्की होनी चाहिए, आौर जिसको हम साधन की तरह उपयोग करना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि कोई और उसको साधन की तरह उपयोग न कर ले। ईर्ष्या मन को पकड़ती है। जिसे सौंदर्य का बोध हो उसके मन में ईर्ष्या का बोध नहीं हो सकता। क्योंकि ईर्ष्या बड़ी ही कुरूप बात है। अभी हम मालकियत चाहते हैं क्योंकि हम मालकियत के बिना योन के संबंधों की तृप्ति नहीं कर पाएंगे। यह मालकियत सौंदर्य की वजह से पैदा नहीं होती। सौंदर्य की पतली सी धारणा के पीछे छिपी हुई असलियत के लिए होती है। इसे अगर दबाएंगे तो असलियत और बढ़ती जाएगी। इसे अगर भोगेंगे अंधे की तरह तो भी छुटकारा नहीं। चाहिए सौंदर्य का विस्तीर्ण बोध। इतना विस्तीर्ण कि काम, यौन उसमें सिर्फ एक आयाम रह जाए।
सौंदर्य के अनंत आयाम हैं। और ध्यान रहे, जब सौंदर्य अनंत आयामों से तृप्त करने लगता है तब, उसके कामुक अर्थ विलीन हो जाते हैं इसलिए स्वभावतया जो व्यक्ति प्रकृति में सौंदर्य देख पाता है, वह चाहे तो बड़ी सरलता से यौन से मुक्त हो सकता है। साधारणतया जो व्यक्ति काव्य में सौंदर्य देख पाता है, वह चाहे तो उसे ब्रह्मचर्य साधन के लिए उसे शीर्षासन नहीं करना होता। जो व्यक्ति विज्ञान की खोज में सौंदर्य देख पाता है, वह अक्सर भूल जाता है कि यौन की भी कोई दुनिया है। बड़ा वैज्ञानिक, बड़ा कवि, बड़ा दार्शनिक अपनी खोज में इतना व्यक्त हो जाता है, इतना लीन हो जाता है कि कोई दूसरा मार्ग उसे आकर्षित नहीं कर पाता। इसलिए साधारणतः साधुओं की बजाय ज्यादा बड़े साधु उनमें मिल जाएंगे, जिनका जीवन किसी परम सौंदर्य की, परम सत्य की, परम स्वयं की खोज में चला गया है। लेकिन जिनके जिंदगी का एक ही लक्ष्य है, कि किसी तरह यौन से बचो वे यौन से न बच पाएंगे। क्योंकि

जिससे हम बचना चाहते हैं हम उसी से घिर जाते हैं। जिससे हम भागते हैं वह हमारा पीछा करता है, और जिसे हम मन से निकालते हैं वह दुगुने वेग से भीतर आना शुरू हो जाता है। न तो मैं कहता हूं दमन करें, न मैं कहता हूं भोग में विक्षिप्त हो जाएं, मैं कहता हूं, सौंदर्य का विस्तृत बोध लाएं। यह अनंत जीवन भोगने योग्य है, और जब चांद-तारों की भोगने की क्षमता हो तो मुट्ठी में लेने की इच्छा कम हो जाएगी क्योंकि चांद-तारे मुट्ठी में नहीं लिए जा सकते। और जब फैले हुए विस्तृत सागर में सौंदर्य दिखता हो तो उसे घर लाकर अपने बाथरूम में बंद करने की इच्छा पैदा नहीं होगी और जब यह अनुभव होगा कि सौंदर्य भोगा जा सकता है, बिना मालकियत के, चांद पर मालकियत की क्या जरूरत है, तो हम जीवन के साधारण हिस्सों में भी, जीवन के साधारण संबंधों में भी सौंदर्य को भोग पा सकेंगे।
अभी मेरे एक मित्र इटली गए हुए थे। लौट कर मुझे बहुत घबड़ाहट से मुझे उन्होंने कहा कि वहां एक अनुभव उन्हें हुआ जो बहुत डराने वाला है। रास्ते से गुजर रहे थे, बहुत सुंदर व्यक्ति हैं। एक स्त्री उनके पास आई और वह आंख बंद करके उनके सामने खड़ी हो गई और कहा कि मुझे अपने चेहरे पर हाथ फेर लेने दें। मैंने इतने सुंदर फीचर, इतने सुंदर आकृति वाला पुरुष कभी नहीं देखा, वह तो बहुत घबड़ा गए। घबरा इतने भर गए कि मना भी न कर सकें। घबड़ा इतने भर गए कि भाग भी न सकें। तब तक उस स्त्री ने आंख बंद करके उनके चेहरे पर हाथ फेर लिया और उन्हें धन्यवाद देकर आगे बढ़ गई।
वे मुझसे कहने लगे कि बड़े कामुक लोग मालुम पड़ते हैं इटेलियन। मैंने कहाः कामुक तुम हो, वह स्त्री जो तुम्हारे चेहरे पर हाथ फेर कर धन्यवाद देकर आगे बढ गई, जिसने लौट कर भी पीछे नहीं देखा, उसे कामुक कहते हुए शर्म आनी चाहिए। वह कामुक नहीं है। उसने कोई मालकियत नहीं जतानी चाही। वह तुम्हें बिस्तर पर खींचने की कोई इच्छा नहीं रखती। उसने सिर्फ तुम्हारे चेहरे पर हाथ फेरा है, वह भी आंख बंद करके और तुम्हें धन्यवाद दिया है कि एक सुंदर व्यक्ति को देखा, दर्शन किए और आगे बढ़ गई है। यह अनुभव वैसा ही है जैसे चांद को देख कर कोई क्षण भर ठहर जाए। जैसे सागर में उठती लहरों को देख कर कोई आंखें बंद करले। आखिर सागर अगर भोगा जा सकता है, और चांद अगर देखा जा सकता है और दूसरे की बगिया में खिले हुए फूलों को सराहा जा सकता है, तो किसी सुंदर चेहरे को देख कर सराहने की मनाही क्या है? वे मित्र यही सोच रहे थे कि वह स्त्री कामुक है, और वे खुद बड़े निष्काम। लेकिन आप भी एक बार सोचना कि इन दोनो में कामुक कौन है? इन दोनों में मित्र ही कामुक हैं, इतने भय की कोई बात नहीं थी, इतने घबड़ाने की कोई बात नहीं थी। और यह जो सौंदर्य है चेहरे का यह भी परमात्मा का है इसकी भी मालकियत बताना कि मेरा चेहरा, मेरा सौंदर्य तो वह भी नासमझी है। फिर उस स्त्री ने धन्यवाद दिया है और लौट कर पीछे भी नहीं देखा है। उसने यह भी नहीं पूछा कि नाम ठीकाना क्या है? पता कहां है? कहां ठहरे हो? इससे कोई मतलब नहीं है।
जैसे एक अपरिचित रास्ते पर खिले हुए फूल को देख कर कोई क्षण भर रुक गया हो, और अज्ञात मालिक को धन्यवाद देकर आगे बढ़ गया हो। क्या कहेंगे उस आदमी को कि कामुक है। नहीं उस स्त्री को मैं कामुक नहीं कह पाऊंगा। मैं मानता हूं उसके जीवन में एक सौंदर्य का बोध जो मालकियत नहीं मानता है, और ऐसे सौंदर्य का बोध जितना विकसित हो चित्त उतना ही धीरे-धीरे अकाम होता चला जाता है। क्योंकि जितना आप सौंदर्य को पी पाएं, जितना आप सौंदर्य में विभोर हो जाएं, उतना ही शारीरिक तल पर मांग कम होती चली जाती है। कारण हैं उसके। क्योंकि जितनी ऊंची दिशा में हमें तृप्ति मिलती है उतनी नीची दिशाओं की मांग खत्म हो जाती है। जैसे किसी आदमी को, जो झोंपड़े में रहता हो और एक बड़ा महल रहने को मिल जाए। क्या आप सोचते हैं कि वह लौट-लौट कर झोंपड़े की तरफ वापस आएगा? किसी आदमी को जिसके हाथ में कंकड़-पत्थर, रंगीन कंकड़-पत्थर थे उसे अचानक हीरों की खदान मिल जाए, क्या आप सोचते हैं कि उसे उन कंकड़-पत्थरों का उसे त्याग करना पड़ेगा? वे गिर जाएंगे हाथ से, हीरे- जवाहरातों पर हाथ बढ़ जाएंगे।
हमारे जीवन में भोग जितना ऊंचा होता चला जाता है, नीचे के तलों पर योग अनायास होता चला जाता है। जितने ऊपर के तल पर हम भोग पाते हैं, उतने नीचे के तल पर हम त्याग को अपने आप उपलब्ध हो जाते हैं। जिसने सौंदर्य को

आत्मिक अर्थों में भोगना शुरू कर दिया है उसके जीवन में सौंदर्य के शारीरिक भोग अपने आप क्षीण हो जाते हैं, लेकिन जिसे आत्मिक अनुभूति नहीं हुई, जिसने सौंदर्य को परमात्मा के विस्तीर्ण सौंदर्य की तरह नहीं निहारा, उसके जीवन में काम का केंद्र ही एक मात्र केंद्र होता है। फिर चाहे तो वह हजार औरतों का हरम बना ले और या फिर चाहे तो आंख पर परदे डाल कर रास्तों से गुजर जाए। कोई बहुत फर्क नहीं पड़ता है। वह आदमी कामुक है उसके भीतर आग जल रही है। वह आग को दबाए हुए है, और ऐसे सब आदमियों से सावधान रहना। लेकिन हम हजार औरतों वाले आदमी से तो सावधान हो गए हैं। अभी आंख पर परदा डालने वाले आदमी से सावधान नहीं हुए। और जब तक हम इससे सावधान न होंगे, यह हमारे जीवन में जहर घोलता चला जाएगा। यह हमारे जीवन को विकृत करता चला जाएगा। जीवन है ही भोगने के लिए। भोग रोज ऊंचा उठना चाहिए। भोग के अनंत आयाम हैं, शरीर से लेकर परमात्मा तक भोग की अनंत दिशाएं हैं। जितना ऊंचा भोग जीवन में आएगा, नीचे के तल पर योग अपने आप आ जाएगा लेकिन इससे उलटा नहीं होता, कि आप नीचे के तल पर योग ले आएं और भोग ऊपर के तल पर हो जाए। इससे उलटा नहीं होता। आप हाथ खाली कर दें, कंकड़-पत्थर से। इससे यह पक्का नहीं होता कि हीरे की खदान मिल जाएगी। लेकिन अगर हीरे की खदान आपको मिल जाए तो पक्का है हाथ कंकड-पत्थर से खाली हो जाएंगे। नीचे का छोड़ने से ऊपर का नहीं मिल जाता लेकिन ऊपर का मिलने से नीचे का जरूर छूट जाता है। इस बात को, इस बात के रहस्य को ठीक से समझ लेना जरूरी है।
एक-दो मित्रों ने और सवाल पूछे हैं।
उन्होंने पूछा है कि महावीर और बुद्ध संयम और त्याग की बात करते हैं,
तो इसमें खराबी क्या है?
जैसा उन्होंने कहा है। अगर महावीर और बुद्ध त्याग की ही बात करते हों, तो खराबी निश्चित है। हालांकि मैं नहीं मानता कि वे त्याग की ही बात करते हैं। महावीर और बुद्ध भोग की ही बात करते हैं। हम नासमझ उसे त्याग की तरह समझते हैं। उसके कारण हैं। उसके कारण हैं कि जहां हमें लग रहा है कि रस है, महावीर और बुद्ध वहां से उठ गए मालुम पड़ते हैं, तो हमें लगता है कि उन्होंने छोड़ दिया है। उन्होंने छोड़ा नहीं है।
इस जगत में कोई भी व्यक्ति कुछ छोड़ नहीं सकता। सिवाय नासमझों को छोड़ कर। कोई भी बुद्धिमान आदमी त्याग नहीं करता है सिर्फ अज्ञानियों को छोड़ कर। और अज्ञानी त्याग करके ऐसी मुसीबत में पड़ता है जिसका कोई हिसाब नहीं और बुद्धिमान कुछ पा लेता है, तब कुछ छूट जाता है। उसकी जिंदगी एक आनंद की जिंदगी होती है। महावीर की मूर्ति देखी? और जैन मुनियों की शक्लें देख लें तो फर्क मालूम पड़ जाएगा। महावीर की मूर्ति ऐसी मालूम पड़ती कि परम स्वस्थ व्यक्ति। लेकिन महावीर के पीछे चलने वाले साधु को देखें। तो अगर उसमें खून थोड़ा-बहुत दिखाई पड़ जाए, तो शक होगा कि त्याग पूरा नहीं हुआ है। अगर उसकी जिंदगी में थोड़ा सा भी रस दिखाई पड़ जाए तो शक होगा कि आसक्ति शेष है, अगर उसकी जिंदगी में महावीर जैसा मौन दिखाई पड़ जाए तो हम संदिग्ध हो जाएंगे, भक्तगण भाग जाएंगे कि कुछ पीछे के दरवाजे से जिंदगी में रस आ रहा है। नहीं हम उसे बिल्कुल मुर्दा करके पूजेंगे। वह बिल्कुल रक्तहीन ब्लडलेस होना चाहिए। वह जितना पीला होता जाए उतना ही हम कहेंगे कि त्याग निखर रहा है। वह जितना मुर्दा होता जाएगा हम कहेंगे जिंदगी में उतना ही ऊंचा जा रहा है। वह जिंदगी से जितना भयभीत होकर एक कारागृह में जीने लगेगा, हम कहेंगे उतना ही ऊंचा इसका व्यक्तित्व हो गया है। महावीर, महावीर की बात और, महावीर ने कुछ भी त्यागा नहीं है, महावीर ने कुछ पाया है, और उस पाने के कारण निश्चित ही कुछ छोड़ना पड़ता है। अगर मैं घर में नया कुछ ले आऊं तो पुराने कचरे फर्नीचर को बाहर निकालना होगा। स्वभावतः महावीर के व्यक्तित्व में कुछ उतरा है और कुछ उन्हें बाहर फें क देना पड़ा है कचरे की भांति वह त्याग नहीं है। वह और बड़े भोग की तैयारी है। मैं उसे इसी भाषा में देखता हूं।
बुद्ध के जीवन में कुछ उतरा है जो इतना अदभुत है कि जो व्यर्थ था उसको निकाल बाहर फेंक देना पड़ा। आपके खीसे में बहुत सिक्के पड़े हों और लाख की लाटरी मिल जाए तो आप उस खीसे को तत्काल खाली कर लेंगे। हो सकता है सड़क पर बैठा हुआ भिखारी समझे कि कितना त्यागी आदमी है। स्वभावतः उसे तो पता नहीं

है कि लाख की लाटरी मिल गई है इस आदमी को। उसे तो इतनी दिखाई पड़ रहा है कि खींसे के एक-एक नये पैसे के सिक्के इसने रास्ते पर पटक दिए और घर की तरफ भागा है। अभी यह इतना बोझ नहीं ढो सकता है। उसे यह पता नहीं है कि यह कुछ और बड़ी उपलब्धि को पा गया है इसलिए एक पैसे के सिक्के का कोई अर्थ नहीं रह गया। भिखारी कहेगा कि महात्यागी हो तुम और उन पैसे के सिक्कों को इकट्ठा कर लेगा। और कभी सोचेगा कि वह दिन अपनी जिंदगी में भी आ जाए कि जब हम इन पैसे के सिक्कों को छोड़ दें। और कल अगर वह उस आदमी को रास्ते पर नाचते हुए, आनंद से गुजरते हुए देखे जिसे लाख की लाटरी मिल गई। तो वह भिखारी सोचेगा कि इस आदमी ने त्याग किया इसलिए बड़े आनंद को उपलब्ध हो गया है। कभी हम भी इन पैसों को त्याग देंगे तो आनंद को उपलब्ध हो जाएंगे। भूल होगी अगर उस भिखारी ने कभी वे पैसे फेंक दिए तो लाख की लाटरी नहीं मिल जाएगी। लाख की लाटरी मिलने से पैसे फेंके जा सकते हैं। हम जो भिखारियों की तरह हैं। हमने महावीर और बुद्ध को इतने आनंद में भरे देखा है, कि हमने सोचा है कि इन्हें यह आनंद कैसे मिला।
तो हमने देखा कि इन्होंने क्या-क्या छोड़ा। किसी ने महल छोड़ा, किसी ने
पत्नी छोड़ी, किसी ने धन छोड़ा, हम सोचते हैं कभी हम भी छोड़ दें। हमें भी यह आनंद मिल जाएगा। यह तर्क गलत है। यह तर्क उलटा है, इन्हें कुछ मिल गया इसलिए ये कुछ छोड़ सके। और हम कुछ छोड़ कर कुछ पाने गए तो वही होगा जो दो-ढाई हजार साल से बुद्ध और महावीर के पीछे हो रहा है। सूखी हड्डियों वाले लोग, मुर्दे खड़े हैं, उनके पीछे, अस्थि-पंजर लिए। कुछ उन्हें मिला नहीं कुछ छोड़ उन्होंने जरूर दिया है। अब उनकी मुसीबत बड़ी है जो छोड़ दिया है, वही उनकी संपत्ति थी, वह भी छूट गई जो मिलना था आशा में अटके हैं, वह भी नहीं मिला। उनकी स्थिति त्रिशंकु की हो गई है। इसलिए उनका एक ही रस है कि जिनके पास है उनको भी समझाएं कि तुम भी छोड़ो। जिनकी दुम है, उसको भी कटवाने की कोशिश में वे लगे हैं। जितने लोगों की पूंछ कट जाए उतना ही अच्छा है। नहीं, मैं त्याग की बात नहीं करता हूं, और अगर कोई कोई करता हो तो कहता हूं कि गलत करता है। मैं बात करता हूं परम भोग की। उस परमभोग के आस-पास त्याग घटित होता है वह दूसरी बात है उसकी चिंता करने की कोई जरूरत नहीं।
मैं बात करता हूं स्वास्थ्य की, बीमारी छूट जाए उसकी चर्चा करने की कोई जरूरत नहीं है। मैं बात करता हूं और ऊपर के आयाम को उपलब्ध करने की, नीचे के आयाम छूट जाएं, उसकी कोई बात करने की जरूरत नहीं है। मेरे सोचने का ढंग और-और पाने का ढंग है, और-और छोड़ने का ढंग नहीं। और मैं आपसे कहूंगा जिंदगी का रहस्य उपलब्धि में है, मृत्यु का रहस्य त्याग में। मरना हो तो त्याग रास्ता है, परम जीवन को पाना हो तो परम भोग रास्ता है। लेकिन मेरी बात से भूल हो जाती है, क्योंकि आप शायद सोचते होंगे जो आप भोग रहे हैं उसका मैं समर्थन कर रहा हूं। उसका मैं समर्थन नहीं कर रहा हूं। मैं इतना ही कह रहा हूं कि जो आप भोग रहे हैं उससे पता चलता है कि और बड़े भोग का आपको कोई पता नहीं है। मैं आपसे यह नहीं कह रहा हूं कि जो कंकड़-पत्थर आप पकड़े हुए बैठे हैं, वे बड़े कीमती हैं।
मैं यह कह रहा हूं कि उन कंकड़-पत्थरों को पकड़े बैठे होने की वजह से मुझे पता चलता है कि आपको हीरों की खदानों का अभी कोई पता नहीं चला। मैं नहीं कहता कि कंकड़-पत्थर छोड़ें क्योंकि जब तक हीरे नहीं मिले तब तक खेल-खिलौनों की तरह उनके साथ खेलते रहें, नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। मैं कहता हूं कंकड़-पत्थरों से खेलते रहें, हीरों की खोज जारी रखें। जिस दिन हीरे मिलेंगे उस दिन कंकड़-पत्थर छोड़ कर आप ऐसे भाग जाएंगे कि आप लौट कर भी किसी से कहने न जाएंगे कि मैंने कंकड़-पत्थरों का त्याग कर दिया है। और अगर कोई आदमी कहने जाए कि मैंने कंकड़-पत्थरों का त्याग कर दिया है तो समझ लेना कि कंकर-पत्थर अभी उसे कंकर-पत्थर न हुए। अभी हीरे थे और अभी उसे हीरे नहीं मिले तभी कंकर-पत्थर हीरे हो सकते हैं।
आपके भोग का मैं समर्थन नहीं कर रहा हूं बल्कि बहुत गहरे अर्थों में मैं जितना भोग के विरोध में हूं उतना त्यागी आपके भोग के विरोध में नहीं है। त्यागी तो आपके भोग पर बड़ा भरोसा रखता है वह आपको कहता है कि यह भोग छोड़ दो तो परमात्मा मिल जाएगा। त्यागी तो आपके भोग को बहुत कीमत दे रहा है। इतनी कीमत दे रहा है, कि अगर इसे छोड़ने को राजी हो तो परमात्मा मिल सकता है। मूल्य बहुत दे रहा है वह कम मूल्य नहीं दे रहा। आपके भोगों को

बहुत सिग्निफिकेंट कह रहा है वह। वह कह रहा है कि आपके हाथ में जो कंकड़-पत्थर हैं इनसे हीरे खरीदे जा सकते हैं। इनको छोड़ दो और हीरे ले लो। वह आपके भोग को बहुत कीमत दे रहा है। मैं आपके भोग को दो कौड़.ी की भी कीमत नहीं देता हूं। क्योंकि मैं आपसे कह रहा हूं कि इनको छोड़ने से कुछ भी न मिलेगा ये बिल्कुल बेकार हैं। इनको छोड़ने से धर्म ना मिलेगा। इनको छोड़ने से स्वर्ग न मिलेगा। इनको छोड़ने से पुण्य न मिलेगा। इनको छोड़ने से परमात्मा न मिलेगा। त्यागी आपसे कह रहा है इनको छोड़ने से आपको कुछ मिलेगा। जिस चीज को छोड़ने से कुछ मिलता हो उसका मूल्य बहुत है। जिस चीज को छोड़ने से कुछ मिलता है और जिसको छोड़ने से परमात्मा मिलता है उसका छोटा मूल्य नहीं रहा। जो चीज परमात्मा को भी खरीद सकती हो उसका मूल्य बहुत। त्यागी आपके भोग को बहुत मूल्य देता है। और इसलिए आपभी त्यागी के त्याग को बहुत मूल्य देते हैं। आप दोनों भोगी हैं एक-दूसरे की तरफ पीठ किए हुए खड़े हैं और बड़ा मजा ले रहे हैं। वह त्यागी भी भोगी है। आप भी त्यागी हैं उसी अर्थों में जिस अर्थों में वह भोगी है। और आप दोनों एक-दूसरे की तरफ पीठ खड़े किए हो। एक म्युचुअल एप्रिसिएशन चल रहा है। वह आपकी प्रशंसा कर रहा है, आप उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। आप कह रहे हैं कि आप बड़े महान हैं, बड़ा त्याग किया है। वह कह रहा है कि आप भी बड़े महान हो सकते हैं जरा सा त्याग कर दो। चीजें तो आपके हाथ में हैं। छोड़ दो आप भी महान हो जाओगे। मैं आप दोनों को कोई कीमत नहीं देता हूं। क्योंकि जिस दिन मैं आपके भोग को कीमत दूं उसी दिन मैं त्याग के त्यागी को कीमत दे सकता हूं क्योंकि छोड़ा क्या है उसने जो आपके पास है वही छोड़ा है। और अगर आपके हाथ में कचरा है तो उसने भी कचरा छोड़ा है। कचरे से कहीं परमात्मा मिलता है? कचरे से कहीं मोक्ष मिल सकता है? महावीर और बुद्ध पर कृपा करें थोड़ी। उन्होंने कचरा छोड़ कर मोक्ष नहीं पाया, मोक्ष पाने की वजह से कचरा छूट गया है।
मैं संयम के पक्ष में नहीं हूं। क्योंकि मैं दमन के पक्ष में नहीं हूं लेकिन इसका मतलब यह मत समझ लेना कि मैं असंयम के पक्ष में हूं। इसका मतलब यह मत समझ लेना कि मैं भोग के पक्ष में हूं। हमारा दिमाग दो से ज्यादा सोच ही नहीं पाता। हम सोचते हैं या तो इस तरफ या उस तरफ और कोई रास्ता हमें दिखाई नहीं पड़ता है। यह हमारी बुद्धिमत्ता की बड़ी संकीर्ण व्यवस्था है। हम कहते हैं कि या तो इस तरफ या तो उस तरफ। हम कहते हैं या तो रात या तो दिन सांझ का हमें कोई पता ही नहीं जब दिन भी नहीं होता और रात भी नहीं होती। सुबह का हमें कोई पता ही नहीं जब अंधेरा जा चुका होता है और सूरज नहीं निकला होता है। और भी वक्त हैं जिंदगी में और भी दिशाएं हैं। दो में ही सब कुछ तोड़ लेना उचित नहीं है। और सच्चाई तो यह है जहां दो हों वहां तीसरा हमेशा मौजूद होता है। और जहां दो हैं वहां तीसरा ही सदा रास्ता होता है। क्योंकि वह तीसरा दोनों से भिन्न और दोनों के ऊपर होता है। जब मैं ये सारी बातें कहता हूं तब मुझे निरंतर पता चलता है कि आप कुछ और ही समझ लेते हैं। आप वही समझ लेते हैं, जो आप समझ सकते हैं। जो मैं कह रहा हूं वह कई बार चूक जाता है। जैसे मैं भोग को विरोधी हूं लेकिन त्याग का समर्थक नहीं हूं। अब जरा कठिनाई होगी क्योंकि भोग का विरोधी त्याग का समर्थक होना ही चाहिए। मैं भोग का एक अर्थों में विरोधी हूं कि और बड़े भोग हैं। मैं त्याग का इसलिए समर्थक नहीं हूं कि त्यागने वाला और बड़े भोगों को उपलब्ध नहीं होता। लेकिन और गहरे झांकेंगे तो मुझसे बड़ा त्याग का समर्थक खोजना मुश्किल होगा, क्योंकि मैं जिस परम भोग की बात कह रहा हूं उसमें परम त्याग फलित होता है। उसमें अपने आप त्याग आता है। त्याग करना नहीं पड़ता उसका पता भी नहीं चलता वह हो जाता है।
संयम शब्द से मुझे कोई बहुत लगाव नहीं है। संयम शब्द भी बहुत बेहूदा है। उसका मतलब है कि किसी चीज को रोक-टोक कर कंट्रोल किया गया है। जिस चीज को भी कंट्रोल किया गया है जिस चीज का संयम किया गया है वह भीतर मौजूद होगी। अगर कोई आदमी कहता है कि मैंने कामवासना का संयम कर लिया है। तो जरा उससे सरक कर बैठें, क्योंकि उसके भीतर कामवासना आपसे भी ज्यादा होगी जिन्होंने संयम नहीं किया है। आपका तो थोड़ा बहुत पानी बह जाता है, आपकी काम-वासना नदी की तरह है, उनकी काम-वासना तालाब हो गई। वह संयम करके बैठे हुए हैं। उनसे जरा दूर ही रहना। उनसे जरा संभल कर ही रहना। उनकी कामवासना

कभी भी फूट सकती है। नदी से इतना खतरा नहीं होता, लेकिन जब तालाब फूटते हैं तो ज्यादा नुकसान होता है। क्योंकि तालाबों से हम अपेक्षा नहीं करते हैं कि फूटेंगे। जिसने रोक रखा है, उसके भीतर उफान आ रहे हैं, उसके भीतर भाप बन रही है, उसका विस्फोट हो सकता है। उसके विस्फोट की संभावना ज्यादा है। संयम के मैं पक्ष में नहीं हूं क्योंकि संयम का बहुत ठीक-ठीक अर्थ दमन
और सप्रेशन ही होता है। लेकिन इसका क्या मतलब है कि मैं असंयम के पक्ष में हूं। क्या मैं आपसे कह रहा हूं कि जाएं और असंयम की जिंदगी जीएं? नहीं, यह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, कि अगर आपको सच में ही संयम की जिंंदगी उपलब्ध करनी हो तो संयम से ही शुरू मत करना। संयम बाई-प्रॉडक्ट है। जैसे कोई आदमी गेहूं बोता है तो गेहूं के साथ भूसा पैदा हो जाता है। भूसा बाई-प्रॉडक्ट है। आप भूसे को मत बो देना, नहीं तो गेहूं पैदा नहीं होगा। यह मत सोच लेना कि जब गेहूं के साथ इतने दिन से बेचारा भूसा पैदा हो रहा है। अब कुछ गेहूं को भी दया करनी चाहिए कि हम भूसा बोएं तो गेहूं पैदा होना चाहिए। जब भूसे ने अनंत जन्मों से साथ दिया है गेहूं का तो गेहूं इतनी दया करेगा ही कि हम भूसा बोएंगे एक दफे तो गेहूं भी उसके साथ पैदा होगा। गेहूं बिल्कुल दया नहीं करेगा। भूसे के साथ गेहूं पैदा नहीं होगा। भूसे को बोएंगे तो पास का भूसा भी खराब हो जाएगा और कुछ भी नहीं होगा। हां, गेहूं को बोते वक्त भूसे का खयाल भी रखने की कोई जरूरत नहीं, भूसा आता ही, वह गेहूं के साथ आता है।
संयम जो है वह समझ का फल है। समझ गेहूं है, संयम भूसा है। आपके भीतर विवेक जगना चाहिए संयम नही और जब विवेक जगता है, तो आप अचानक पाते हैं कि असंयम समाप्त हो गया। क्योंकि असंयम विवेक की गैर-मौजूदगी है। असंयम का मतलब यह है कि आपके पास बुद्धि नहीं है, असंयम का मतलब यह है कि आपके पास समझ नाम की चीज नहीं है।
असंयम का मतलब यह कि आपके पास वह विवेक नहीं है जो देख पाए कि कहां दरवाजा है, कहां दीवाल है और आप बिना आंख की वजह से दीवाल से टकरा कर सिर फोड़ लेते हैं। आप कहते हैं कि अब मैं संयम रखूंगा, अब मैं दीवाल से न टकराऊंगा। आप संयम क्या खाक रखेंगे। दीवाल से कैसे टकराने से बचेंगे? आंखें होनी चाहिए। आंख बड़ी अलग बात है वह संयम नहीं है और जब आंख वाला आदमी कमरे के बाहर निकलता है तो क्या आप उसको बाहर कहेंगे कि तुम बड़े संयमी आदमी हो, दीवाल से बिल्कुल नहीं टकराते सीधे दरवाजे से बाहर निकल आते हो। वह आदमी कहेगा मुझे पता नहीं कि टकराने की कोई जरूरत है। जहां दरवाजा है वहां से मैं निकल आता हूं। क्या आपने दरवाजे से निकलते वक्त सोचा है कि मैं दरवाजे से ही निकलूंगा, इसका कोई संकल्प किया है? कभी कोई संकल्प नहीं किया। किसी भगवान के सामने कसम खाई है कि मैं अब पक्का प्रण लेता हूं कि अब मैं दीवाल से न टकराऊंगा और दरवाजे से ही निकलूंगा। नहीं कोई कसम नहीं खाई। फिर भी आप दरवाजे से निकलते हो, दीवार से नहीं टकराते। बात क्या है? दरवाजा निकलने की जगह है यह आंखों को दिखाई पड़ता है, दीवाल निकलने की जगह नहीं है। विवेक जगना चाहिए, जब विवेक जगता है तो दिखाई पड़ता है कि कहां दरवाजा है, जो निकलने का है, कहां दीवाल है जो नहीं निकलने की है। तब क्रोध दीवाल की तरह दिखाई पड़ने लगता है। क्षमा दरवाजे की तरह दिखाई पड़ने लगती है। क्षमा निकलने का रास्ता बन जाती। क्रोध सिर टकराने, फोड़ने की जगह बन जाती है। जिनको विवेक उपलब्ध होता है वे क्रोध का त्याग नहीं करते। क्रोध का त्याग हो जाता है। अब लोग हैं जो महावीर को कहते हैं, महावीर महान क्षमावान थे, गलत कहते हैं। एकदम गलत कहते हैं। क्योंकि क्षमावान तो सिर्फ वही हो सकते हैं जो क्रोधवान हों। पहले क्रोध करना जरूरी है तभी आप क्षमा कर सकते हैं। जब हम कहते हैं कि महावीर महा क्षमावान थे तो हम मानते हैं कि वह क्रोध भी करते रहे होंगे। क्योंकि जिसने क्रोध ही न किया उसके क्षमा का क्या मतलब! मैं कहता हूंः महावीर क्षमावान नहीं थे, महावीर अक्रोधी थे। असल में क्रोध इतना मूर्खतापूर्ण है कि महावीर को करने जैसा नहीं लगता, इसलिए वह किसी पर क्षमा नहीं करते, सिर्फ अपने पर क्षमा करते थे। इसमें वह किसी पर दया नहीं कर रहें, खुद पर दया कर रहे हैं।
बुद्ध एक गांव के पास से गुजरते हैं और उस गांव के लोग उनको बहुत गालियां देते हैं। और जब उनकी गालियां पूरी होने के करीब में आती हैं तो

बुद्ध उनसे कहते हैं कि मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। अगर तुम्हारी बातचीत पूरी हो गई हो तो अब मैं जाऊं। तो वे लोग कहते हैं कि यह बातचीत न थी, हमने सीधी-सीधी गालियां दी हैं, आपको समझ में न पड़ीं? बुद्ध ने कहाः अगर समझ में न पड़तीं तो मैं भी तुम्हें गाली देने को तैयार होता। मुझे समझ में पड़ गई, इसलिए मैं कहता हूं कि बातचीत पूरी हो गई हो तो मैं जाऊं। मुझे दूसरे गांव जल्दी पहुंचना है। वे लोग बोले अगर समझ में पड़ गई है, तो हमारा उत्तर चाहिए। बुद्ध ने कहाः अगर उत्तर लेना था तो दस साल पहले आना था। तब मैं भी तुम्हारे जैसा ही मूढ़ था। तब तुम एक गाली देते तो मैं दो गाली देता। तुम्हारी गाली पूरी भी न हो पाती, तो मेरी गाली निकल जाती। तुम दे भी न पाते तो मैं तुम्हें उत्तर दे देता और दोगुने वजन का उत्तर देता। लेकिन अब जरा मुश्किल हो गई। अब तुम गलत आदमी के पास आ गए हो। अब गाली देना मुश्किल हो गया है, क्योंकि अब अपने आपको कष्ट में डालना मुश्किल हो गया है।
वे लोग कहने लगें कि हम गालियां दे रहे हैं। आप सच में ही कोई उत्तर न देंगे। बुद्ध ने कहाः पिछले गांव में कुछ लोग आए थे, वे मिठाइयां लेकर आए थे, मैंने उनसे कहा कि मेरा पेट भरा है फिर वे मिठाइयों का थाल वापस ले गए। यही मैं तुमसे कहता हूं कि गालियों से मेरा पेट भर चुका। अब कोई भूख शेष नहीं रही, अब तुम अपने थाल वापस ले जाओ। और बुद्ध ने कहा कि मुझे तुम पर बड़ी दया आ रही है। क्योंकि वे लोग जो पिछले गांव में मिठाइयां वापस ले गए उन्होंने तो मिठाइयां बांट दी होंगी, तुम क्या करोगे। इन गालियों का तुम क्या करोगे? क्योंकि मैं लेने से इनकार करता हूं, देने के हकदार तुम हो। लेकिन कम से कम इतना हक तो मेरा है कि मैं लूं या न लूं। मैं तुम्हारी गालियां लेने से इनकार करता हूं। अब यह जो आदमी है कोई संयमी नहीं है। इसके ऊपर भीतर क्रोध उठ रहा है इसने संयम साध लिया। और इसने अपने दांत के जबड़े बांध लिए, मुट्ठियां कस लीं है, सोचा कि क्रोध को बाहर न निकलने दूंगा। अगर यह आदमी इस तरह का क्रोधी है तो इस आदमी को कोई समझ उपलब्ध नही हुई। संयमी के पास समझ हो यह जरूरी नहीं। लेकिन समझदार के पास संयम होता है यह जरूरी है। मेरा जोर संयम पर नहीं, मेरा जोर विवेक पर है। मेरा जोर आपके भीतर समझ जन्में और मैं आपसे कहना चाहता हूं अक्सर संयमी जो ऊपर से संयम थोपते हैं अपने विवेक को और भी नष्ट करने में भर सहयोगी होते हैं। और कुछ भी नहीं कर पाते। जो आदमी जबरदस्ती नियम ओढ़ लेता है। उसके भीतर समझ पैदा होने की संभावना कम हो जाती है। जो आदमी जबरदस्ती कसमे खा लेता है उसके भीतर समझ कम हो जाती है।
मैं एक जगह कलकत्ते में एक बूढ़े सज्जन के घर मेहमान था। उनकी उम्र होगी कोई सत्तर वर्ष अब तो वह चल भी बसे। जब उन्होंने मेरी बात सुनी तो उन्होंने मुझसे कहा कि हैरानी है, मैं जिस बात को सुनने के लिए जिंदगी भर से परेशान था वह आपने मुझसे कही। मैं तीन दफे ब्रह्मचर्य का व्रत ले चुका हूं। मैंने पूछा तीन दफा ब्रह्मचर्य का व्रत? एक दफा काफी होना चाहिए। क्योंकि ब्रह्मचर्य के व्रत का तीन दफे क्या मतलब होता है? मेरे साथ एक और नासमझ सज्जन मौजूद थे। उन्हें यह खयाल नही आया, वे बड़े प्रसन्न हुए कि आपने तीन बार व्रत लिया। बड़े त्यागी हैं। मैंने उनसे कहा कि तीन बार की तो फिकर छोड़ो मैं यह पूछता हूं कि चौथी बार क्यों नहीं लिया? वे बूढ़े आदमी बहुत भले थे। उन्होंने कहा कि चौथी बार इसीलिए नहीं लिया, इसलिए नहीं कि तीसरी बार का पूरा हुआ बल्कि इसलिए कि तीन बार कि असफलता ने यह सिद्ध कर दिया कि अपने बस की बात नहीं है।
मैंने कहा कि आप गलत ही समझे। असफलता आपकी नहीं थी, असफलता संयम की व्यवस्था की थी। आपने समझा भी है कि काम क्या है, सेक्स क्या है? आपने समझे हैं काम के रहस्य, आप काम के भीतर गहराई को समझने की कोशिश किए हैं कि काम क्या है? उसका आकर्षण क्या है? आपने काम के, संभोग के क्षण में जाग कर देखा है कि क्या है जो पुकारता है, क्या है जो आकर्षित करता है? उन्होंने कहा कि नहीं यह तो कभी देखा नहीं। डर के मारे जबरदस्ती आंख बंद करके काम में गया, और पछताता रोता और कसम खाता, और मंत्र और नमोकार पढ़ते हुए वापस आया। फिर दस पांच दिन पश्चाताप के दिन रहे और दस-पांच दिन के बाद फिर हमला हुआ और फिर पश्चाताप से भरा हुआ मन लिए फिर वापस गया। संयमी आदमी समझने में असमर्थ हो

जाता है, क्योंकि जिसके खिलाफ आपने कसम दे दी है उसके आप शत्रु हो गए, उसे आप समझेंगे कैसे? समझने के लिए सहानुभूति चाहिए।
बुराई को समझने के लिए भी बुराई से सहानुभूति चाहिए। बुराई को समझने
के लिए भी मित्रतापूर्ण हाथ होना चाहिए। बुराई को समझने के लिए भी निरीक्षक की तटस्थ दृष्टि चाहिए। और जिसने संयम ले लिया वह पक्षपाती हो गया। वह तटस्थ नहीं हो सकता। उसने तो निर्णय पहले ले लिया। उसका कनक्लूजन तो ले चुका, निष्कर्ष तो ले चुका। काम बुरा है, हम दुश्मनी साधते हैं, हम संयम साधे हैं, अब यह आदमी काम को कभी नहीं समझ सकता है। यह सेक्स को कभी न समझ सकेगा। यह कसमों में घिरा हुआ जीएगा और कसमों में घिरे हुए आदमी पाखंडी होते हैं। नहीं, और बात है। समझ एक मुक्ति है। संयम एक बंधन है। समझ एक आनंद है। संयम एक पीड़ा है। समझ एक सहजता है, संयम एक असहज कृत्रिम आरोपण है, मैं संयम के पक्ष में नहीं हूं। लेकिन ध्यान रहे, मुझसे ज्यादा संयम के पक्ष में कोई भी नहीं। क्योंकि जो मैं कह रहा हूं उसका परिणाम संयम है।
एक और मित्र ने इस संबंध में पूछा है कि मन को बुराइयां घेरती हैं, तो उनसे छुटकारा कैसे हो?
तो दो बातें खयाल कर लेना। एक तो बुराई को अगर बुराई समझा, बिना समझे किसी और के कहने से बुराई समझा, तो छुटकारा कभी न होगा। बुराई को बुराई मान कर मत चलना। पहले तो इतना ही मान कर चलना कि यह अज्ञात तथ्य है जो मेरी जिंंदगी को घेरे हुए है-क्रोध। अब इसको बुराई मान लिया। बिना जाने बहुत कम लोग हैं जिन्होंने जिंदगी में आथेंटिकली क्रोध किया हो। जिन्होंने प्रामाणिक रूप से क्रोध किया हो। ऐसे बहुत कम लोग हैं। कोई भी आदमी एक बार प्रामाणिक रूप से क्रोध कर ले तो क्रोध से बाहर हो जाएगा। लेकिन जब क्रोध करते हैं, तो उसको भी पूरा नहीं करते। उसको भी हॉफ-हार्टेड, उसको भी दबाए रहते हैं, थोड़ा-थोड़ा निकलता है, थोड़ा दबा लेते हैं। वह कभी पूरा क्रोध करते भी नहीं। इसलिए पूरा क्रोध कभी आप देख भी नहीं पाते कि क्या है? अगर क्रोध को पूरा देख पाएं, तो उसके बाद क्रोध करना असंभव है। यह मैं नहीं कहता हूं कि क्रोध को शत्रु मान कर बुरा मान कर चलना शुरू करें। क्रोध भी सहयोगी है, क्रोध भी मित्र है। और परमात्मा ने दिया तो उसका भी प्रयोजन है। उसका भी परपज है। जिंदगी में कोई बहुत रहस्यपूर्ण उसका भी हाथ है। अगर बच्चे में क्रोध न हो, और बिना क्रोध के बच्चे जिस दिन हम पैदा करेंगे वे बच्चे बिना रीढ़ के बच्चे होंगे। उनमें कोई रीढ़ नहीं होगी। और हो सकता है कि रूस और चीन की हुकूमतें जल्दी ही इस बात की कोशिश करें। इस पर प्रयोग तो बहुत चलते हैं और बहुत से राज भी हाथ में आ गए हैं, क्योंकि क्रोध के पैदा होने के लिए शरीर में कोई रासायनिक व्यवस्था जरूरी है। कुछ रासायनिक तत्व शरीर में न हों तो क्रोध पैदा नहीं हो सकता। कुछ आश्चर्य नहीं है। यह तानाशाही मुल्क अपने बच्चों में उन रासायनिक तत्वों को बचपन से ही नष्ट करने की कोशिश कर रहे हैं। जिस मुल्क में बच्चे क्रोध में नही आएंगे उस मुल्क में कभी कोई विद्रोह नहीं होगा। और जिस मुल्क के बच्चों में क्रोध नहीं होगा उस मुल्क के बच्चे भेड़-बकरी हो जाएंगे।
क्रोध का भी अपना अर्थ है। असल में जहर का भी जिंदगी में अपना अर्थ
है। और जहर हमेशा ही मारने वाला सिद्ध नहीं होता। कभी-कभी बचाने वाला सिद्ध होता है। एलोपैथ से पूछें। एलोपैथी की अधिकतम दवाइयां जहर हैं। रोज जहर ले रहे हैं दवा में आप। अगर कहीं कल कोई दुनिया में ऐसा इंतजाम करें कि जहर को दुनिया से खत्म कर दें, तो एलोपैथी खत्म हो जाएगी। जहर मारता ही नहीं, बचाता भी है। जहर के उपयोग की बात है। क्रोध जहर ही नहीं है, किसी क्षण में अमृत भी है। समझ चाहिए और तब हम क्रोध को भी साधन की तरह उपयोग कर पाएंगे। और समझ चाहिए तब क्रोध का जो अंतिम उपयोग है वह मैं आपको कहता हूं।
रास्ते पर आप गुजरते हैं, एक बड़ा पत्थर पड़ा हुआ है। आप चाहें तो सिर पीट कर वहीं बैठ जाएं कि अब आगे का रास्ता बंद। यह पत्थर पड़ा हुआ है, अब आगे कैसे जा सकते हैं। लेकिन आपको पता नहीं, अगर आप पत्थर पर चढ़ जाएं तो आगे का रास्ता फिर खुल जाता है और ऊंचे तल पर खुलता है। जितना आप पत्थर पर चढ़ सकते हैं, ऊंचे तल पर। लेकिन आप देखकर छाती पीट कर बैठ गए पत्थर के पास। पत्थर

सीढ़ी भी बनता है, पत्थर अवरोध भी बन सकता है। आप क्या बनाते हैं, यह आप पर निर्भर है। क्रोध के बाबत अगर आपने समझ लिया कि बुराई तो फिर आप क्रोध पर चढ़ न पाएंगे। और जो क्रोध पर न चढ़ पाएगा वह अक्रोध को उपलब्ध न हो पाएगा। और जो क्रोध पर न चढ़ पाएगा उसकी जिंदगी का चलना बंद हो जाएगा। काम यौन भी जिंदगी पर चढ़ने का एक तल है। घृणा भी जिंदगी के चढ़ने का एक तल है। हिंसा भी जिंदगी के चढ़ने का एक तल है। जिंदगी में जो भी है उसका अपना उपयोग है। इसलिए बुराई मान कर मत चलें। शुरू से बुराई मत मान लें। पहले पहचानें, पहले खुदे पत्थर पर चढ़ कर देखें कि पत्थर रोकता है, और जब सब पूरी तरह आप देख लेंगे, तो मैं आपसे कहता हूं कि आप परमात्मा को इसके लिए भी धन्यवाद देंगें कि तुमने मुझे क्रोध दिया। अन्यथा मैं अक्रोध को उपलब्ध न हो सकता। तुमने मुझे काम दिया अन्यथा मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध न हो सकता। तुमने मुझे क्रूरता दी अन्यथा मैं करुणा को उपलब्ध न हो सकता। या बुराई मान कर मत चलें पहली बात। जिसने बुराई मान ली वह कभी बुराई से छुटकारा नहीं पा सकता।
दूसरी बात, छुटकारा पाना ही है, हम मान कर क्यों चलें। जिसने ऐसा मान लिया वह कभी छुटकारा न पा सकेगा। छुटकारा पाना ही है। इसका मतलब है कि तय हो गया कि यह बंधन है, गुलामी है। आप निर्णय से शुरू करते हैं। निष्पक्षता से शुरू करें। निर्णय तो अंतिम बात है जानने के बाद पता चलेगा। लेकिन हम सब अजीब हैं। हम उन स्कूल के चोर बच्चों की तरह हैं, जिनको गणित का सवाल दिया जाता है जो किताब उलटा कर के तो पहले उसका निर्णय ले लिया, पहले उसका कनक्लूजन ले लिया। पहले किताब उलटा कर तो देखते हैं कि इसका उत्तर क्या है। उत्तर पहले देख लेते हैं तो फिर विधि करने की कोई जरूरत ही नहीं रह जाती। और दूसरों के उत्तर आपके उत्तर नहीं बन सकते। और स्कूल के चोर बच्चे तो माफ किए जा सकते हैं। लेकिन हमारा तो पूरा का पूरा समाज चोर है, हम दूसरों के निष्कर्ष अपनी जिंदगी में मान कर शुरू करते हैं, फिर विधि कभी नहीं हो पाती। महावीर ने जो गणित किया, बुद्ध ने जो गणित किया, कृष्ण ने जो गणित किया वह हम नहीं करना चाहते, हम किताब उलटा कर उत्तर देख लेते हैं कि छोड़ो। गीता में क्या लिखा है? उत्तर क्या है आखिरी? हम तो उत्तर से शुरू करेंगे। उत्तर से शुरू करने वाला आदमी कभी भी यात्रा नहीं कर पाता क्योंकि उत्तर का मतलब है कि यात्रा खत्म हो गई। आप कनक्लूजन से शुरू मत करें, मत कहें कि बुरा है, मत कहें कि छुटकारा चाहिए। कहें कि जो है उसे मैं जानना चाहता हूं और जो है उसे जान कर तय करूंगा कि वह छूटने योग्य है, या पकड़ने योग्य है, और मजे की बात यह है कि जानकर तय कभी भी नहीं करना पड़ता। जिस दिन आप जान लेते हैं जो छूटने योग्य है वह जानने के साथ ही छूट जाता है। उसे छोड़ने के लिए अलग से प्रयास नहीं करना पड़ता है। असल में जिस दिन आप जानते हैं कि यह छूटने योग्य है उस दिन आप उस जगह पहुंच जाते हैं जहां छूटने की क्षमता आपके भीतर आ गई होगी। उसके पहले आप यह जान भी नहीं पाते।
ज्ञान ही, नालेज इ.ज वर्चु--सुकरात का वचन हैः जान लेना ही चरित्र है। लेकिन हम दूसरों के जानने को अपना जानना समझे हुए हैं। इसलिए हम मुश्किल में पड़े हैं।
एक मित्र ने पूछा कि अकेले जानने से क्या होगा? करना भी तो पड़ेगा।
मैं आपसे कहता हूं, करना सिर्फ उन्हीं को पड़ता है जिन्होंने नहीं जाना है। और ध्यान रहे, न जाना हो, तो न करना अच्छा है। कम से कम खतरा तो पैदा नहीं होगा। न जाने और करने से जितना नुकसान होता है उतना न करने से नहीं होता। अज्ञानी के हाथ में कर्म सदा ही खतरनाक सिद्ध होते हैं और दुनिया में अज्ञानी बड़े कर्मठ होते हैं। ज्ञान जानते ही करने की जरूरत नहीं रह जाती क्योंकि जो आप जान लेते हैं आप वह आपके प्राणों में समाहित हो जाता है। वह आपके व्यक्तित्व का हिस्सा होता है। अब आपने जान लिया कि आग में हाथ जलता है तो, क्या अब अलग से, आग में हाथ न जले इसके लिए कुछ करना पड़ता है? वह जानना करना बन जाता है। अब आप आग से बच कर चलते हैं तो बचने के लिए भी प्रयास नहीं करना पड़ता, आप आग से बच जाते हैं। यह आपका सहज हिस्सा हो जाता है कि जहां आग है वहां आप कदम नहीं बढ़ा सकते। लेकिन अगर कोई कहे कि मुझे यह तो पता है कि आग जलाती है, लेकिन अब मैं आग से जलना कैसे छोडूं, उसे हम क्या कहेंगे। उसे हम कहेंगे कि तुझे पता नहीं है यह किसी और को पता

होगा। उससे तूने सुना है कि आग जलाती है, तू खुद आग का जला हुआ नहीं है अन्यथा दूध का जला छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है। दूध तो पीता ही है फूंक कर, छाछ भी फूंक-फूंक कर पीने लगता है क्योंकि छाछ भी जरा दूध जैसी दिखाई पड़ती है। आग का जला आग से तो दूर रहता ही है। आग जैसी भी कोई चीज दिखाई पड़े तो भी कदम संभाल कर रखता है। अलग से कुछ करना नहीं पड़ता। ज्ञान जीवन बन जाता है। यह मैं आपसे न कहूंगा कि बुराई कैसे छोड़ें। मैं कहूंगा कि आप जानें कि बुराई क्या है? मैं आपसे न कहूंगा कि बुराई को छोड़ने की विधि क्या है। बुराई को छोड़ने की विधि बुराई को जानना है। और बुराई को जानने की विधि बुराई को बुराई न मानना है।
बुराई को एक तथ्य की तरह लें कि वह है। क्रोध है, और निर्णायक न बनें
कि बुरा है कि अच्छा। पक्षपाती न बनें। मित्र, शत्रु न बनें। क्रोध एक तथ्य की भांति जीवन का हिस्सा है उसे जानें और उसे जानने के लिए जो भी करना हो वह करें। जानने के लिए, तो जब क्रोध आए, पत्नी पर क्रोध आ जाए, बेटे पर क्रोध आ जाए, तो बेटे को खबर कर दें कि आज मुझे पूरा क्रोध कर लेने दें ताकि मैं पूरी तरह जान लूं कि यह क्रोध क्या है? और जिस दिन आप कह कर क्रोध करेंगे घर में, उससे कोई उपद्रव पैदा नहीं होगा। बल्कि सारा घर आप पर हंसेगा और घर को भी बहुत फायदा होगा, कि आज पिताजी क्रोध कर रहे हैं। लेकिन पिताजी दिखलाते हैं कि हम क्रोध करते ही नहीं। और क्रोध करते है तब कोई फायदा नहीं होता। खुद को भी नहीं होता, दूसरे को भी नहीं होता। और अगर घर का एक भी सदस्य कह दे कि आज मैं क्रोध करूंगा और आज मुझे पूरा क्रोध करके देखना है, तो वह पूरा घर एक प्रयोग स्थल हो गया। उसके क्रोध के कोई दुष्परिणाम न होंगे। क्योंकि घर के लिए वह मजाक बन जाएगा। और खुद के लिए कोई दुष्परिणाम न होंगे। क्योंकि दमन न होगा फिर भी क्रियाएं तो होंगी और क्रोध जब पूरा निकलेगा तभी आप जान सकेंगे कि क्रोध क्या है?
गुरजिएफ एक फकीर था, जो कुछ दिन पहले मरा। उसके आश्रम में जो भी जाता
वह उससे पहले इस तरह की चीजें करवाता। उससे कहता कि क्रोध करो, और जोर से करो पूरी तरह करो जब आ जाए। और जब कोई आदमी पूरे क्रोध में भर जाता है तो ऐसी सिचुएशन पैदा करता कि किसी को क्रोध आ जाए। और जब वह पूरी तरह क्रोध में भर जाता, जलने लगता और उसके हाथ-पैर आग बन जाते हैं और उसकी आंखों में लपटें निकलने लगतीं। उसके दांत भिंच जाते, उसके हाथ किसी की गर्दन दबाना चाहते। तब वह गुरजिएफ और उसके सब साथी चिल्ला कर कहते है कि जागो! बी अवेयर! अब देखो कि यह क्या हो रहा है भीतर। और उस क्षण में उस सिचुएशन में जब पूरा क्रोध आग की तरह मौजूद हो चारों तरफ, भीतर, अगर आप जाग जाएं और देख सकें कि यह क्या हो रहा है, दुबारा आप क्रोध में प्रवेश नहीं कर पाएंगे। तब आपको क्रोध पागलपन मालूम होगा। तब आपको क्रोध एक अस्थायी मैग्नेट मालूम होगा। तब आप और क्रोध दो हो जाएंगे। तब क्रोध एक आग की लपट मालूम होगी और आपकी चेतना अलग मालूम होगी। जिस दिन आप क्रोध को ऐसा देख लें उस दिन से आपको क्रोध कैसे छोड़ें, किस मंदिर में कसम खाएं? किस गुरु का ताबीज बांधें? कौन से शास्त्र को सिर पर लेकर घूमें? यह न पूछना पड़ेगा, उस दिन से आप क्रोध के बाहर हो जाएंगे। क्रोध की व्यर्थता, क्रोध की अग्नि, क्रोध का जहर, आपको पता हो जाएगा। और अगर इसके बाद कभी आपको क्रोध करने का मौका आए तो आप अब सिर्फ अभिनय कर सकेंगे। आप क्रोध न कर सकेंगे। क्रोध के अभिनय का उपयोग हो सकता है। जिंदगी में उसकी जरूरत हो सकती है।
हिंदुस्तान हजारों साल से सुन रहा है कि क्रोध बुरा है। इसलिए गुलामी
के वक्त क्रोध का अभिनय भी नहीं कर पाया। क्रोध न करता तो वह ठीक था। अभिनय न कर पाया। काश, हम अभिनय भी कर सकते क्रोध का। अगर चालीस करोड़ लोग एक घंटे के लिए तय कर लेते कि पूरा मुल्क एक घंटे के लिए अंग्रेजों को क्रोध दिखा देगा। तो एक घंटे में गुलामी खत्म होती। एक घंटे से ज्यादा की कोई जरूरत नहीं होती। लेकिन हम अभिनय भी न कर सके। क्योंकि हम दबाए हुए लोग, हमें डर है कि अभिनय करेंगे तो असली न प्रकट हो जाए। वह भीतर दबा हुआ है। इसलिए अभिनय भी करने में भय है। अभिनय केवल वही कर सकता है क्रोध का जिसके भीतर क्रोध का कोई दमन नहीं। उसे कोई डर नहीं।
एक स्त्री के साथ आप अभिनय में नाच नहीं सकते अगर आपके भीतर काम का दमन हो। आपको डर है कि काम प्रकट न हो जाए। स्त्री के साथ कृष्ण जैसा कोई

आदमी नाच सकता है। कोई दमन नहीं है। कोई भय भी नहीं। बुराई बुराई की तरह स्वीकार करके मत चलें, जानें, क्या है। छुटकारे की पहले से कामना न करें।
जानें, जो छूटने योग्य है वह जानते ही छूट जाता है।
कुछ और प्रश्न हैं, संध्या की चर्चा में आपसे बात करूंगा।
मेरी बातों को इतनी शांति और प्रेम से सुना, इसके लिए बहुत अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे हुए प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
नौवां प्रवचन

सत्य शब्दों में व्यक्त नहीं हो सकता

एक मित्र ने पूछा है कि क्या मनुष्य की श्रद्धा को तर्क से ललकारा जा सकता है?

श्रद्धा को तो किसी से भी नहीं ललकारा जा सकता है। लेकिन जिसे हम श्रद्धा कहते हैं वह श्रद्धा होती ही नहीं। वह होता है सिर्फ विश्वास और विश्वास को किसी से भी ललकारा जा सकता है। श्रद्धा और विश्वास के थोड़े से भेद को समझ लेना जरूरी है। विश्वास है अज्ञान की घटना। जो नहीं जानते उनकी मान्यता का नाम विश्वास है। श्रद्धा है ज्ञान की चरम परिणति, जो जानते हैं उनके जानने में श्रद्धा है। उसे किसी भी भांति नहीं ललकारा जा सकता। लेकिन जिसे हम श्रद्धा कहते हैं वह श्रद्धा नहीं है, वह तो विश्वास है, बिलीफ। और ध्यान रहे, क्योंकि जो विश्वास करता है वह श्रद्धा का कभी भी नहीं होता है। श्रद्धा तक पहुंचना हो तो विश्वास में संदेह का आ जाना बहुत जरूरी है। श्रद्धा तक पहुंचना हो तो अंधे होने की जगह आंख का खुला होना जरूर चाहिए। श्रद्धा तक पहुंचना हो तो कुछ भी मान लेने के बजाय जो है उसे खोजना जरूरी है।
हम सारे इतने कमजोर लोग हैं बिना खोजे मान लेते हैं। यह बिना खोजे जो हमने मान रखा है इसे तो किसी भी भांति से तोड़ा जा सकता है। असल में इसे तोड़ने की जरूरत ही नहीं, यह टूटा हुआ है ही। यह हम भी अपने भीतर जानते हैं कि हमारे विश्वास के नीचे कोई बुनियाद नहीं है, कोई आधार नहीं है। इसलिए विश्वास से भरा हुआ आदमी सदा भयभीत रहता है।
यह जिन मित्र ने पूछा है वे भी विश्वास से ही भरे होंगे। इसलिए उन्हें
डर है कि कहीं तर्क से उनका विश्वास ललकारा न जाए। तर्क ललकारेगा, तर्क बहुत कीमती है। और जिन्हें श्रद्धा तक पहुंचना है उन्हें तर्क के मार्ग से गुजरना ही पड़ता है। असल में श्रद्धा तब आती है जब सब तर्क हारकर गिर जाते हैं। और विश्वास तब आता है जब तर्क किया ही नहीं गया हो। जिसने तर्क किया ही नहीं हो वह विश्वासी होता है। जिसने सब तर्क किया, और पाया कि सब तर्क गिर गए। वह श्रद्धा को उपलब्ध हो जाता है। श्रद्धा तर्कों के मृत्यु पर खड़ी होती है। और विश्वास तर्क से बच कर, आड़ में छिप कर खड़े होते हैं। विश्वास अंधेरे की चीजें हैं। श्रद्धा पूर्ण विश्वास की घटना है। पूर्ण प्रकाश की घटना है। श्रद्धा को लेकिन हम विश्वास समझ कर बड़ी आसानी से जी लेते हैं। ईश्वर का हमें कोई पता नहीं। लेकिन हम मानते हैं कि ईश्वर है। यह भी हो सकता है कि ईश्वर का हमें कोई पता नहीं और हममें से कोई मानता हो कि ईश्वर नहीं है, ये दोनों ही विश्वास हैं। आस्तिक भी विश्वासी है और नास्तिक भी विश्वासी है। उनके विश्वास विपरीत हैं यह बात दूसरी है, लेकिन दोनो विश्वास हैं। दोनो बिलीफ हैं। विश्वास का लक्षण यही है कि जो हमें पता नहीं है उसके संबंध में भी हम कुछ मान लेते हैं। यदि पता नहीं है ईश्वर के होने का तो आस्तिक भी विश्वासी और नास्तिक भी विश्वासी है। धार्मिक आदमी इन दोनो से भिन्न होता है। धार्मिक आदमी का मतलब आस्तिक नहीं होता। धार्मिक आदमी का मतलब होता है, वह जिसने जाना। और जो जान लेता हैं वह हां और न में उत्तर देने में असमर्थ हो जाता है। क्योंकि जो वह जानता है उसमें हां और न दोनों ही एक साथ सम्मिलित होते हैं। वह जो जानता है उसमें निषेध और विधेय दोनों एक साथ उपस्थित होते हैं। वह जो जानता है उसमें जीवन और मृत्यु अंधेरा और प्रकाश एक के ही रूप हो जाते हैं। उसमें अस्तित्व और अनस्तित्व एक ही सिक्के के दो पहलू होकर रह जाते हैं।
श्रद्धा को तो ललकारने का कोई उपाय नहीं क्योंकि जब सब ललकार खो जाती हैं, तभी श्रद्धा आती है लेकिन ऐसी श्रद्धा शायद करोड़, दो करोड़, दस करोड़, में एक आदमी के पास होती है, बाकी लोगों के पास सिर्फ विश्वास होते हैं। और सब विश्वास बेमानी हैं। और सब विश्वास श्रद्धा को रोकने वाले हैं। विश्वास का मतलब यह है कि मंजिल पर पहुंचने के पहले हमने मान लिया कि

मंजिल आ गई। और जो आदमी मंजिल पर पहुंचने के पहले मान ले कि मंजिल आ गई उसकी यात्रा रुक जाए तो आश्चर्य तो नहीं। जब मंजिल आ ही गई तो बात खत्म हो गई। आस्तिक इसी भांति रुका हुआ है, ईश्वर को उसने मान ही लिया है जानने की कोई जरूरत नहीं रह गई। नास्तिक भी इसी भांति हुआ रुका है कि उसने भी जान लिया है कि नहीं है, और जो नहीं है उसे खोजने की क्या जरूरत? धार्मिक आदमी मान कर नहीं जीता, धार्मिक आदमी बहुत विद्रोही आदमी है, बहुत रिबेलियस है। धार्मिक आदमी कहता है कि जो मैं नहीं जानता उसके संबंध में कुछ भी न कहूंगा। और जो मैं नहीं जानता उसे जानने की कोशिश करूंगा। और जब तक नहीं जान लेता हूं तब तक मेरा कोई विश्वास नहीं। धार्मिक आदमी मूलतः एग्नास्टिक होता है। धार्मिक आदमी मूलतः दावेदार नहीं होता, रहस्यवादी होता है। वह कहता है जो मुझे मालूम नहीं उसे मालूम करने की कोशिश करूंगा, जानने की कोशिश करूंगा। और जिस दिन वह जान लेता है उस दिन बड़ी कठिनाई में पड़ता है।
बुद्ध एक दिन सुबह एक गांव में प्रवेश किए हैं, और एक आदमी ने आकर बुद्ध से पूछा कि मैं आस्तिक हूं, ईश्वर पर मेरा भरोसा है, मैं आपसे भी पूछना चाहता हूं कि ईश्वर है? बुद्ध ने उस आदमी को नीचे से ऊपर तक देखा और कहा ईश्वर? ईश्वर कहीं भी नहीं है। किस भ्रम जाल में पड़े हो? उस आदमी की जैसे किसी ने जड़ें हिला दीं। वह आदमी कंप गया। बुद्ध आगे बढ़े, दोपहर एक दूसरा आदमी उसी गांव में उनसे मिलने आया और उसने कहा कि मैं नास्तिक हूं और नहीं मानता कि ईश्वर है, आपका क्या ख्याल है? बुद्ध ने कहा ईश्वर को नहीं मानते? पागल तो नहीं हो गए हो, उसके अतिरिक्त और कोई भी नहीं है, वही है। वह आदमी भी सुबह वाले आदमी जैसा कंप गया। लेकिन बुद्ध के साथ एक भिक्षु था आनंद वह बहुत मुसीबत में पड़ गया उसने दोनो उत्तर सुन लिए। अब वह प्रतीक्षा करने लगा कि कब सांझ हो, कब एकांत मिले, मैं बुद्ध को पूछूं कि तुमने क्या किया? सुबह कहा नहीं, दोपहर कहा हां, लेकिन इसके पहले कि रात हो एक आदमी और आया, सांझ को और बुद्ध को कहा कि मुझे कुछ भी पता नहीं है कि ईश्वर है या नहीं। आप कुछ कहेंगे? बुद्ध चुप ही रह गए। उस आदमी ने दो चार बार कहा कि कुछ कहो, लेकिन बुद्ध ने आंखें बंद कर लीं और वे चुप ही बैठे रहे। आनंद और मुसीबत में पड़ गया कि दिन में, उत्तर दिए, शाम को तो उत्तर भी न दिया। रात जब बुद्ध सोने लगे तो आनंद ने कहा पहले सोओ मत अन्यथा मेरी रात भर की नींद हराम हो जाएगी। पहले मुझे बता दो कि असलियत क्या है? बुद्ध ने कहा कौन सी असलियत? आनंद ने कहा सुबह एक आदमी को एक उत्तर, दोपहर दूसरा उत्तर, सांझ को तीसरा उत्तर। मैं मुसीबत में पड़ गया हूं।
बुद्ध ने कहाः वे उत्तर तुम्हें तो नहीं दिए गए, तुमने सुने क्यों? जिसे दिए थे उसके लिए थे। आनंद ने कहाः और आप मुश्किल करते हैं मेरी, मैं शांत था, मुझे सुनाई पड़ गए। और मैं मुसीबत में पड़ गया हूं। बुद्ध ने कहा, मैंने तीनों को एक ही उत्तर दिया है। और वह यह कि तुम मुझसे सुन कर कोई विश्वास लेने आए हो तो मैं तुम्हें विश्वास देने वाला नहीं हूं।
बुद्ध ने कहाः मैंने तीनों को एक ही उत्तर दिया है। और वह अगर यह कि अगर तुम मेरे आधार पर आथारिटी, कोई कमान, कोई आम आदमी के आधार पर कोई विश्वास बनाने आए हो तो मैं विश्वास नहीं बनाने दूंगा, क्योंकि जो विश्वास बना लेता है उसकी यात्रा बंद हो जाती है। और सत्य तक कभी भी नहीं पहुंच पाता। और हम सब विश्वास बनाए हुए लोग हैं। हम शास्त्रों में से विश्वास खोज लेते हैं, गुरुओं में से विश्वास खोज लेते हैं। हम चौबीस घंटे इस तलाश में हैं कि कोई ऐसा विश्वास मिल जाए, जिसके सहारे हम जी लें। हमें सत्य की कोई चिंता नहीं। हमें सहारों की चिंता है। हमें सत्य से कोई संबंध नहीं। हमें सांत्वना चाहिए। हमें सत्य की कोई खोज नहीं। हमें संतोष चाहिए।
संतोषी आदमी संतोष की तलाश में विश्वासों को घेर कर जी लेता है। विश्वास की कोई जड़ नहीं, कोई आधार नहीं, कोई बुनियाद नहीं, विश्वास सिर्फ हमारे भय के आधार पर खड़े होते हैं। हम भयभीत हैं और अपने अज्ञान को स्वीकार करने की सामर्थ्य भी हम में नहीं है। हम इतने कमजोर हैं कि हम यह भी नहीं कह सकते कि हमें ज्ञात नहीं, हमें पता नहीं, हम अज्ञानी हैं, इसको स्वीकार करने के लिए भी बहुत हिम्मत की जरूरत है इतनी हिम्मत हम में नहीं

है। इसलिए हम कोई भी विश्वास पकड़ लेते हैं और ज्ञानी बन जाते हैं, बिना जाने, जानने का मजा आ जाता है। दावेदार हो जाते हैं और समझ लेते हैं कि पहुंच गए। ऐसे पहुंच गए कि बड़े भ्रांति में पड़े हुए लोग विश्वासी हैं। इन विश्वासियों को तो सब तरह से हिला देने की जरूरत हैं ताकि इनकी यात्रा शुरू हो जाए। ताकि ये खोज पर निकल जाएं। तो मैं आपसे कहूंगा कि श्रद्धा को तो तर्क की कोई चुनौती नहीं पहुंचती क्योंकि श्रद्धा आती ही तब है जब तर्कों की चुनौती के पार आदमी चला जाए। लेकिन विश्वासों को बिलीफ को तर्क हिला देते हैं। इसलिए विश्वासी कान बंद करके जीता है कि कोई तर्क सुनाई पड़ न, जाए। इसलिए विश्वासियों के जहां मंडल हैं, और दुकानें हैं वहां उनको समझाया जाता है कि विरोधी की बात मत सुनना, तर्क की बात मत सुनना, कान बंद कर लेना कि कहीं कोई तर्क भीतर से आकर विश्वास को नष्ट न कर दे। लेकिन ऐसे विश्वास की कीमत कितनी है कि जो एक तर्क से नष्ट हो जाती है। ऐसा विश्वास तर्क से भी कमजोर है। ऐसे विश्वास का कोई भी मूल्य नहीं। श्रद्धा का जरूर मूल्य है लेकिन ध्यान रहे, श्रद्धा का मतलब ही कुछ और है। श्रद्धा का मतलब है जो जानने से दृढता जो आती है, जानने से जो मजबूती आती है, जान लेने से जो पैर जमीन पर खड़े हो जाते हैं, जान लेने से जो हिम्मत और साहस आता है। जान लेने से जो आधार और बुनियाद मिल जाती है। अब एक अंधा आदमी हो, वह प्रकाश पर विश्वास कर सकता है, श्रद्धा नहीं कर सकता। अंधा आदमी प्रकाश पर विश्वास कर सकता है, श्रद्धा नहीं कर सकता। असल में अंधा आदमी श्रद्धा करेगा भी कैसे? एक आंख वाले आदमी को प्रकाश पर श्रद्धा होती है, विश्वास नहीं।
इन दोनों में इतना ही फर्क है जो जानता है उसका मानना बहुत और है। वह मानना नहीं है, वह जानना ही है। और जो बिना जाने मानता है वह जानना नहीं है सिर्फ मानना है, अंधेरे में मानी हुई बातों का कोई मूल्य नहीं। यह हमारा देश हजारों साल से इसी तरह के विश्वासों से भरा हुआ है। इन विश्वासों के कारण हम अंधे से अंधे होते चले गए। और इन विश्वासों के कारण हमने आंख खोल कर देखना भी बंद कर दिया कि कहीं कोई विपरीत सत्य न दिखाई पड़ जाए। कहीं ऐसा न हो कि कुछ ऐसा दिखाई पड़ जाए जो हमारे शास्त्र में न हो, तो बड़ी मुश्किल हो जाए। इसलिए हमने विज्ञान की खोज नहीं की। क्योंकि विश्वासी लोग विज्ञान की खोज नहीं कर सकते। विज्ञान की खोज यह बात मान कर चलती है कि संदेह का मूल्य है, विज्ञान की खोज का मौलिक प्रारंभ यही है कि हम संदेह करने में समर्थ हैं। हम संदेह नहीं कर सके इसलिए विज्ञान की खोज नहीं कर सके। हम विश्वास करके जड़ होकर बैठ गए और एक स्टेग्नेंट, एक अवरूद्ध समाज, एक मृत समाज हमने पैदा कर लिया है। और बहुत डर इस बात का है कि हम इतने हजारों साल के विश्वासी लोग हैं कि अगर हम बदलें तो कहीं ऐसा न हो कि विपरीत विश्वास को पकड़ लें। नेक्सलाइट, विपरीत विश्वासी। वह कोई संदेह करने वाला व्यक्ति नहीं है। वह गीता को छोड़ देता है तो कैपिटल को मार्क्स को पकड़ लेता है। और महावीर को छोड़ता है, तो मार्क्स के पैर पकड़ लेता है। हम विश्वासी कौम हैं और खतरा यह है कि इतने परेशान होते हैं पुराने विश्वास से कि इस बार हम नए विश्वास पकड़ लेते हैं। और ध्यान रहे कि पुराने विश्वासों से भी खतरनाक होते हैं नये विश्वास क्योंकि जब तक वे इतने पुराने न हो जाएं तब तक उनसे छूटने का फिर उपाय नहीं हो सकता। वहां रूस में भी यही हुआ। रूस एक विश्वासी कौम और उन्नीस सौ सत्रह तक उसने अंधे की तरह ईसाइयत पर विश्वास किया था। फिर वह अंधापन बदला। आंख नहीं खुली लेकिन अंधेपन ने शक्ल बदल ली। और जहां मस्जिद और मंदिर और जीसस का चर्च था वहां क्रेमलिन के लाल सितारे आ गए। और जहां जीसस और उनके अपोस्टल थे, ल्यूक थे, मार्क थें, सेंट जॉन थे, वहां स्टालिन, लेनिन और मार्क्स आ बैठे हैं। फर्क कुछ भी न हुआ, देवता बदल गए।
और ध्यान रहे, नये देवता खतरनाक सिद्ध होते हैं। क्योंकि उनको मारने में, उनसे छुटकारा पाने में फिर हजारों साल लगते हैं तब उनसे छुटकारा होता है। हमारे देश के सामने भी वही सवाल है। हम विश्वासी कौम हैं यह हमारा सबसे खतरनाक लक्षण है। इसका खतरा यही है कि किसी दिन हम विश्वास बदलें तो कहीं ऐसा न हो कि हम कहीं कोई दूसरा विश्वास पकड़ लें। इसलिए हमें अब बहुत सचेत हो जाना चाहिए इस विश्वास से, और समझ लेना चाहिए कि बिना जाने जो भी पकड़ा जाएगा वह नुकसान पहुंचाता है। बड़ा नुकसान तो यह पहुंचाता है कि

हमारे सत्य की जिज्ञासा अवरुद्ध हो जाती है, बड़ा नुकसान यह पहुंचाता है कि हमारी पूछने की क्षमता क्षीण हो जाती है। फिर हम प्रश्न नहीं उठा पाते। और बड़ा नुकसान यह पहुंचाता है कि सत्य की जो रोज दैनंदिन खोज है, वह समाप्त हो है। जब कि खोज रोज जारी रहे तो ही जीवन जारी रहता है। नदी बहती रहे ताेही सागर तक पहुंचती है, कोई तालाब सागर तक नहीं पहुंचता। तालाब बड़ा विश्वासी है वह जहां रुका है उसी को सागर समझ लिया है फिर जानने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। नदी बड़ी संदेहग्रस्त है। वह भागती है, खोजती है, खोजती है, पुकारती है, दौड़ती है, तोड़ती है मार्गों को अनजान अपरिचित रास्तों पर भटकती है और सागर तक पहुंचती है। और जब तक नहीं पहुंच जाती तब तक मानती नहीं। मैं उस व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं जिसका चित्त नदी की भांति है। जो खोज पर निकला है। उस आदमी को मैं मुर्दा कहता हूं, और मुर्दा आदमी धार्मिक नहीं हो सकता। जो तालाब की तरह बंद होकर बैठ गया हो, जिसने समझा कि सब पा लिया गया है, सब विश्वास कर लिया गया है, अब और कुछ खोजने को नहीं है। उन्हीं मित्र ने एक सवाल और पूछा हैः उन्होंने पूछा है कि सनातन सत्यों का खंडन करने से क्या लाभ हो सकता है? उन्होंने पूछा है कि आज का नया विचार भी कल पुराना हो जाएगा, तो फिर पुराने विचार को छोड़ने से फायदा क्या है?
पहली तो बात यह है कि जो सत्य सनातन है उसे आज तक कभी शब्दों में प्रकट नहीं किया गया है। और जो भी शब्दों में प्रकट हो जाता है वह सामयिक हो जाता है। सनातन नहीं रह जाता। जो इटर्नल है, वह जो शाश्वत है, वह शब्द के प्रकट होने के बाद और जो भी हम प्रकट करते हैं--भाषा में, शब्द में, वह सामयिक हो जाता है, युगीन हो जाता है, वह शाश्वत नहीं रह जाता। वेद भी, बाइबिल भी, गीता भी, कुरान भी, मैं जो कह रहा हूं वह और भविष्य में भी कोई आदमी जो कुछ कहेगा वह, वह सभी युगीन सत्य हैं शाश्वत नहीं। निश्चित ही जिन्होंने युगीन सत्य कहे हैं उन्होंने सनातन सत्य को जाना। लेकिन जो जाना जाता है वह कहा नहीं जाता। कहते ही युगीन हो जाता है, जो जाना जाता है वह कुछ और है, और जो कहा जाता है वह कुछ और है।
रवींद्रनाथ मर रहे थे। मरणशय्या पर थे और एक बूढ़े मित्र ने जाकर उनको कहा आप तो आनंदित हों, अनुगृहीत हों, परमात्मा को धन्यवाद दें। आपको जो गाना था वह आपने गा लिया, जो कहना था वह कह दिया। रवींद्रनाथ ने छह हजार गीत लिखे। उस आदमी ने कहा कि इतने ज्यादा गीत किसी आदमी ने कभी नहीं लिखे, पूरी पृथ्वी पर नहीं लिखे। शैली को जिसे यूरोप में महाकवि कहते हैं उसके भी दो हजार गीत ही हैं। आपने छह हजार गीत लिखे। सब गीत संगीत में बांधे जा सकते हैं, ऐसे गीत। आप महाकवि हैं। जब वह यह कह रहा था तब उसने सोचा कि मैं बड़ी प्रशंसा कर रहा हूं लेकिन जब रवींद्रनाथ की तरफ देखा तो बहुत हैरान हो गया। उनकी आंख से आंसू झर रहे थे। रवींद्रनाथ ने कहा मत कहो, ये बातें मत कहो क्योंकि मैं जो गाना चाहता था वह अभी तक गा ही नहीं पाया। अभी तो सिर्फ साज बिठा पाया था, अभी संगीत कहां बजा। अभी तो सिर्फ ताल ठोंक-पीट कर कुछ बिठाए थे तार। अभी गा कहां पाया था। और ये तो विदा के क्षण आ गए। और अंत में उन्होंने कहा कि मैं जानता हूं मुझे अनंत समय मिले तब भी मैं उसे न गा पाऊंगा जिसे मैं भीतर अनुभव करता हूं। क्योंकि जब भी मैने कुछ अनुभव किया और गाया। गाते से ही पता लगा कि जो अनुभव किया था, वह शब्द में जाते ही कुछ और हो गया है कोई सनातन सत्य मनुष्य की भाषा में आज तक उतर नहीं सका। कभी भी उतर नहीं सकेगा।
सनातन का अर्थ ही यह है, शाश्वत का अर्थ ही है यह कि हम उसे जान सकते
हैं लेकिन कह नहीं सकते। कहना शामिल हो जाता है। सब भाषा समय की भाषा है। सब प्रतीक समय के प्रतीक हैं। सब कहना समय का कहना है। सनातन सत्य कहीं भी नहीं है, जिनको आप पकड़ कर बैठ जाएं। सनातन सत्य जरूर है जिसे अगर पाना हो तो शब्दों की पकड़ छोड़ देनी पड़ती है। जिसे भी सनातन सत्य तक जाना हो उसे और सभी सत्यों से, शास्त्रीय सत्यों से छुटकारा पाना होगा। शास्त्रीय सत्यों में उलझा हुआ आदमी कभी भी सनातन सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता। शब्दों और सिद्धांतों में उलझा हुआ चित्त इतना निर्विकार नहीं हो पाता जो उस निराकार को जान ले। शब्दों का भी अपना आकार है, हर शब्द का अपना आकार है, और जो चित्त शब्दों से भरा है वह कभी आकार से ऊपर नहीं उठ पाता।

शायद आपको पता न हो कि हर शब्द की अपनी एक छवि है। अगर आप एक पतले से कागज पर रेत के बहुत बारीक कण बिछा दें, और नीचे से शब्द करें, नीचे से कहें राम, तो उस पतले कागज पर एक खास तरह की पैटर्न लहरों की, एक खास तरह की जाली उस रेत में बन जाएगी। आप नीचे से कहें अल्लाह तो दूसरे तरह की जाली बनेगी। आप नीचे से कहें ओम तो दूसरी तरह की जाली बनेगी। वे जो रेत के कण हैं तत्काल एक पैटर्न एक ढांचे में बन जाएंगे। हर शब्द की अपनी ध्वनि है, हर शब्द का अपना रूप है, हर शब्द का अपना आकार है, हर शब्द का अपना रंग भी है। और हर शब्द हमारे भीतर जगह को घेरता है। जितने ज्यादा शब्द भीतर हों, चाहे वे कितने ही पुनीत शास्त्रों से आए हुए हों। और चाहे कितने ही पवित्र ग्रंथों से लिए गए हों उनके कारण भीतर निराकार का दर्शन नहीं हो पाता। और वह जो सनातन है, वह निराकार है। सब शब्द छोड़ कर जो शून्य में प्रवेश करता है, वह ही केवल सनातन सत्य को जान पाता है लेकिन जिसे हम शून्य में जानते हैं उसे अगर हम शब्द में कहने जाएंगे तो विकृति होनी अनिवार्य है। यह ऐसा ही है, जैसे कि समझें-आप मेरे घर आएं और, मैं वीणा पर कुछ बजाऊं और आप सुन कर लौटें, और आप ऐसे लोगों के पास पहुंच जाएं जो बहरे हों, और आप उनसे कहें कि वीणा बहुत आनंदपूर्ण थी, बहुत रस आया, संगीत था, बहुत ध्वनि थी, बहुत सुंदर, प्राण खिल गए। बहुत सुंदर फूल खिल गए वह कुछ भी न सुनें। वे आपसे कहें कि आप चित्र बना कर बता दो तो थोड़ा हम समझ पाएं। बहरे लोग उनके पास आंखें हैं, मैंने जो आपसे संगीत में बजाया अगर आप कागज पर चित्र बना कर बताएं तो जो हालत हो जाए वही हालत जिसे हम शून्य में जानते हैं, उसे शब्द में कहने में निरर्थक हो जाती है। माध्यम बदल जाते हैं यह कोई भी सनातन सत्य आज तक नहीं कहा गया कहने की बहुत बार कोशिश की गई है। कम्युनिकेट करने के बहुत प्रयास किए गए हैं लेकिन सनातन सत्य नहीं कहा गया, और जिन्होंने भी कहा है उन्होंने भी यह साफ से कहा है कि जो कहना था वह शब्दों में नहीं कहा जा रहा है। जो कहना था वह प्रवचन से उपलब्ध नहीं हो सकता है। न प्रवचन में लब्ध। वह नहीं मिलेगा उपदेश से, नहीं मिलेगा शब्द से।
लाओत्सु ने जिंदगी भर कोई किताब नहीं लिखी। क्योंकि जब भी लोगों ने कहा कि जो तुमने जाना है वह लिख दो तो उसने कहा कि जो मैंने जाना है उसे जब लिखने जाता हूं तो नहीं लिखा जाता। और जो लिखा जाता है वह मैंने जाना नहीं है। इस झंझट में मैं न पडूंगा। उस समय के लोग नहीं माने। लाओत्सु देश छोड़ कर पहाड़ की तरफ जा रहा था, तो देश के सम्राट ने लाओत्सु को चुंगी नाके से पकड़वा लिया और उसने कहा कि जब तक लिख कर न जाओगे तब तक हम जाने नहीं देंगे। मजबूरी में लाओत्सु ने एक छोटी सी किताब लिखी, किताब का नाम हैः ताओतेह किंग। उस छोटी सी किताब में थोड़ी सी बातें लिखी हैं, और उन थोड़ी सी बातों में भी सर्वाधिक बार-बार जो बात लिखी है वह यह है कि जो मैं कह रहा हूं उस पर विश्वास मत कर लेना। क्योंकि जो मैंने जाना वह कुछ और है। जो पहली बात उस किताब में लिखी है वह यह लिखी है कि सत्य कहा नहीं जाता और जो कहा जा सकता है वह कहने के साथ ही सत्य नहीं रह जाता। सनातन सत्य अगर आपके हाथ में होते तब तो उन्हें छोड़ने की कोई जरूरत ही न थी।
आपके हाथ में सनातन सत्यों के नाम पर केवल सामयिक सत्य हैं, वे हो सकते हैं कि कोई दो हजार साल पहले के समय के हों। कोई पांच हजार साल पहले के समय के हों। कोई और दस हजार साल समय के पहले के हों इससे कोई भी फर्क नहीं पड़ता लेकिन किसी समय की धारा में प्रकट हुए शब्दों का हमारे पास संग्रह है। चाहे उसका नाम हम कुछ भी देते हों, चाहे हम वेद कहें चाहे हम बाइबिल कहें, चाहे गीता, चाहे कुरान हम कोई भी नाम दें हमारे पास समय शून्य से उतरी हुई, समय की धारा में जो शब्दों की भाषा में झलक आई है, आकृति आई है वही हमारे पास है। यह ऐसा ही है जैसे कि मैं किसी नदी के किनारे खड़ा हो जाऊं और पानी की झलक, पानी के दर्पण में मेरा चित्र बने और उस चित्र को, पानी में बने हुए प्रतिबिंब को समझ लूं कि मैं हूं और उसी को पकड़ कर बैठ जाए। समय के बाहर, बियांड टाइम जो सत्य हैं उनका समय की धारा में प्रतिबिंब बनता है। हम उन्हीं प्रतिबिंबों को पकड़ लेते हैं। उन प्रतिबिंबों को पकड़ कर हजारों वर्षों तक बैठे रह जाते हैं। हाथ में कुछ नहीं रह जाता सिर्फ, पानी की लहरें होती हैं, कोई भी प्रतिबिंब नहीं होता। उन्हीं प्रतिबिंबों को पकड़ कर यदि कोई सोचता हो कि हमारे पास तो पुराने

सत्य हैं हम नये की खोज क्यों करें तो उससे ज्यादा गहरी भ्रांति में और कोई न पड़ेगा। उससे ज्यादा गहरे असत्य में कोई न पड़ेगा। असत्य में पड़ने की सबसे सरल तरकीब एक है, और वह है कि यह मान लेना कि सत्य हमारे पास सनातन और परंपरा से चले आ रहे हैं हम उन्हीं को पकड़ कर जी लेंगे। खोज की कोई भी जरूरत नहीं। ध्यान रहे, प्रत्येक व्यक्ति को जिसने सत्य को जाना है उसे पुनः-पुनः खोजना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति को सत्य निजी तौर से खोजना पड़ता है।
सत्य की कोई परंपरा और ट्रेडीशन नहीं होती, सत्य की कोई हेरीटेज और वसीयत नहीं होती, सत्य कोई हेरीटेज में नही मिलता है, कि बाप मरे और बेटे को लिख जाए कि मेरे सत्यों की मालिकयत अब तेरे हाथ। धन मिल सकता है बाप से क्योंकि धन आदमी की बनाई हुई व्यवस्था है, मकान मिल सकता है बाप से, क्योंकि मकान आदमी का बनाया हुआ इंतजाम है। सत्य नहीं मिलते बाप से क्योंकि सत्य आदमी का बनाया हुआ इंतजाम नहीं है। सत्य प्रत्येक को स्वयं ही पाने होते हैं इसलिए जब मैं यह कह रहा हूं कि खोज करें सत्य की तब मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप कोई नया सत्य खोज लेंगे। खोजेंगे तो आप वही जो सदा से है। जो कृष्ण ने खोजा होगा, जो क्राइस्ट ने खोजा होगा, जिसके दर्शन मोहम्मद को हुए होंगे, जिसमें जरथरुस्त्र ने झांका होगा। वही झांकेंगे आप लेकिन जब झांकेंगे तो सदा अपनी निजी खिड़की से ही झांकना पड़ेगा। मोहम्मद की खिड़की से खड़े होकर झांकने का कोई उपाय नहीं। इसलिए मुसलमान होना बेमानी है। कृष्ण की खिड़की से खड़े होकर झांकने का कोई उपाय नहीं है, इसलिए हिंंदू होना नासमझी है। महावीर की खिड़की पर खड़े होकर झांकने का कोई उपाय नहीं इसलिए जैन होने से कोई तृप्त हो जाए तो नासमझ है। सत्य अपने ही खोजने पड़ेंगे। सत्य तो वही है, सत्य तो वही है लेकिन हर बार अपनी ही आंख से उसे झांकना पड़ता है। अपनी ही आंख खोल कर उसे पहचानना पड़ता है। ना हम दूसरे की जिंदगी जी सकते हैं, न दूसरे की मृत्यु मर सकते हैं और न हम दूसरे के सत्यों को जान सकते हैं। निश्चित ही जब हम भी जानते हैं तो हमें पता चलता है कि यही तो औरों ने भी जाना। लेकिन इसके पहले यह भी पता नहीं चलता। जिस दिन आप जानेंगे उस दिन आप कह सकेंगे कि ठीक है किसी ने भी जो जाना होगा वही मैंने भी जाना लेकिन इसे उलटा नहीं कह सकते कि जब किसी और ने जान लिया तो मुझे जानने की क्या जरूरत मैं उसी को मान लूंगा और जान लूंगा ऐसा नहीं। शास्त्र आपकी गवाही बन जाएंगे। जिस दिन आप जानेंगे उस दिन सारी दुनिया के शास्त्र गवाही देंगे कि ठीक पहुंच गए, उस दिन आप शास्त्रों को समझ पाएंगे कि मैं भी वहीं खड़ा हूं जहां इस शास्त्र को कहने वाला खड़ा रहा होगा लेकिन उसके पहले कोई भी उपाय नहीं। उसके पहले शास्त्रों से कुछ भी मिल नहीं सकता है।
मैं आपसे पूराने सत्य छोड़ने को नहीं कह रहा हूं, सत्य न तो पुराना होता है और न नया होता। सिर्फ असत्य पुराने होते हैं और असत्य नये होते हैं। सत्य तो सदा होता है पुराने-नये का कोई संबंध नहीं है। लेकिन जो सदा होता है उसे सदा, सदैव स्वयं ही जानना पड़ता है। सत्य एक निजी अनुभव है। अत्यंत निजी अनुभव है जैसे प्रेम एक निजी अनुभव है। फिर भी प्रेम में तो दो की जगह होती है। सत्य में दो की भी जगह नहीं होती। सत्य में आप निपट अकेले रह जाते हैं। एक आदमी जानता था। आपके पिता ने भी प्रेम जाना होगा, उनके पिता ने भी प्रेम जाना, मेरे पिता ने भी प्रेम जाना। परंपराओं से लोग प्रेम जान रहे हैं, लेकिन उन सबके प्रेम जानने की वजह से आप यह न कहेंगे कि जब इतने लोग प्रेम जान चुकें तो मैं प्रेम किसलिए जानूं? मैं लैला-मजनू की किताब पढ़ लूंगा। मैं शीरी-फरिहाद को छाती से बांध कर रख लूंगा। मैं प्रेम को क्यों जानने जाऊं, जब सारे लोग जान चुके। सनातन सत्य तो अब मुझे जानने की क्या जरूरत है लेकिन शीरी-फरिहाद को घोलकर भी पी जाएं तो भी प्रेम का कोई पता नहीं चलेगा। प्रेम को फिरसे जानना पड़ेगा, प्रत्येक व्यक्ति को जानना पड़ेगा। सत्य भी प्रेम जैसा है। थोड़ा सा फर्क है प्रेम को जानने में फिर भी दो व्यक्ति होते हैं। वह निजता भी दो की है।
प्रेम दो के बीच एक बहाव है। सत्य और भी अकेला है वह दो के बीच बहाव नहीं है। सत्य एक का ही बहाव है। एक का नितांत अकेलापन है। वह टोटली अलोन, एकदम अकेला। एकदम अकेला जब कोई रह जाता है शून्य में तब वह जिसे जानता है

वह सत्य है, वह सनातन है। उस सनातन सत्य के लिए ही मैं कह रहा हूं। मैं किसी नये सत्य के लिए नहीं कह रहा हूं और इसलिए किसी पुराने सत्य के खिलाफ नहीं कह रहा हूं। मैं सनातन सत्य के लिए ही कह रहा हूं। उस सनातन सत्य के खिलाफ वे ही सत्य खड़े हो गए हैं। जो कभी उस सनातन सत्य से ही आए हैं। कभी उस सनातन सत्य के अनुभव से ही जो शब्द निकले थे उनको ही हम पकड़ कर बैठ गए। और अब हम शब्दों में ही जी रहे हैं। शायद आदमी की जिंदगी में भटकाव का जो सबसे बड़ा मार्ग हो सकता है वह शब्द है। और शब्द इस भांति भटका सकते हैं हम भूल ही जाएं कि शब्दों के बाहर भी कोई जगत। हम शब्दों में ही जीते, उठते, बैठते, खाते-पीते, हमारे चारों तरफ शब्दों की एक भारी दीवाल है। हम उस के पार कभी नहीं उठ पाते। हम उस दीवाल को कभी पार नहीं कर पाते। हर आदमी शब्दों की एक गहरी पर्त में दबा हुआ जीता है और मर जाता है। इन शब्दों से थोड़ा ऊपर उठना पड़ेगा। क्योंकि जो है, वहां कोई सत्य नहीं, वहां शांति है। जो है वहां कोई सिद्धांत नहीं, वहां परम जीवन है। लेकिन हमारी कठिनाई है। हमारी कठिनाई यह है कि हम शब्दों में बात करते हैं, शब्दों में संवाद करते हैं, मजबूरी है इसके सिवा कोई उपाय भी नहीं। लेकिन यह शब्दों में बात करते-करते तब शब्द ही हमारे पास रह जाते हैं, और हम एक कंप्यूटर हो जाते हैं जिसके पास शब्द ही शब्द हैं और भीतर कुछ भी नहीं रह जाता। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप शब्दों को छोड़ कर गूंगे हो जाएं, मैं कह सिर्फ इतना रहा हूं कि शब्दों के बाहर भी आपके अस्तित्व का कोई द्वार खुला रहे उसी द्वार से सनातन उतरता है। उसी द्वार से सत्य उतरता है। और जिस दिन सत्य उस द्वार से आता है उस दिन आप भी भलीभांति जानते हैं कि इसे शब्दों में कहने का कोई भी उपाय नहीं।
सुना है मैंने कि फरीद तीर्थयात्रा पर निकला है। और निकलता है कबीर
के आश्रम के पास से। तो फरीद के साथी उससे कहते हैं कि हम कबीर के आश्रम में रुक जाएं दो दिन। आप दोनों की बातें होंगी तो हमें सुन कर बड़ा आनंद होगा। फरीद कहता है कि रुकेंगे जरूर। शायद बातें भी हों लेकिन तुम सुन न पाओगे। जो फरीद के प्रेम को समझ नहीं पाते, वे सोचते हैं कि जब बातें होंगी तो हम जरूर ही सुन पाएंगे। और जब कबीर के आश्रम में खबर पहुंचती है कि फरीद गुजर रहा है यहां से तो कबीर के भक्त और प्रेमियों ने उनसे कहा कि हम फरीद को रोक लें, दो-चार दिन वह यहां विश्राम करें, आप दोनों की बातें होंगी तो हमारे लिए तो स्वर्ग का द्वार खुल जाएगा। कबीर कहते हैं कि बातें? जो बोलेगा वह नासमझ होगा। फिर फरीद आता है, कबीर के आश्रम में रुकता है। वे गले मिलते हैं, वे हंसते भी हैं वे रोते भी हैं, वे पास भी बैठते हैं घंटों, लेकिन कुछ बात नहीं होती। फिर दो दिन गुजर जाते हैं। और भक्तों पर जैसी मुसीबत गुजरी होगी वह हम समझ सकते हैं। वे बेचारे बैठे हैं प्रतीक्षा में, प्रतीक्षा में घंटे लंबे मालूम होने लगे, घड़ियां गुजरना मुश्किल हो गईं। तो फरीद और कबीर बोलते नहीं, कभी एक दूसरे की तरफ देख कर हंसते हैं, कभी एक दूसरे की तरफ देख कर रोते हैं, कभी एक दूसरे को गले मिल जाते हैं, कभी एक दूसरे का हाथ, हाथ में ले लेते हैं, नहीं बोलते। फिर दो दिन भी गुजर गएं। फिर विदा भी हो गई, विदा होते ही कबीर के शिष्यों ने कबीर को पकड़ा और कहा कि यह क्या किया दो दिन हमारी मुसीबत कर दी, बोले क्यों नही। कबीर ने कहाः अगर मैं बोलता तो मैं नासमझ हो जाता, क्योंकि जो मैं जानता हूं वह बोला नहीं जा सकता है और उसे फरीद भी जानता है। अब उससे अगर मैं कुछ भी बोलता तो वहगलत होता। तुमसे मैं कुछ बोलता हूं वह थोड़ा-बहुत गलत होता ही है। लेकिन चल जाता है क्योंकि तुम्हें सही का कुछ भी पता नहीं। और तुमसे बिना बोले नहीं चलेगा। फरीद से बिना बोले भी चल गया। हमने एक दूसरे को समझा, हम एक दूसरे से बोले, चुप्पी में, मौन में। फरीद के शिष्यों ने गांव से बाहर होते ही फरीद को कहा कि आपने यह क्या किया? यह कैसा अन्याय। यह हम से कैसी ज्यादती, दो दिन गुजारने मुश्किल हो गए। यह कैसी ऊब पैदा कर दी, आप बोले क्यों नहीं? फरीद ने कहा कि मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि बोलेंगे जरूर लेकिन तुम सुन न सकोगे। एक और बोलना भी है जो शब्दों के बिना होता है। और ऐसे कबीर जैसे आदमी के पास, जो निःशब्द में जीता हो उसे शब्द में बुलवा कर क्या तुम मेरी फजीहत करवाते? जिसने असली सूरज को देखा है, उसके सामने मिट्टी के दीए रखने से क्या कुछ मतलब था? और जिसने असली सोना देखा है उसके सामने पीतल के

गहने प्रकट करने से क्या कुछ मेरी अमीरी प्रकट होती। नहीं सत्य आज तक कहा नहीं गया है। सत्य की जगह गैप खाली जगह छूट गयी।
इसलिए अगर असली शास्त्र पढ़ना हो तो जहां-जहां अक्षर हो वहां-वहां छोड़, जहां-जहां खाली जगह हो वहां-वहां पढ़ लें बिटवीन द लाइन्ज, लकीरों के बीच में, शब्दों के बीच में जहां खाली जगह हो वहां जरा गौर से देखना, शायद वहां सत्य मिल जाए। शब्दों में सत्य नहीं मिलेगा। वहां सिर्फ आड़ी-टेढ़ी लकीरें हैं, स्याही से खींची गई। कोरे कागज में शायद मिल जाए, भरे कागज में न मिलेगा। कोरे कागज में शायद इशारा हो, भरे कागज में कोई इशारा नहीं है। खाली जगह में खोजना क्योंकि भीतर भी वह खाली जगह, कोरे मन को उपलब्ध होता है।
इसलिए जिस मित्र ने यह पूछा है-- मैं किन्हीं नये सत्यों के लिए नहीं
कह रहा हूं, किन्हीं पुराने सत्यों के खिलाफ नहीं कह रहा हूं। पकड़े गए सत्य, असत्य हो जाते हैं उनके खिलाफ कह रहा हूं। जाने गए सत्य ही सत्य होते हैं उनके पक्ष में कह रहा हूं। सनातन को जानना हो तो सामयिक से मुक्त होने की जरूरत है।

ये मादक द्रव्य, नशीली चीजें, शराब आदमी को शैतान बना देती हैं। तो आप उनके विरोध में क्यों कुछ नहीं बोलते? यह सवाल महत्वपूर्ण है। इसे थोड़ा समझना उपयुक्त है।

पहली बात तो यह समझना उपयोगी है कि आदमी बेहोश क्यों होना चाहता है?
और ऐसा कोई युग नहीं हुआ जब आदमी बेहोश न होना चाहा हो। चाहे वेद के युग का सोमरस हो, चाहे शराब हो, गांजा हो, अफीम हो, भांग हो, या आधुनिक युग का मैस्कलीन हो, एल एस डी हो, मारीजुआना हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। आदमी बेहोश क्यों होना चाहता है? ठेठ वैदिक ऋषियों से लेकर एल्डुअस हक्सले तक आदमी बेहोश क्यों होना चाहता है? जरूर आदमी की होश की जिंदगी सुखद नहीं है। आदमी की होश की जिंदगी वेदनापूर्ण है। आदमी जहां जीता है वहां कष्ट हैं, पीड़ाएं हैं। आदमी जैसे जीता है, वहां दुख और दुख और जहर और जहर है। आदमी जैसा है वहां कांटें ही कांटे हैं। इस सत्य को भूलने की जरूरत आदमी को सदा से मालूम होती रही। भूलने को उसने बहुत से उपाय खोजे। रासायनिक तरकीबें खोजी हैं भूलने की। धार्मिक तरकीबें खोजी हैं भूलने की। शारीरिक तरकीबें खोजी हैं भूलने की, मानसिक तरकीबें खोजी हैं भूलने की। बहुत तरह की तरकीबें खोजी हैं। एक आदमी गांजा पीकर भूल जाता है, उस जिंदगी को, जहां वह था। उन लोगों का, जिनसे संबंधित था। उन बातों का, जो उसकी छाती पर पत्थर बन गईं। शराब पीकर भूल जाता है उस पुस्तक, व्यापार को, दुकान को, बाजार को, जो उसके प्राणों में तीरों की तरह छीद गए। अफीम खाकर भूल जाता है उस पत्नी को जिसके साथ सोचा था कि एक स्वर्ग बन जाएगा, लेकिन नरक बन गया। मेस्कलीन ले लेता है, एल एस डी ले लेता है, और हजार तरकीबें हैं जिनमें वह अपने को भुला देता है। थोड़ी देर को वह नहीं हो जाता है। और जैसे जैसे सभ्यता बढ़ी है वैसे-वैसे यह भुलाने की आकांक्षा तीव्र हुई है। लेकिन कुछ लोग हैं जो बिना इसको समझे कहेंगे कि मादक द्रव्य बंद कर दिए जाएं। मैं उन लोगों में से नहीं हूं। और मैं मानता हूं कि उनकी दृष्टि अवैज्ञानिक है। मैं मानता हूं कि जिंदगी में दुख कम हों, मैं मानता हूं कि जिंदगी में आनंद हो। मैं मानता हूं कि जिंदगी में रस के द्वार खुलें, तो दुनिया से मादकता अपने आप क्षीण हो जाएगी। मैं यह नहीं मानता हूं कि हम मादक द्रव्य बंद कर दें तो दुनिया में रस और आनंद बढ़ जाएगा। हां, इतना ही हो सकता है, कि शराब न मिले तो लोग स्प्रीट की बोतलें पी लें और मर जाएं। आदमी जैसा है वैसा याद करने योग्य नहीं है। मेरे लिए, इसलिए आदमी कैसा हो यह सवाल है, जिसे भूलने की जरूरत न रह जाए।
ध्यान रहे, अगर आप आनंदित हैं तो आप कभी भी भूलना नहीं चाहेंगे। जब आप दुखी हैं, तभी आप भूलना चाहते हैं। आप भूलना चाहते तभी हैं जब कुछ चीजें हैं जिनसे आप पीठ फेर लेना चाहते हैं। वह कुछ भी हो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता, जिंदगी ऐसी बनाने की जरूरत है और आदमी की जिंदगी को ऐसे नियम और ऐसी व्यवस्था और ऐसी दिशा देने की जरूरत है कि जिंदगी में इतना रस और इतना

आनंद हो सके कि जो भूले जिंदगी को वह अपने आप नासमझ सिद्ध हो जाए। वह खुद की आंखों में नासमझ सिद्ध हो जाए। लेकिन जिंदगी हम ऐसी नहीं बना पाते हैं। उलटे हम जिंदगी में ये भुलाने की जो तरकीबें हैं, चाहते हैं कि कोई कानून इन तरकीबों को रोके। कोई कानून इनको नहीं रोक पाएगा। क्योंकि आदमी की जरूरत जैसा आज आदमी है उसकी यह जरूरत है। तब हजारों साल की शिक्षाएं, हजारों साल के धर्मगुरुओं के उपदेश कुछ मतलब नहीं ला पाते। कुछ प्रयोजन हल नहीं होता। कुछ लोग चिल्ला-चिल्ला कर कहे चले जाते हैं कि पाप है, नरक चले जाओगे, कुछ लोग पाप को मजे से लिए चले जाते हैं और नरक की बेफिकर यात्रा करते रहते हैं। उनके चिल्लाने से कोई फर्क नही पड़ता।
जरूर आदमी की जरूरत कहीं ज्यादा गहरी है कि वह नरक से भी भयभीत नहीं होता, और पाप से भी भयभीत नहीं होता। और फिर कभी उन धर्मगुरुओं की पूरी बातों को सुनें तो बड़ी हैरानी होगी। वे धर्मगुरु यहां तो कहते हैं लोगों से कि शराब मत पीना। लेकिन बहिश्त में शराब के चश्मे बहा देते हैं। वे कहते हैं कि बहिश्त में स्वर्ग में शराब के झरने बह रहे हैं। और यहां एक चुल्लू शराब के लिए नरक भिजवा रहे हैं, तो देवताओं की क्या हालत हुई होगी अब तक, जहां शराब के चश्में बह रहे हैं? और उसी स्वर्ग में जाने के लिए बिचारा एक चुल्लू शराब छोड़ रहा है आदमी कि किसी तरह वहां पहुंच जाए जहां झरने बहते हैं। यहां वे धर्मगुरु समझा रहे हैं कि स्त्री से बचना और वहां वे समझा रहे हैं कि स्वर्ग में जो अप्सराएं हैं वे सोलह साल से ज्यादा की नहीं होतीं। उन की उम्र सोलह साल पर रुक जाती है। और उन्हीं अप्सराओं को पाने के लिए यहां स्त्रियों से भागना पड़ेगा, बचना पड़ेगा। यह सब क्या पागलपन है? वही प्रलोभन जिसे यहां रोक रहे हो, वही प्रलोभन वहां दे रहे हो। जरूर आदमी की जरूरत बहुत गहरी साजिश मालूम पड़ती है। वे तुम्हारे स्वर्ग में भी न जाएंगे अगर वहां शराब के चश्में न हों और अगर वहां अप्सराएं सोलह से ऊपर बढ़ जाती हों तो वे कहेंगे कि ऐसे स्वर्ग में रहने से तो हम नरक में जाना ही पसंद करते हैं। धर्मगुरुओं को भी पता है कि आदमी की बुनियादी जरूरते क्या हैं। लेकिन उन बुनियादी जरूरतों को समझने की चिंता नहीं है उन्हें। ऐसा लगता है कि आजतक आदमी की बुनियादी जरूरतों को समझने की सहानुभूति ही नहीं दिखलाई गई है। आदमी की बड़ी जरूरत तो यह है कि उसकी जिंदगी आनंद की एक धारा होनी चाहिए। दुख की एक धारा नहीं।
और जब तक दुख की धारा है तब तक वह किसी तरह का नशा खोजे तो क्षम्य है अपराधी नहीं। और जबतक हम ऐसी जीवन की व्यवस्था नहीं बना सकते जहां आदमी का जीवन सुख और आनंद और नृत्य हो जाए तब तक मैं समझता हूं कि बजाय बंदी के, सरकारों को कोशिश करनी चाहिए कि अच्छी शराब बनाने की। ऐसी शराब बनाने की, जो लोगों के स्वास्थ्य को नुकसान न पहुंचाए। ऐसी शराब बनाने की की जो लोगों के ऊपर हैंग-ओवर न लाती हो। ऐसी शराब बनाने की जों उनके लिए स्वास्थ्यप्रद हो जाए। ऐसी शराब बनाने की जो उनको बीमारियों में न डालती हो, और ऐसी शराब बनायी जा सकती। जब आदमी चांद पर पहुंच सकता है और ये बकवास की बातें हैं कि ऐसी शराब नहीं बनाई जा सकती।
आज विज्ञान की इतनी समझ है कि हम इस तरह की शराब बना सकते हैं, बल्कि
सच तो यह है कि इस तरह के मादक द्रव्य खोज लिए गए हैं। लेकिन दुनिया में जिनके शराब के व्यापार हैं वे उन द्रव्यों को बाजार में आने देने के लिए राजी नहीं हैं। क्योंकि शराब के व्यापार का क्या होगा? सच बात यह है कि एल. एस. डी. या मैस्कलीन बहुत ही निर्दोष मादक द्रव्य हैं, बहुत इनोसेंट, जिनसे सच में ही शायद ही कोई थोड़ा-बहुत नुकसान पहुंचता हो। वह नुकसान भी काटा जा सकता है, लेकिन दुनिया भर की सारी हुकूमतें उनके खिलाफ हैं। और जो आदमी उनके प्रयोग कर रहे हैं उनको सजाएं दी जा रही हैं और जेलों में डाला जा रहा है। क्योंकि डर इस बात का है, दो तरह के डर, एक तो शराब बेचने वालों को डर है, और एक शराब के खिलाफ सिद्धांत बेचने वालों को डर है। दो डर हैं-एक तो शराब के कारखानेदारों को डर है अगर कोई ऐसी शराब निकल आए जो स्वास्थ्यप्रद हो, आनंददायी हो, और जिसमें शराब की कोई भी बूंदें और गलतियां और बुराइयां न हों, तो शराब के इस सुव्यापी व्यापार का क्या होगा? और दूसरा डर है धर्मगुरुओं को कि अगर ऐसा नशा निकल आए जिसमें कोई नुकसान न हो, तो फिर हम किस शराब के खिलाफ बातें करेंगे? और लोगों को किस शराब के

खिलाफ समझाएंगे? और लोगों को किस शराब के खिलाफ व्रत दिलवाएंगे? अनव्रत आंदोलनों का क्या होगा? बहुत मुश्किल हो जाएगी। धर्मगुरु भी खिलाफ हैं कि ऐसी कोई चीज नहीं खोजी जानी चाहिए। और भी एक कारण है कि ये जो लोग अपने को भूलना चाहते हैं यही लोग मंदिरों-मस्जिदों में भी आते हैं। ये अपने को भूलने वाले लोग अगर नये ढंग के हुए तो सिनेमा जाते हैं। और अगर जरा पुराने ढंग के हुए तो मंदिर और मस्जिद जाते हैं। जो अपने को भूलना चाहता है वह कई तरह की तरकीबें खोजता है। मंदिर जाकर कोई आदमी भजन-कीर्तन, ताल-मंजीरा बजाने लगता है और कोई आदमी फिल्म पर चलती हुई तस्वीरें देख कर अपने को भुला देता है। ये दो ढंग हैं पुराने-नये। कोई आदमी रामलीला देख अपने को भुला लेता है। कोई आदमी जाकर फिल्म देख आता है। कहानी वही है वही ट्रायंगल, वही प्रेम का झगड़ा, वही एक स्त्री और दो आदमियों के बीच तनाव, वही फिल्म में हो रहा है वही रामलीला में हो रहा है। लेकिन पुराने ढंग का आदमी धार्मिक मालूम पड़ता है और नये ढंग का आदमी अधार्मिक मालूम पड़ता है। दोनों की तलाश एक है। दोनों कहीं जाकर किसी बात में अपने को भूल जाना चाहते हैं।
यह जो भूल जाना है, मैं इसे सहानुभूति से देखता हूं और मैं मानता हूं
कि अभी तक हम आदमी की जिंदगी में न तो ऐसा समाज ला पाए, न हम आदमी की जिंदगी में ऐसा विज्ञान ला पाए, न हम आदमी की जिंदगी में ऐसा धर्म ला पाए जो उसको आनंद से भर दे। यह आदमी भूलना चाहता है। दो उपाय हैं, एक तो कि हम उस दिशा में खोज करें। बड़ी कठिन है वह बात। क्योंकि उस दिशा में खोज करने में हमारी जिंदगी की हजारों व्यवस्थाओं को चोट पहुंचती है। अब जैसे उदाहरण के लिए एक और उदाहरण दूं क्योंकि यह बहुत बड़ी बात होगी। जरूरत होगी तो कल मैं आपसे फिर बात कहूं।
एकाध उदाहरण दूं। जो बच्चे मां के पास बड़े होते हैं उनकी जिंदगी में बहुत सुख होना बहुत मुश्किल है। यह बहुत अजीब सी बात मालूम होती है। असल में मां के पास जो बच्चा बड़ा होगा उसे मां के दो रूप देखने पड़ते हैं, एक साथ, कभी मां बहुत प्रसन्न होती है, आनंदित होती है, बच्चे को प्रेम करती है। कभी मां बहुत नाराज होती है, बहुत दुखी और परेशान होती है और बच्चे को मारती भी है, ठोंकती भी है, क्रोध भी करती है। बच्चा उसी मां को प्रेम भी करता है और जब उसे क्रोध करती है, मारती, ठोकती तो उसे ही घृणा भी करता है। अब उस बच्चे की जिंदगी में एक बहुत ही दुर्घटना घट जाती है। वह एक ही व्यक्ति को प्रेम भी करता है, और घृणा भी करता है। एक ही व्यक्ति के संबंध में उसका दोहरा रूप हो जाता है--प्रेम का और घृणा का इसी में वह बड़ा होता है। अब जो लोग जानते हैं वे कहते हैं कि जब तक बच्चे मां के पास बड़े होंगे तब तक कभी पति-पत्नी सुखी नहीं होंगे। क्योंकि वह जो लड़का है, कल पति बनेगा और वह जिस स्त्री को प्रेम करेगा उसी स्त्री को घृणा भी करेगा। उसकी पूरी आदत मां के साथ जीकर एक ही स्त्री को घृणा करने और प्रेम करने की है। वह जिस स्त्री को प्रेम करेगा वह एक तरफ से प्रेम का हाथ बढ़ाएगा, दूसरी तरफ से घृणा की छुरी भी तैयार रखेगा। सांझ प्रेम करेगा, सुबह गर्दन दबाएगा, दोपहर क्षमा मांगेगा। सांझ फिर प्रेम करेगा और यह चक्कर चलेगा। एक ही व्यक्ति के संबंध में दोहरी भावनाएं बहुत खतरनाक सिद्ध होने वाली हैं।
इजरायल में उन्होंने एक छोटा सा प्रयोग किया है किबुश में जिसने उन्होंने बच्चों को मां से दूर रखने की कोशिश की। दूर रखने का मतलब यह नहीं कि मां से नहीं मिलने दिया है, मां से मिलने दिया जाता है। मां कभी- कभी आकर स्कूल में नरसरी में बच्चे को मिल जाती है। तब बच्चा मां का एक ही रूप देख पाता है। प्रेम से भरा हुआ और उसके मन में आत्म-विरोधी दो स्वर पैदा नहीं हो पाते। मां जब भी उससे मिलने आती है, पंद्रह दिन में, महीने में, सप्ताह में, तभी आकर उसे गले से लगाती है। स्त्री का रूप उसके मन में प्रेम का ही रूप निर्माण हो जाता है। और मां जब दुखी होती है परेशान होती है तब मिलने ही नहीं आती। वह मिलने ही तभी आती जब खुद ही आनंदित होती है। तब वह अपने बेटे को देखने आती है। अठारह-बीस साल तक बेटा पलता है, नर्सरी में। मां उससे मिलती है बाप उससे मिलता है। मां के साथ उसका एक ही संबंध होता है प्रेम का। और स्त्री के प्रति उसकी धारा भविष्य में एक ही होती है

प्रेम की। दूसरी बात, वह मां-बाप दोनो को लड़ते नहीं देख पाता। जो कि घर में रहे तो अंधा लड़का भी देख लेगा। उसके लिए आंखें होने की जरूरत नहीं है। क्योंकि मां-बाप के बीच शांति के क्षण इतने कम होते हैं और युद्ध के क्षण इतने ज्यादा होते हैं कि उसके लिए अंधा होना हो तो भी दिखाई पड़ जाएगा कि मां-बाप लड़ रहे हैं।? और जब बच्चा बचपन से मां-बाप को लड़ते देखता है तो लड़ना जिंदगी का हिस्सा हो जाता है और हर बच्चा मां-बाप को पुनरुक्त करता है, रिपीट करता है। स्वभावतः लड़कियां अपनी मां को दोहराती हैं, लड़के आने बाप को दोहराते हैं, और करीब-करीब वही कहानी हर पीढ़ी में वापस दौड़ती है। जो आपके पिता ने अपकी मां के साथ किया था वह अपनी पत्नी के साथ आप किए चले जाते हैं। थोड़े बहुत फर्क होते हैं, लेकिन इन फर्कों से बहुत फर्क नहीं पड़ता है। हर कहानी उसी ढांचे में दौड़ती चली जाती है। किबुश में मां-बाप जब दोनो साथ आते हैं तो किबुश की नर्सरी में आकर तो लड़ते नहीं। अगर घर लड़े हों तो उस दिन आते ही नहीं। जब दोनो भले मन में होते हैं, मित्रतापूर्ण होते हैं, शत्रुतापूर्ण नहीं होते, जब दोनो के मन में प्रेम चल रहा होता है तलाक नहीं चल रहा होता तब वे बच्चे को देखने आते हैं। बच्चे के मन में उन दोनों की जो प्रतिमा है वह आपस के प्रेम की प्रतिमा निर्मित होती है। यह बच्चा बहुत और तरह की जिंदगी जी सकेगा। इस बच्चे को शायद शराब की जरूरत कम पड़े। यह बच्चा शायद नशे में खोना जरूरी न समझे। यह मैंने एक पहलू की बात कही। जिंदगी मल्टी-डाइमेन्शनल है, जिंदगी के बहुत आयाम हैं और जिंदगी के
सब आयामों की खोज की जाए तभी हम कहीं ऐसे आदमी को जन्म दे पाएं जिसे नशे की जरूरत न हो। लेकिन मोरारजी भाई देसाई को इससे कोई मतलब नहीं है, उनको मतलब है कि शराब नहीं होनी चाहिए। उन्हें पता नहीं कि कुछ लोग तीन-चार घंटे चरखा कात कर उसी तरह अपने को भूल जाते हैं। जिस तरह कोई आदमी शराब पीकर अपने को भूल जाता है। असल में चरखा भी अगर छ घंटे बैठ कर कातते रहें तो चरखा भी बड़ा इनटाक्सिकेंट है, क्योंकि छह घंटे का इतना बोर्डम का काम कोई भी आदमी करे तो बुद्धि तो क्षीण होती ही, चरखा कात रहा है। चरखे के साथ घूमते-घूमते तंद्रा पैदा हो जाए। बुद्धि को काम करने की कोई जरूरत तो होती नहीं। बुद्धि निष्क्रिय पड़ी रह जाती है, चरखे का चक्का घूमता जाता है, अनवरत एक ही धारा में रिपिटेटिवली मोनोटोनस। जैसे कोई राम-राम, राम-राम जपता रहता है ऐसा चरखा घूमता रहता है। चरखे की रुन धुन घूमती रहती है। चार-छह घंटे में चरखा वैसे ही मजा देता है जैसे कि नशा मजा देता है। लेकिन कोई चरखे में भुला लेता है अपने को। कोई किसी और ढंग से भुला लेता है अपने को। आदमी भुला रहा है। और आदमी तब तक अपने को भुलाता रहेगा जब तक आदमी आनंद की कोई धारा न खोज ले। या तो हम समाज की एक व्यवस्था खोजें लेकिन यह कब होगा, यह कहना मुश्किल है। यह यूटोपिया भी जमीन पर कभी आएगा यह कहना मुश्किल है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अगर चाहे तो अपने जीवन में आनंद की धारा जरूर खोज सकता है। सारे अवरोधों के बावजूद आनंद की धारा जरूर खोज सकता है। सारे अवरोधों के बावजूद अगर कोई व्यक्ति चाहे तो अपने भीतर से आनंद के स्रोत खोज सकता है।
मैं अपने भीतर आनंद के स्रोत को खोजने की व्यवस्था को ध्यान कहता हूँ। हमारे भीतर भी आनंद की बड़ी रसपूर्ण ग्रंथियां हैं। लेकिन हम उनतक कभी जाते नहीं। हम अपने बाहर ही जीते हैं। और बाहर ही जीकर समाप्त हो जाते हैं। हमें उस खजाने का पता ही नहीं चलता जो हमारे भीतर दबा है। अगर कोई व्यक्ति ध्यान की उस भीतर की धारा को खोज ले तो उसे जगत में शराब और नशे की कोई जरूरत नहीं रह जाती। राम धुन की कोई जरूरत नहीं रह जाती और चर्खा कातने, भुलाने की भी कोई जरूरत नहीं रह जाती। इलेक्शन लड़ कर भी अपने को भुलाने की जरूरत नहीं रह जाती। और गरीबों की सेवा में भी अपने को भुलाने की जरूरत नहीं रह जाती और शराब पीने की और ताश खेल कर अपने को भुलाने की और रोटरी क्लब और लायंस क्लब बैठ कर अपने को भुलाने की जरूरत नहीं रह जाती। भुलाने की जरूरत विदा हो जाती है अगर हमारे भीतर रिमेंबरिग आ जाए, उसका स्मरण आ जाए, तो हमारे भीतर आनंद का स्रोत, वह आनंद स्रोत ध्यान की कुदाली से खोदा जा सकता है।

एक अंतिम सवाल।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान से प्रयोजन क्या है?

यही है प्रयोजन ध्यान से। आपकी जिंदगी दुख की एक कहानी न रह जाए बल्कि आनंद का एक झरना बन जाए। और आपके भीतर प्रत्येक के भीतर इतनी क्षमता है और इतने अनंत स्रोत हैं कि वे सब अगर प्रकट हो जाएं तो आपकी जिंदगी में चारों तरफ फूल और सुगंध फैल जाए। और चारों तरफ आपकी जिंदगी में वीणा बजने लगे। फिर उसे भुलाने की जरूरत न हो। जिन मित्रों को ध्यान में, सच में ही आकर्षण है और वे ध्यान के संबंध में समझना चाहें उनके लिए रात की अलग बैठक है। तो ध्यान के संबंध में और भी चार-छह प्रश्न हैं वह मैं रात के बैठक में ही बात करूंगा। क्योंकि ध्यान के संबंध में समझने से कुछ नहीं होगा। ध्यान को करने से कुछ होगा। आप आ जाएं साढ़े नौ बजे रात और ध्यान को करके देखें और देखें अपने भीतर क्या है। और खोजें उसे जो आपके भीतर आपकी संपत्ति छिपी है। जिस दिन उस संपत्ति पर आपका हाथ पड़ जाए उस दिन से दुनिया में आपको अपने को विस्मरण करने की जरूरत नहीं रह जाती।
मेरे लिए धर्म आत्म-स्मरण है, सेल्फ-रिमेंबरिंग है और मेरे लिए धार्मिक आदमी के अतिरिक्त कोई भी आदमी ऐसा नहीं है जो अपने को भुलाने का कोई रास्ता न खोजे। रास्ते अलग होंगे लेकिन रास्ता खोजना ही पड़ेगा। सेक्स में, संगीत में, सिनेमा में, कहीं न कहीं रास्ता खोजना पड़ेगा अपने को भूलने का। क्योंकि हम इतने दुखद है कि अपने साथ जीना बहुत ही कठिन है। यह बहुत मजे की बात है। अगर आपको एक कमरे में अकेला छोड़ दिया जाए तो आप कहते हैं कि बड़ी मुश्किल हो जाती है। अकेले जीना बहुत मुश्किल हो जाता है। लेकिन आपने कभी सोचा कि अकेला जीना मुश्किल हो जाता है इसका मतलब क्या है? इसका मतलब है कि अपने साथ जीना मुश्किल हो जाता है। और मजा यह है कि जिस मित्र के साथ आप मिल कर आनंद उठा रहे हों, वह भी अकेले में जीने में उतनी ही मुश्किल पाते हैं, और दोनो जो अकेले जीने में मुश्किल पाते हैं तो दोनों मिल कर आनंदित कैसे हो जाएंगे? मुश्किल दुगुनी हो सकती है आनंद नहीं हो सकती। जैसे दो भिखारी रास्ते पर खड़े होकर एक-दूसरे से भीख मांगने लगें। ऐसे ही हम सारे लोग हैं। अकेले में हर आदमी मुश्किल में पड़ जाता है, दूसरे के साथ बड़े आनंद में दिखाई पड़ता है। यह दिखाई पड़ना सिर्फ दिखावा होगा। थोड़ी देर में मुश्किल आ जाएगी। चेहरे थोड़ी देर में हट जाएंगे और असली चीजें प्रकट होंगी, और तब दूसरे के साथ जीना भी चाहोगे तो भी मुश्किल हो जाता है। असल में जीना मुश्किल है क्योंकि जीने के स्रोत का हमें कोई भी पता नहीं है। जीने के राज, जीने की कुंजी का हमें कोई पता नहीं है। उस महल का हमें कोई पता नहीं जिसके द्वार पर हम खड़े हैं। उसकी कुंजी खोजी जा सकती है। उसकी कुंजी की खोज ही धर्म है। और उस कुंजी का नाम ध्यान है। जिन मित्रों को उस कुंजी का खयाल हो वे आएं रात को उस कुंजी की तलाश में, थोड़ा श्रम करें, थोड़ा सा ही श्रम, वह कुंजी निश्चित मिल जाती है।
जीसस के एक छोटे से वचन से मैं अपनी बात पूरी करूंगा।
जीसस ने कहा है कि एक कदम चलो उस परमात्मा की तरफ और वह परमात्मा हमेशा तुम्हारी तरफ हजार कदम चलने को तैयार है। लेकिन हम एक कदम भी नहीं चल पाते। वही हमारा दुख है। वह एक कदम हम उठा पाएं तो हमारे ऊपर अनंत वर्षा हो जाती है आनंद की। फिर शराब बंद नहीं करनी पड़ती, फिर शराब बेमानी हो जाती है। फिर शराब को छोड़ना नहीं पड़ता, शराब को पीना ही असंभव हो जाता है। कुछ और प्रश्न रह गए हैं, वह कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा।

मेरी बातों को इतने ध्यान से और प्रेम से सुना, उससे मैं अनुगृहीत हूं। और अंत में सबके भीतर बैठे प्रभु को प्रणाम करता हूं। मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

मैं कौन हूं?
दसवां प्रवचन

जीने की कला

जीवन को कैसे जीआ जाए, उसका प्रयोजन क्या है?

दो-तीन बातें समझने योग्य हैं। एक तो जो जीवन को किसी भांति जीने की कोशिश करेगा, वह जीवन से वंचित रह जाएगा। जीवन के ऊपर जो सिद्धांत आरोपित करेगा वह जीवन की हत्या करने वाला हो जाएगा। जीवन के ऊपर कोई पद्धति, कोई पैटर्न, कोई ढांचा होगा जीवन के पौधे को सही से विकसित नहीं होने देता। जीवन को जीने की पहली समझ इस बात से आती है कि हम जीवन को जितनी सहजता से स्वीकार करते हैं उतनी ही धन्यता को जीवन उपलब्ध होता है। सिद्धांतवादी कभी भी सहज नहीं हो पाता और जितना व्यक्ति असहज होगा उतना कृत्रिम उतना झूठा, उतना पाखंडी हो जाता है। जीवन को जीने की कला का पहला सूत्र है जीवन की सहज स्वीकृति। जैसा जीवन आता है उसे अंगीकार करने का अहोभाव टोटल एक्सेप्टेबिलिटी न केवल परिपूर्ण स्वीकृति बल्कि अनुग्रहपूर्वक स्वीकृति, एक्सेप्टेंस विद ग्रेटिट्यूड। पौधे भी जीते हैं, पक्षी भी जीते हैं, आकाश भी जीता है, पृथ्वी भी जीती है, सागर भी जीते हैं, बिना किसी सिद्धांत के। आदमी भर है जो जीवन के ऊपर सिद्धांतों को थोपकर जीने की कोशिश करता है। मैं यह नहीं कर रहा हूं कि जीवन में सिद्धांत न हों, लेकिन जीवन के ऊपर कोई सिद्धांत नहीं हो सकता। सिद्धांत हों तो जीवन से अनुसरित हों, जीवन से निकले हों। सिद्धांतों से जीवन नहीं निकलता। इन दोनों बातों के भेद को ठीक से समझ लेना जरूरी है। सिद्धांतों से जीवन उसी भांति नहीं निकल सकता है जैसे रेत से तेल नहीं निकल सकता। जीवन से सिद्धांत निकल सकते हैं।
जीने की कला से बहुत कुछ दिखाई पड़ सकता है, और जीवन का मार्ग बन सकता
है लेकिन वह मार्ग वैसे ही होगा जैसे नदी बहती है सागर की तरफ और मार्ग बनाती है। रेडीमेड बना बनाया कोई रास्ता नहीं होता जिसपर नदी बहती जाती है। रेलगाड़ियां भी चलती हैं वे लोहे के बने बनाए पथ पर चलती हैं। कोई रास्ते की उन्हें खोज नहीं करनी होती है, रास्ता पूर्व निर्मित है। रेलगाड़ी के डिब्बे उन पर दौड़े चले जाते हैं। सिद्धांतवादी का जीवन रेलगाड़ी के दौड़ते हुए मृत डब्बों की भांति होता है, सिद्धांत तय हैं, उनकी पटरियां बिछी पड़ी हैं परंपराओं से, हजारों साल से, लोह-पथ तैयार है, उस पर सिद्धांतवादी को अपने चक्कों को चढ़ा है देना और चलते जाना है। जिंदगी बने बनाए मार्गों को नहीं मानती। सिर्फ जिसे जिंदा रहने से ही भय हो उन के लिए लोहे के रास्ते... । हजार रेलगाड़ियां एक ही रास्ते पर चल सकती हैं। दो नदियां एक रास्ते पर नहीं चल सकतीं। दो जीवन भी एक ही रास्ते पर कभी भी नहीं चल सकते। प्रत्येक व्यक्ति का अपना निजी जीवन है। इस बात को ठीक से समझ लेना चाहिए कि जीवन का अर्थ ही होता है प्रत्येक का अपना जीवन, हम सब का इकट्ठा जीवन जैसी कोई चीज नहीं है। मैं एक तरह से जीता हूं आप दूसरी तरह से जीते हैं। और अगर कोई उसी क्षण उसकी स्वतंत्रता को उनकी सहजता को, उनकी निजता को, उनकी इनडिविजुअलिटी को इनकार कर देता है, तो फिर यह जो हमारी दुनिया इतनी उदास, इतनी फीकी, इतनी तेजहीन मालूम पड़ती है; उसका कारण है कि तेज जहां से आता है, प्रफुल्लता जहां से आती है, आनंद जहां से आता है, हर्ष जहां से पैदा होता है, उस व्यक्ति को हमने कारागृह में डाला हुआ है। हमने बंधे-बंधाए रास्ते बनाए हुए हैं और उन बंधे-बंधाए हुए रास्ते पर प्रत्येक को चलने का नियमन किया हुआ है। जो चलता है नियम से, वह स्वीकृत समाज को, जो रास्ते से नीचे उतरता है, वह अस्वीकृत और उपेक्षित हो जाता है। जीवन का अर्थ है आनंदपूर्ण जीवन। जितने लोग हैं, जितने व्यक्ति ह, उतने जीवन हैं, और प्रत्येक व्यक्ति का जीवन एक विशेष अर्थ में उसका ही है। वैसा जीवन न पहले कभी हुआ और न पीछे कभी होगा। असल में आपको पैदा करने के लिए जगत की जो व्यवस्था थी, वह दुबारा अब कभी नहीं दौड़ेगी। आप जिस घड़ी में पैदा हुए हैं, वह घड़ी अब इतिहास में फिर नहीं लौटने को है। न चांद तारे वहां होंगे, न

पृथ्वी पर वह सब कुछ होगा जो आपके पैदा होने के क्षण में था। आप अनूठे हैं। प्रत्येक अनूठा है। प्रत्येक व्यक्ति ऐसा है जिसकी कोई पुनरुक्ति नहीं। जिसका कोई इतिहास में, भविष्य में या अतीत में, कहीं भी कोई समतुल्य नहीं है, जिसका कोई कंपेरिजन नहीं है। लेकिन, बंधे हुए रास्ते, तैयार रास्ते, सिद्धांतों के रास्ते, व्यक्ति को नहीं मानते। वे समूह के, बड़े समूह के आधार पर निर्मित होते हैं। और उनमें वही बुनियादी भूल हो जाती है जो सभी स्टेटिस्टिक्स में होती है, जो सभी इस तरह की गणनाओं में होती है। यदि हम बड़ोदा के सारे लोगों की ऊंचाई नापें और सारे लोगों की संख्या का उसमें भाग दे दें तो बड़ोदा के नागरिक की औसत ऊंचाई, एवरेज हाइट का पता चल जाएगा। वह जो एवरेज हाइट होगी, औसत ऊंचाई होगी उस ऊंचाई का शायद ही कोई आदमी बड़ोदा में हो। अगर आप औसत ऊंचाई के आदमी को खोजने निकलें तो, एक भी आदमी बड़ौदा में नहीं मिलेगा। बहुत कम संभावना है। असल में औसत आदमी होता ही नहीं है। औसत आदमी गणित का खेल है। हर आदमी की अपनी लंबाई है और औसत का खेल वैसा ही नासमझी से भरा हुआ है।
जैसा मैंने सुना है कि एक सम्राट ने अपने जवान बेटे के लिए, अपने वजीर को, बहू खोजने भेजा था और कहा था कि सोलह साल की लड़की खोजना। उसने बहुत खोजा। सोलह साल की कोई सुंदर लड़की नहीं मिलती थी तो वह आठ-आठ साल की दो लड़कियां ले आया। गणितज्ञ था, उसने सोचा कि सोलह साल की एक लड़की न हो तो आठ-आठ साल की दो लड़कियां, आठ धन आठ बराबर सोलह। वह आया और उसने दो छोटी लड़कियां खड़ी कर दीं। सम्राट ने कहा, पागल! उन बच्चियों को किसलिए ले आया? उसने कहाः ये बच्चियां नहीं हैं महाराज, जरा गौर करें, आठ और आठ सोलह होते हैं। इन दोनों की उम्र मिल कर सोलह है। आपको सोलह साल की स्त्री चाहिए, यह सोलह साल की स्त्री खड़ी है। जरा गणित करें आपका गणित कुछ कमजोर मालूम पड़ता है।
मनुष्य के साथ भी बहुत तरह के गणित किए गए। महावीर की एक जिंदगी है, बुद्ध की एक है, कृष्ण की एक है, सारी मनुष्यता में हर आदमी की जिंदगी अलग अलग है। और जब हम सिद्धांत तय करते हैं कि किस भांति जीएं तो अनिवार्य रूप से सिद्धांत उदार होते हैं, किसी और की जिंदगी को देख कर आते हैं। महावीर नग्न खड़े हैं, महावीर को अगर कोई देख कर जिंदगी का सिद्धांत तय करेगा तो नग्नता की लोहे की पटरियां बिछा देगा। और कहेगा नग्न होना मेरे लिए जरूरी है। महावीर के लिए कभी नग्न होना जरूरी नहीं था। महावीर की नग्नता उनके निर्दोष हृदय से निकली हुई सहज घटना थी। वस्त्र पहनने उनके लिए मुश्किल हो गए होंगे, किसी क्षण वस्त्रों को निकाल कर फेंक दिया। नग्नता को उन्होंने न किसी दिन सिद्धांत के तरह स्वीकार किया न फिर वस्त्र उतारे, वस्त्र उतर गए, तब उन्हें पता चला कि वे नग्न खड़े हैं। यह नग्नता उनके जीवन की धारा में सहज घटी घटना है। लेकिन जो आदमी महावीर को देख कर जिंदगी बनाएगा, उसके लिए सिद्धांत पहले आएगा, नग्न होने की घटना पीछे आएगी, घटना झूठी हो जाएगी। और उस आदमी की नग्नता सुंदर नहीं हो सकती। उस आदमी की नग्नता कुरूप होगी। और उस आदमी की नग्नता में संन्यास नहीं होगा, और वह आदमी नग्नता में बहुत गहरे में सर्कसी हो सकता है, संन्यासी नहीं हो सकता। वह सर्कसी आदमी उसने अपने को नंगा खड़ा कर दिया चेष्टा से, महावीर को नग्न खड़े होने में कोई चेष्टा नहीं करनी पड़ी। महावीर के लिए वस्त्र पहनने में चेष्टा हो भी सकती थी, नग्न खड़े होने में चेष्टा नहीं थी। नग्न खड़ा होना उन्हें सहज घटित हुआ। हम जब भी सिद्धांत पहले लेंगे तो सिद्धांत किसी और का होगा।
न तो महावीर के पिता आपके पिता हैं, और न तो महावीर की मां आपकी मां हैं, न महावीर का समय आपका समय है, न महावीर का चित्त आपका चित्त है, न महावीर की आत्मा के लंबे अनंत जन्मों के अनुभव आपके अनुभव हैं, न महावीर की जिंदगी से आपका कुछ लेना-देना है। लेकिन आप नग्न खड़े होते हैं। यह नग्नता आपकी जिंदगी में एक तरह का व्यभिचार होगी। महावीर की जिंदगी में एक आचार भी है, सहज फलित; आपकी जिंदगी में एक्सीडेंट, दुघर्टना हो, आप खड़े हो सकते हैं नग्न, नग्न खड़े होने में कोई कठिनाई नहीं है। लेकिन यह सिद्धांत पहले होगा और जिंदगी पीछे होगी। और जब कि सिद्धांत पहले और जिंदगी पीछे, तभी जिंदगी खतम हो जाती है और सिद्धांत ही रह जाता है।

सिद्धांतवादी का अर्थ है मरा हुआ आदमी तो जितने वादी हैं सभी मरे हुए होत हैं। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वे महावीरवादी के हैं कि बुद्धवादी है, कि मार्क्सवादी है कि गांधीवादी है कि, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।
वादी ही मुर्दा होता है। वादी इसलिए मुर्दा होता है कि सिद्धांत किसी और से लाता है और अपनी जिन्दगी को उस ढांचे में ढालता है, और उसी ढांचे में ढालने से जिंदगी मर जाती है। अगर एक गुलाब का पौधा दूसरे गुलाब के पौधे को अपना सिद्धांत बना ले तो आप पक्का मानिए कि वह पौधा मर जाएगा क्योंकि एक पौधे में जिस तरह की शाखाएं निकलती हैं उस तरह की शाखाऐं दूसरे पौधे में नहीं निकलती हैं। एक पौधे में जितने पत्ते होते हैं उतने दूसरे पौधे में नहीं होते। एक पौधे में जिस भांति के फूल आते हैं वैसे दूसरे में नहीं आते हैं। अगर आपके गुलाब के पौधे पर सफेद फूल आया और उसने लाल फूल वाले पौधे को अपना सिद्धांत बनाया हो तो वह आत्म-निंदा से भर जाएगा और सोचेगा कि अब मेरे लिए सिवाय नरक में जाने के और कोई उपाय नहीं है। क्योंकि लाल फूल सिद्धांत और मुझ में आ रहे हैं, सफेद फूल, अब मैं मरा। और चाहे वह कितना ही आत्म-निंदा करें तो सफेद फूल के गुलाब में लाल फूल नहीं आ सकते। हां, एक तरकीब हो सकती है कि अगर पौधा आदमी के जितना समझदार हो जाए तो अपने सफेद फूलों को लाल वार्निश से रंग सकते हैं और लाल वार्निश से रंगे गए सफेद गुलाब के फूल, फूल भी नहीं रह जाते, जिंदा भी नहीं रह जाते, वार्निश उसे मार डालता है। सफेद फूल सफेद ही होने चाहिएं। लाल फूल लाल ही होने चाहिएं। बड़े फूल बड़े ही होने चाहिएं, छोटे फूल छोटे ही होने चाहिएं। छोटे फूलों का अपना सौंदर्य होता है, बड़े फूलों का अपना सौंदर्य है, लाल फूलों का अपना व सफेद का अपना। जिंदगी सबको स्वीकार कर रही है। सिर्फ हम अपने को अस्वीकार करके मुसीबत में पड़ जाते हैं।
चूंकि जब मुझसे कोई पूछता है कि जिंदगी कैसे जीएं, तो मैं कहता हूं कि मुझसे मत पूछो, अपनी जिंदगी से पूछो। अपनी जिंदगी को बहाओ, चलो, जीओ और उस जीने में जो आनंदपूर्ण हो उसे ही सिद्धांत समझो। और जो दुखपूर्ण हो उसे सिद्धांत मत समझो। एक ही कसौटी हो सकती है जिससे आपको आनंद मिलता हो। वही आपकी जिंदगी का सूत्र बने। जिससे आपको दुख मिलता हो वही आपकी जिंदगी के लिए विरोध बने। मुझसे मत पूछो, किसी से मत पूछो, किसी से भी पूछने जाएंगे कि जिंदगी कैसे जीएं तो गलती शुरू हो जाएगी। क्योंकि मैं अपनी जिंदगी के बाबत ही कह सकता हूं। मेरे पास लोग आते हैं। वे पूछते हैं कि आप सुबह कब उठते हैं? तो मैं उनसे कहता हूं कि मेरे उठने से तुम्हें प्रयोजन? तो वे कहते हैं कि हम भी उसी वक्त उठना शुरू करेंगे। अब आपको शायद पता नहीं कि जिंदगी में सुबह उठना भी प्रत्येक व्यक्ति का अपना होगा। होना ही चाहिए, सिर्फ मिलिटरी को छोड़ कर, जहां कि आदमी नहीं होते जहां सिर्फ मशीनें होती हैं। मिलिटरी की सारी ट्रेनिंग, यही होती है कि आदमी, आदमी न रह जाए मशीन हो जाए। इसलिए मिलिटरी में हम मूर्खतापूर्ण बातों को वर्षों तक दोहराते हैं। बाएं घूमो, दाएं घूमो, घुमाते रहो बाएं-दाएं, आदमी धीरे-धीरे मशीन की तरह बाएं-दाएं घूमने लगता है। फिर जब आप कहते हैं बाएं घूमों तो उसे घूमना नहीं पड़ता है, घूम जाता है। फिर उसे सोचना नहीं पड़ता है कि बाएं यानी क्या? घूमना है या नहीं घूमना है उसे यह भी नहीं सोचना पड़ता, बस वह घूम जाता है। और जब आदमी मशीन की तरह बाएं-दाएं घूमने लगता है तब उससे कहो बंदूक तानो, गोली चलाओ, तो वह बंदूक तानता और गोली चलाता है और वह यह भी नहीं देखता कि वह क्या कर रहा है, किस को मार रहा है, क्यों मार रहा है, किसलिए मार रहा है। अब यह कोई सवाल नहीं रहा। अब वह आदमी मशीन हो गई है। मशीनगन मशीन के हाथ में। अब वह आदमी, आदमी नहीं है। तो मिलिटरी में तो एक ही वक्त उठना पड़ता है। जिंदगी को मिलिटरी बनाने की जरूरत नहीं है। अभी बहुत खोज चलती है, नींद के ऊपर तो बड़ी हैरानी के तथ्य हाथ में आए हैं।
और जो लोग ब्रह्ममुहूर्त में उठने के आदी हैं और दूसरे उन्हें उठाने
के भी थोड़े उन तथ्यों को भी समझ लेना चाहिए। चौबीस घंटे के आदमी के तापमान का जो अध्ययन किया गया है वह बहुत हैरानी का है। उसमें पता चलता है कि बाईस घंटे तो आदमी का शरीर एक तापमान पर रहता है। दो घंटे के लिए तापमान नीचे गिर जाता है। अक्सर यह घटना दो बजे से लेकर सुबह सात बजे के बीच में घटती है। दो घंटे के लिए शरीर का तापमान नीचे गिर जाता है। और जिस दो घंटे के

बीच आपके शरीर का तापमान नीचे गिरता है वे ही दो घंटे आपकी गहरी निंद्रा के दो घंटे होते हैं। अगर उन दो घंटों के बीच में कोई आपको उठाए तो आप दिन भर बैचेन और परेशान रहेंगे। आपकी नींद पूरी नहीं हो पाएगी और अगर उन दो घंटों के बाद उठें तो आप ताजे उठेंगे और दिन भर नींद की चिंता करने की जरूरत नहीं रहेगी।
अब किसी आदमी का तापमान दो बजे से चार बजे के बीच गिरता है। समझ लें कि विनोबा भावे का दो से चार के बीच गिरता है तो वह तीन बजे रात को उठाते है या दो बजे रात उठ आते हैं। अब उनके आस-पास जो नकली विनोबा भावे इकट्ठे हैं वे भी बेचारे तीन बजे उठते हैं। वे भी वैसे लंगोटी वगैरह लगा कर, वैसे ही चादर ओढ़ कर बैठ कर जाते हैं। वे भी तीन बजे उठ आते हैं जो आदमी नकलची तीन बजे उठता है अगर उसका तापमान तीन और पांच के बीच गिरता है तो वह दिन भर मुसीबत में होगा और जब वह मुसीबत में होगा तब वह सोचेगा कि मैं बड़ा तामसी हूं क्योंकि विनोबा भावे को कोई नींद नहीं आ रही है और मुझे दिन भर नींद आती है। मालूम होता है पिछले जन्मों में अच्छे कर्म नहीं किए। कोई न पिछले जन्मों का सवाल है और न किसी पाप का सवाल है, न तामसी होने का सवाल है, सवाल सीधा वैज्ञानिक है। उस आदमी के शरीर का, तापमान दो घंटे बाद गिरता है। स्त्रियों के शरीर का, तापमान अक्सर पुरुषों से बाद में गिरता है। स्वभावतः पति अक्सर सुबह उठ आते हैं और घर में चाय बनाने लगते हैं और पत्नी थोड़ी देर से उठती है। इसमें कुछ पत्नियों को परेशान होने की और दुखी होने की कोई भी जरूरत नहीं है। स्त्रियों का तापमान कोई तीन बजे और सात बजे के बीच में गिरता है। कुछ लोग हैं जिनका सात और नौ के बीच में भी गिरता है। अब जिनका सात और नौ के बीच में गिरता है अगर वह नौ के पहले उठ आए तो उनका दिन भर खराब हो गया। अपनी जिंदगी से खोजें।
अगर सुबह उठने का सूत्र भी खोजना है तो दस-पांच दिन प्रयोग करके देखें
कि कौन सी घड़ी में उठने से आप दिन भर सबसे ज्यादा ताजगी अनुभव करते हैं। वही आपका सुबह उठने का नियम होगा। किसी और से पूछने मत जाएं क्योंकि उसके सुबह उठने का नियम आपका नहीं हो सकता। लेकिन हम जो फार्मूले बनाते हैं वे सबके लिए बनाते हैं। हम कहते हैं ब्रह्ममुहूर्त में जो नहीं उठता वह अच्छा आदमी नहीं है। सबके ब्रह्ममुहूर्त अलग हैं और किसी का ठेका नहीं है कि उसका ब्रह्ममुहूर्त मेरा ब्रह्ममुहूर्त हो। इसलिए मैं यह नहीं कहता कि ब्रह्ममुहूर्त में उठना। मैं यह कहता हूं कि अपना ब्रह्ममुहूर्त ठीक से खोज लेना कि आपका ब्रह्ममुहूर्त कब, जागरण का क्षण आपका क्या है? नींद के क्षण भी अलग हैं, जागने के क्षण भी अलग हैं। भोजन की भी प्रत्येक व्यक्ति की जीवन व्यवस्था अलग है। यह तो बहुत हैरानी की बात है कि अगर एक ही बीमारी से दो आदमी बीमार होते हैं तो भी उनकी बीमारियों की इंडिविजुअलिटी होती है। उनकी बीमारियों का अपना व्यक्तित्व होता है। अगर मुझे भी टी.बी. हो जाए और आपको भी टी.बी.हो जाए तो भी, टी.बी. हम दोनों को एक सी नहीं होगी। इसलिए वही दवा जो आप पर काम कर जाती है, मुझ पर काम नहीं कर पाती। उसके कारण हैं। मेरे व्यक्तित्व का पूरा संगठन अलग है। उस संगठन में घटी हुई घटना भिन्न होने वाली है आपके व्यक्तित्व और इसलिए एक ही दवा हमारी मजबूरी थी। और आज तो मेडिकल साइंस इस बात को धीरे-धीरे अनुभव करने लगी है कि जिस दिन पूरी तरह विकास होगा उस दिन हम बीमारी की ही नहीं, बीमार की चिकित्सा भी करेंगे। अभी हमें बीमारी की करनी पड़ रही है। जबकि असल में बीमारी की चिकित्सा होनी चाहिए क्योंकि बीमार अलग-अलग हैं। एक ही बीमारी के बिमार भी अलग-अलग हैं। लेकिन हमारी मजबूरी है कि हम एक अस्पताल बनाते हैं और उसमें हजार टी.बी. के मरीजों को भर्ती करते हैं। एक एक के साथ अलग-अलग व्यवहार करना अभी संभव नहीं हो पा रहा है। इसलिए हम सबके साथ एक सा व्यवहार करते हैं लेकिन वह व्यवहार उचित नहीं है, वैज्ञानिक नहीं है, व्यवस्था है।
जिस दिन हमारी क्षमता बढ़ेगी तो प्रत्येक मरीज के साथ भिन्न व्यवहार होना चाहिए। नॉट दि डीसी.ज बट दि पेशेंट मस्ट बी ट्रीटेड। बीमारी नहीं, बीमार की चिकित्सा होनी चाहिए, और हर बीमार अनूठा है अपने ढंग का है। बीमारी का कोई सामान्य तल नहीं है। एक-एक व्यक्ति अलग-अलग व्यक्ति है।
इसलिए तो एक एक व्यक्ति के पास आत्मा है। अगर एक कार की पेट्रोल की टंकी

टूट जाए और दूसरे कार की पेट्रोल की टंकी टूट जाए तो इन दोनों में कोई व्यक्तित्व नहीं होता। इन दोनों टंकियों के साथ एक सा इलाज किया जा सकता है। लेकिन एक आदमी और दो आदमी के पास व्यक्तित्व हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि आदमियों के पास आत्मा हैं, मशीनों के पास आत्मा नहीं। और अगर आप स्वीकार करते हैं कि आपके भीतर कोई व्यक्तित्व है, कोई निजता, कोई आत्मा है तो कभी भूल कर भी किसी दूसरे से जीवन कैसे जीएंगे पूछने मत जाना। और अगर कोई आपको बताए तो उसे अपना दुश्मन समझना, मित्र मत समझना। ज्यादा से ज्यादा वह इतना कह सकता है कि मैं जीवन को ऐसे जीता हूं और मैंने इस तरह जी कर आनंद पाया है या दुख पाया है। लेकिन आप इससे आनंद पाएंगे और दुख पाएंगे यह जरूरी नहीं है। आप अपने जीवन को जीएं और जीकर जीवन के सूत्र खोजें। कसौटी एक होगी कि जिससे आपकी शांति बढ़ती जाए, जिससे आपका आनंद बढ़ता जाए, जिससे आपकी प्रफुल्लता बढ़ती जाए, जिससे आपके जीवन में प्रकाश बढ़ता जाए। जिससे आपके जीवन में गहराई बढ़ती जाए, ऊंचाई बढ़ती जाए; समझना कि वह जीवन का आपके लिए ठीक रास्ता है।
ध्यान रहे कि भूल कर अपने बेटे की गर्दन नहीं पकड़ लेना कि यह रास्ता तेरे लिए भी है क्योंकि मुझे इससे आनंद मिला है। न दूसरे से पूछना और न दूसरे के ऊपर थोपना। हम पूछने को भी आतुर होते हैं कि कोई हमें बता दे कि और अगर हमारी जिंदगी में कोई घट जाए तो हम किसी दूसरे पर भी थोपने को आतुर होते हैं कि किसी को हम फंसा दें। दोनों ही घातक बातें हैं। और इसके अतिरिक्त और कोई उपाय भी नहीं है कि आप जीवन को कैसे जीएं। इसे आपको जीकर ही जानना पड़ेगा। यह मामला ऐसा ही है जैसा कोई आदमी पूछे कि मैं तैरूं कैसे और तो मैं उससे कहूं कि नदी में कूद जाओ। निश्चय ही बहुत गहरे में मत कूद जाना, नहीं तो ऐसा न हो कि तैरने वाला न बचे। जरा उथले में कूदो, लेकिन इतने उथले में भी मत कूद जाना कि खड़े हो जाओ तो तैरने की कोई जरूरत न रहे। कूदो, इतनी गहराई में कि मर न जाओ और इतनी गहराई में जरूर कि हाथ तड़फड़ाने पड़ें। वह आदमी कहे कि मैं जब तक तैरना न सीख लूं तब तक मैं पानी में नहीं उतर सकता। उसका गणित दुरुस्त है। उसके तर्क में कोई खामी नहीं। लेकिन तर्क और जिंदगी में बड़ा फर्क है। वह आदमी ठीक कहता है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं तब तक मैं पानी में कैसे उतरूं? पानी में उतरने की पहली शर्त है मेरी कि मैं तैरना सीख लूं तभी मैं उतर सकता हूं। और मैं उससे कहूंगा कि जब तक तुम पानी में नहीं उतरोगे तब तक तुम तैरना सीखोगे कैसे? और तैरना सीखने की पहली शर्त है कि पानी में उतरो। गद्दी बिछा कर कमरे में हाथ पैर तड़फड़ाने से तैरना नहीं आ सकता। असल में तैरना आने के लिए पानी में डूबने की संभावना अनिवार्य शर्त है उतना खतरा जो लेता है उसे जिंदगी के भीतर से तैरना प्रकट होता है। असल में उसी खतरे में हाथ पांव तरफड़ाते हो और तैरना आना शुरू होता है। नदी में उतरना पड़ेगा तो तैरना आता है। तैरना आ जाए तो और गहरी नदी में उतरना आता है। और गहरी नदी उतरना आए तो और भी तैरना आता है। और भी तैरना आए तो और सागरों में उतरना आ जाता है।
ऐसे ही गति होती है। जीवन में उतरें, किनारे बैठ कर सोचते मत रहें कि कैसे जीएं? गीता, कुरान और बाइबिल और हजारों तरह के गुरुओं के पास पूछने मत जाऐं कि कैसे जीएं? उतरें और ध्यान रहे कि खतरा है वही शिक्षा है खतरा तो है ही कि उतरने में डूब भी सकते हैं, उतरने में भटक भी सकते हैं, उतरने में भूल भी हो सकती है। इसलिए जो बहुत समझदार हैं जिनको हम कहें बहुत सयाने, ऐसे लोग किनारे पर ही बैठे रह जाते हैं क्योंकि वे कहते हैं कि कोई भूल न हो जाए। कोई भूल न हो जाए इसलिए पहले सारा इंतजाम कर लें। लोहे की पटरियां बिछा दें, फिर हम चलेंगे। तो ऐसे समझदार, ऐसे सयाने किनारे पर ही बैठे रह जाते हैं। वे कभी उतर नहीं पाते हैं। खतरा तो लेना पड़ेगा जिंदगी में भूल हो सकती है, होनी चाहिए भी। जो भी जीएगा उससे बहुत भूलें होंगी। भूल से कोई डर नहीं है। एक ही भूल दुबारा न हो इतनी समझ काफी है। रोज नई भूल हो, यह बहुत आवश्यक है। पुरानी भूल न दोहराई जाए, यह समझदारी है। यह समझदारी नहीं है कि भूल दोहराने के डर से भूल होने के डर से, कोई किनारे बैठ जाए। जिंदगी में उतरें, जाग कर देखें, उठ कर देखें, भोजन करके देखें, झूठ बोल कर देखें, सच बोल कर देखें, क्रोध करके देखें, क्षमा कर के देखें, प्रेम करके देखें, दुश्मनी करके देखें। सारे अनुभव लें जिंदगी में उतरें

और उन सारे अनुभवों में जहां से गहराई ब.ढ़े, जहां से शांति बढ़े, जहां से आनंद बढ़े, जहां से प्रभु की झलक मिले, समझें कि वह मेरे जीवन का नियम बनना शुरू हुआ। और उस नियम को भी इतनी सख्ती से न बना लें कि कल उसमें बदलाहट का उपाय न रह जाए क्योंकि कोई भी नहीं जानता कि कल जिंदगी क्या लाए। कोई नहीं जानता कि कल तक जो सपाट रास्ता था, कल उससे उतरना पड़े, मोड़ आ जाए। कोई नहीं जानता कि कल तक जो बहुत सुखद था आने वाले कल में दुखद हो जाए। कल के लिए ओपनिंग चाहिए।
इसलिए दूसरी बात आपसे कहता हूं कि अपने भीतर से जीवन के नियम खोजें और दूसरी बात कहता हूं कि अपने खोजे नियम को भी एब्सोल्यूट, परिपूर्ण न मानें। अपने खोजे नियम को भी पूर्णता न समझें, वह भी कल बदलने की लोच, फिलेक्सिबिलिटी उसमें होनी चाहिए। रोज प्रतिपल बदलने की क्षमता होने वाले आदमी में जिंदगी पूरे अर्थों में खिलती है। जो आदमी प्रतिपल बदल सकता है। लेकिन हम बड़े संगत, कनसिस्टेंट लोग हैं। हम कहते हैं कि जो हमने कल किया था वही हम आज भी करेंगे, नहीं तो लोग क्या कहेंगे। जो हम कल मानते थे, वही हम आज भी मानेंगे, नहीं तो लोग क्या कहेंगे कि आप बदल गए!
मैंने सुना है, एक आदमी के संबंध में। लोग तो उसे बुद्धिमान कहते थे वैसे उस जैसा बुद्धिहीन आदमी खोजना जरा आसान नहीं है। सुना है मैंने उसके संबंध में कि जब वह स्कूल में पढ़ता था तब उसने एक वचन स्कूल की दीवार में लिखा हुआ पढ़ा। उस वचन में लिखा हुआ थाः टाइम इ.ज मनी, समय संपत्ति है। उसने उस सिद्धांत को मान लिया। फिर वह जवान हुआ, फिर उसने कमाना शुरू किया, वह आदमी बड़ा कनसिस्टेंट, बड़ा संगत आदमी था। लेकिन उसके व्यवहार से लोग बड़े परेशान हो गए। उसकी पत्नी, उसके बच्चे मुश्किल में पड़ गए। क्योंकि वह जितने पैसे कमाता उसने एक नियम बना लिया कि उसमें से दो तिहाई तो वह कचरे में फेंक देता और एक तिहाई वह उपयोग में लाता। अगर वह तीन रुपये कमाता तो दो रुपये कचरे में फेंक आता और एक रुपये में घर का काम चलाता। बड़ी गरीबी, बड़ी मुसीबत में दिन बीतने लगे। लोगों ने बहुत उससे कहा कि यह क्या फितूर है? यह क्या पागलपन है? यह कैसा मैनिया है तुम्हारे दिमाग में? यह तुम क्या करते हो? वह आदमी हंसता था उसी तरह कि जिस तरह ज्ञानी, अपने को ज्ञानी समझने वाले लोग जिनको अज्ञानी समझते हैं उन पर हंसते हैं, वह मुस्कुराता था। लेकिन आखिरी एक दिन सारे मित्रों ने उसको धर पकड़ा और कहा कि आज बताना ही पड़ेगा कि यह तुम क्या कर रहे हो? बच्चों की हत्या करोगे? पत्नी को फांसी लगानी है? तो उस आदमी ने कहा कि तुम समझते नहीं हो, मैं कनसिस्टेंट आदमी हूं। उन्होंने कहाः हम अभी भी नहीं समझे कि इसका मतलब क्या होता है? उसने कहा कि मैने बचपन से मान लिया है, टाइम इ.ज मनी, समय संपत्ति है। उन्होंने कहा कि यह भी हमने सुना है, समझा है, लेकिन इससे रुपये फेंकने का क्या संबंध है? उसने कहाः जब मैं अपने समय का दो तिहाई बेकार खर्च करता हूं, तो जो व्यवहार मैं समय के साथ करता हूं, वही मैं धन के साथ करूंगा। मैं कनसिस्टेंट आदमी हूं। जब मैं अपनी जिंदगी के दो तिहाई समय को बेकार खो रहा हूं तो मैं पूरे धन को जितना कमाता हूं उसके पूरे का उपयोग कैसे कर सकता हूं? समय धन है, इसलिए जो मैं समय के साथ व्यवहार कर रहा हूं, वही व्यवहार मुझे धन के साथ भी करना ही पड़ेगा। इतना कनसिस्टेंट आदमी दुनिया में कभी नहीं हुआ। स्कूलों की तो कई दीवालों पर लिखा है टाइम इ.ज मनी, लेकिन यह आदमी बहुत ही संगत आदमी है। पक्का सिद्धांतवादी जिसको कहें। मित्र भी रह गए, क्योंकि मित्र भी सिद्ध न कर सके कि टाइम इ.ज मनी, यह गलत है कि समय संपत्ति है, यह गलत है। मित्र भी सिद्ध न कर सके। कहीं कोई भूल चूक जरूर हो रही है लेकिन मित्रों कोसाफ नहीं हो सका कि क्या भूल-चूक हो रही थी। अक्सर भूल-चूक होती है कि हमने अतीत में जो सिद्ध कर लिया, ठीक कर लिया, समझ लिया, पकड़ लिया, फिर हम उसे जिंदगी भर अंधे की तरह पकड़े हुए चले जाते हैं।
बुद्ध कहा करते थे कि कुछ लोगों ने, एक बार नदी पार की, नाव में ही नदी पार की। स्वभावतः नाव में ही नदी पार हो सकती है। फिर पार उतरने के बाद उन आठों आदमियों ने उस नाव को अपने सिर पर उठा लिया और बाजार की तरफ चले। गांव में लोग बड़े चकित हुए। उन्होंने लोगों को तो नाव पर सवार देखा था लेकिन नाव को कभी लोगों पर सवार नहीं देखा था। भीड़ इकट्ठी हो गई और उन ग्रामीणों ने कहा कि हमें बताओ यह राज क्या है? नाव पर चढ़े हुए लोग हमने देखे थे,

लोगों पर चढ़ी नाव हमने कभी नहीं देखी। उन लोगों ने कहा- नासमझो, हम बहुत संगत लोग हैं। जब नाव ने हमारा साथ दिया, जब हम मुसीबत में थे नदी में, तब हम नाव को साथ दे रहे थे, और जिस नाव ने हमें नदी पार करवाई उस नाव को हम कैसे सिर से नीचे उतार सकते हैं। हम सिद्धांतवादी हैं, हम धोखेबाज बेईमान नहीं, नाव ने इतना साथ दिया, हम उसका साथ छोड़ दें! जब नाव हमें नदी में पार करवाती है, तो अब जिंदगी भर नाव को हम जीवन की नदी पार करवाते रहेंगे। ये संगत लोग थे, सिद्धांतवादी लोग थे, उचित है कि कोई नाव से नदी पार करें, लेकिन यह भी उचित है कि नाव को नदी के किनारे छोड़े और अपने रास्ते पर चला जाए। जिंदगी में सब सिद्धांत पार करने और छोड़ने योग्य हैं। कोई सिद्धांत ऐसा नहीं है जो कि सिर पर ढोने की जरूरत हो, लेकिन सिद्धांतवादी यही करता है। वह सिद्धांतों का इतना ढेर अपने सिर पर रख लेता है, कि फिर चलना ही मुश्किल हो जाता है।
हमारे देश में ऐसा-ऐसा हुआ है, हजारों-हजारों साल की परंपरा के सिद्धांत भी हमारे सिर पर हैं, उन सबको लिए हम बैठे हैं। चलना मुश्किल हो गया है, कदम उठाना मुश्किल है, लेकिन सिद्धांतों को नीचे उतारना मुश्किल है। मैं बिल्कुल ही गैर-सिद्धांतवादी हूं, मैं किसी सिद्धांत को नहीं मानता हूं। कारण? कारण कि मैं जीवन को मानता हूं। और जीवन जहां ले जाए, उसके साथ जाने के साहस को मानता हूं।
निश्चित ही मनुष्य के पास विवेक, विचार, जिंदगी जहां ले जाए, उसे खोजना चाहिए, वहां जाने योग्य है, तो दुबारा जाए। हजार बार जाए, नहीं जाने योग्य है तो दुबारा न जाए, कभी न जाए। लेकिन आज जो जाने योग्य है कल नहीं जाने योग्य हो सकता है। और जो कल तक न जाने योग्य था, वह आज जाने योग्य हो सकता है। इसलिए जिंदगी में लोच चाहिए, जिंदगी में तरलता चाहिए, लिक्विडिटी चाहिए। जिंदगी ऐसे चाहिए जैसे हम पानी हों, गिलास में रखें तो वह गिलास की शक्ल ले ले। लोटे में रखें तो लोटे की शक्ल ले ले। नदी में डालो तो नदी बन जाए। सागर में डालो तो सागर बन जाए। लेकिन हम पानी की तरह नहीं हैं। हम पत्थर की, बर्फ की तरह हैं। सख्त, सालिड, मजबूत अगर पत्थर के बर्फ के टुकड़े को गिलास में डालो तो संघर्ष शुरू हो जाता है। गिलास, पत्थर के बर्फ में लड़ाई शुरू हो जाती है। पत्थर का टुकड़ा, बर्फ का टुकड़ा इनकार करता है, कि हम गिलास की शक्ल कैसे ले सकते हैं, उसमें लोच नहीं है। लेकिन पानी में एक लोच है। असल में जितना आदमी बुढ़ा होता जाता है, उतनी लोच कम हो जाती है। जैसे-जैसे आदमी बूढ़ा होता है, फरोजन हो जाता है। पत्थर का बर्फ हो जाता है। बच्चे में लोच होती है, तरलता होती है, जवान भी बहुत सी तरलता खोने लगता है। बूढ़ा सब तरलता खो देता है। और अगर कोई आदमी अपने मरने के क्षण तक तरल रह सके तो उसने जवानी नहीं खोई। शरीर बूढ़ा हो गया होगा। लेकिन वह आदमी बूढ़ा नहीं हुआ है। अगर मरते दम तक कोई सीखन की क्षमता रख सके तो वह आदमी कभी भी बूढ़ा नहीं हो सकता है। शरीर बूढ़ा होता है, स्नायु बूढ़े हो जाते हैं, हड्डियां बूढ़ी हो जाती हैं, लेकिन आत्मा बूढ़ी नहीं हो पाती। और धन्य हैं वे लोग जो अपनी आत्मा को बूढ़े होने से बचा लेते हैं। ऐसे आदमियों को मैं धार्मिक आदमी कहता हूं। सिद्धांतवादियों को कभी भी नहीं, क्योंकि वे तो जवान होने के पहले ही बूढ़े हो जाते हैं। उनका सब सख्त हो जाता है। उनकी छाती पर लोहे के कवच बैठ जाते हैं। हिलना डुलना मुश्किल हो जाता है। जरा सा हिलने में डर लगता है। फिर वे लकड़ी जैसे सख्त कठोर खड़े रह जाते हैं। वे सिर्फ मरने की प्रतीक्षा करते हैं। और सच तो यह है कि मौत को उन्हें मारना नहीं पड़ रहा है। वे मौत के बहुत आने के पहले ही मर जाते हैं। बहुत कम लोग हैं जिनके मरने और दफनाए जाने का दिन एक ही होता हो। अधिकतर लोगों के मरने और दफनाने में चालीस से पचास साल का फासला होता है। कई बीस साल की उम्र में लोग मर जाते हैं, और सत्तर साल के आस-पास दफनाए जाते हैं। पचास साल का फासला पड़ जाता है। मरने और दफनाए जाने का क्षण अगर एक ही है तो वह आदमी जिंदा था और जवान था।
जिंदगी का तीसरा सूत्र आपसे मैं कहना चाहता हूंः वह है नित्य युवा होना है, सदा युवा होना, अर्थात सदा तरल होना, रोज खोजना, रोज जीना, कल के लिए तय नहीं करना कि कल भी ऐसा ही जीऊंगा, आने दे जिंदगी को, अज्ञात जिंदगी से इतना बैर क्या है? इतने डरते क्यों हैं? कल जो लाएगा उसे देखेंगे। कल जो

आएगा, उसे समझेंगे कल जो जिंदगी में घटेगा, उस भांति जिंदगी जीएंगे। ध्यान रहे जो आदमी कल के लिए आज ही निश्चय कर लेता है, उसका विवेक क्षीण हो जाता है। उसकी बुद्धि कुंठित हो जाती है। क्यों, क्योंकि उसे कल बुद्धि की फिर जरूरत ही नहीं रह जाती। तय तो आज ही कर लिया सारी जिंंदगी के लिए। और जिस चीज की जरूरत नहीं रह जाती वह धीरे-धीरे कुंठित हो जाती है।
लेकिन जो आदमी निरंतर असुरक्षा में जीता है, इनसिक्युरिटी में जीता है, और जो जानता है कि कल क्या लाएगा कुछ भी पता नहीं, कल क्या होगा कुछ भी ज्ञात नहीं, उसे अपनी बुद्धि को सतत सजग रखना पड़ता है। शायद हम खतरे में ही सजग होते हैं। साधरणतया हम सोए रहते हैं। अगर मैं आपकी छाती पर छुरा रख दूं तो एक क्षण में आप इतने जागेंगे जितने आप कभी जागे ही न हों। एक क्षण में आप अंतःकरण की आखिरी सीमा तक जाग जाएंगे। एक क्षण में छुरा होगा आप होगे और सब बंद हो जाएगा। सब विचार, सब खयाल, सब सिद्धांत, उस क्षण में आप हिंदू नहीं होंगे, उस क्षण में आप मुसलमान नहीं होंगे। उस क्षण न आपके भीतर कुरान होगा न गीता होगी। उस क्षण में आपके भीतर विचार भी नहीं होगा। उस क्षण में आपके भीतर होगा ज्ञान। उस क्षण में आप सिर्फ जागे हुए, एक क्षण को रुके रह जाएंगे और पूरे प्राण जग जाएंगे, क्यों? क्योंकि इतने संकट के क्षण में सोया रहना खतरनाक है। इतने संकट के क्षण में पूरे प्राणों को जागना जरूरी है। ताकि हम कुछ कर सकें कि अब क्या करना है। और छुरे रखने की घटना रोज नहीं घटती कि पहले ही सिद्धांत बनाया हो कि क्या करना चाहिए। छुरे रखने की घटनाएं पहले से खबर देकर नहीं आतीं। पहले से तार चिट्ठी नहीं चलती उनकी। वे अचानक आकस्मिक आकर खड़ी हो जाती हैं। तो जब छुरा छाती पर कोई रख देता है तब आपको जागना पड़ता है, क्योंकि पूर्वनिर्मित लोह-पथ नहीं होते। पहले से निर्मित लोहे की पटरियां नहीं होतीं कि अब क्या करूं? स्कूल में सीखे हुए सिद्धांत नहीं होते कि क्या उत्तर दूं? कुछ पक्का नहीं होता। चूंकि कुछ पक्का नहीं होता इसलिए बुद्धि को जाग कर देखना पड़ता है कि क्या करें? और जब क्या करने का सवाल उठता है और बुद्धि के पास रेडीमेट जवाब नहीं होते तो बुद्धि अपने पूरे निखार में, अपने पूरे जागरण में, अपनी पूरी तीव्रता में उपस्थित होती है।
जो आदमी चौबीस घंटे ऐसे ही खतरे और असुरक्षा में जीता है उसकी आत्मा में चमक आ जाती है। ऐसी चमक, जिस चमक का हमें कोई भी पता नहीं। जो आदमी चौबीस घंटे भाव से जीता है कि अगली घड़ी क्या लाएगी मुझे पता नहीं। मैं पहले से कैसे तय करूं, जो आएगा उसको रिस्पांड करूंगा। जो आएगा उसके साथ संवाद करूंगा, जो होगा, हो सकेगा, वह हो जाएगा। ऐसा आदमी चौबीस घंटे जागा हुआ जीता है। उसके भीतर विवेक पैदा होता है।
सिद्धांतवादी के भीतर विवेक कभी पैदा नहीं होता। क्योंकि उसके पास हर परिस्थिति का उत्तर पहले से तैयार है, उसे किसी परिस्थिति को कोई उत्तर देने के लिए अब सोचने की कोई जरूरत नहीं। उसका विवेक मर जाता है इस सूत्र को खयाल में रख लें, अगर अपने विवेक को जगाना है तो असुरक्षा में जीएं, खतरे में जीएं। नीत्शे ने अपनी टेबल पर एक वाक्य लिख रखा था। छोटे से दो शब्द थे, लेकिन बड़े कीमती। और सभी धार्मिक आदमियों को समझ लेने जैसा है। उसने लिख रखा था-लिव डेंजरसली, खतरनाक ढंग से जीओ। लेकिन खतरनाक ढंग से जीने का क्या मतलब होगा? जहर पीओ, खतरनाक ढंग से जीने का क्या मतलब होता है? वृक्षों के ऊपर मकान बनाओ। खतरनाक ढंग से जीने का मतलब क्या होता है? सड़क पर सो जाओ, खतरनाक ढंग से जीने का क्या मतलब होता है? कि जब वह लाल राक्षस जैसी घूमती हुई बसें जोर से हार्न बजाएं तो खड़े रहो, हटो मत।
नहीं, खतरनाक ढंग से जीने का यह मतलब नहीं होता। खतरनाक ढंग से जीने
से एक ही मतलब होता है कि, सुरक्षा में मत जीओ। सुरक्षा का इंतजाम मत करो। बंधे हुए सिद्धांतों से बचो, जीओ खतरनाक ढंग से जीने का मतलब है जीओ, जीने को पहले से नियोजित मत करो। उसके लिए फाइव ईयर प्लान मत बनाओ। जीने के लिए, अपने जीने के लिए कोई पूर्ववद्ध योजना मत करो। कोई पहले सक्त ढांचा मत बनाओ जिसमें कि जीना है जीओ सीधे और पाओ, और जहां जिंदगी है वहां संघर्ष है। और जो संघर्ष से निकले, उसमें आगे बढ़ो। इसका एक ही परिणाम होता है कि विवेक जाग्रत होता है, और जहां विवेक जगा वहां आत्मा का अनुभव शुरू हो जाता है। और जहां विवेक अपनी पूर्णता में जगता है वहां परमात्मा की झलक

मिलनी शुरू हो जाती है। जितनी ज्यादा सुरक्षा, उतनी ही आत्मा का कोई पता नहीं चलेगा। सुरक्षावादी शरीरवादी होता है। सिद्धांतवादी शरीरवादी होता है। हां, आत्मा का अनुभव उसे कभी नहीं हो पाता। जैसे ही आत्मा की चमक पैदा होती है भीतर, जो कि हो ही जाती है जैसे हम छुरी को पत्थर पर घिसें और और उसमें धार आ जाए, ऐसा ही जो आदमी रोज जिंदगी की नई-नई परिस्थितियों से टक्कर लेता रहता है, उसके विवेक में धार आ जाती है। उस धार और चमक के परिणाम हैं। वही प्रतिभा है, वही जीनियस है। वही आभा है, वही हम जिसे कहें कि व्यक्ति के मुखमंडल के चारों ओर जो प्रकाश घेर लेता है, वह उसी पैनी धार की चमक है। उस चमक को पाए बिना कोई आदमी परमात्मा को नहींं पा सकता।
ये मरे हुए लोग परमात्मा को नहीं पा सकते। जो चारों तरफ सिद्धांत की गठरी बांध कर जी रहे हैं, बिल्कुल सुरक्षित। जिन्हें स्वर्ग-नरक का भी पता है, मोक्ष का भी पता है; जिन्हें यह भी पता है कि क्या करने से नरक जाएंगे और क्या करने से स्वर्ग जाएंगे। जो एक-एक कौड़ी का हिसाब करके कैल्कुलेशन करके जी रहे हैं। जो एक पैसा भिखमंगे को दे रहें हैं, तो बही में लिख रहे हैं कि स्वर्ग में इंतजाम करना है कि एक पैसा भिखमंगे को दिया। एक चार दाने किसी गरीब को दिए हैं तो जाकर भगवान से बदला ले लेना। जो इस भांति जी रहे हैं इन मरे हुए लोगों के लिए, कोई मोक्ष नहीं है। इन मरे हुए लोगों के लिए कोई भगवान नहीं हो सकता। असल में जहां कैलकुलेशन है, जहां गणित है, वहां जिंदगी नहीं होती। जिंदगी के रास्ते गणित-मुक्त, जिंदगी के रास्ते तर्क-मुक्त, जिंदगी बड़ी बेतर्क है। जिंदगी है तर्कातीत। जिंदगी के गणित कुछ और ही हैं। जो हमारे हिसाब से नहीं चलते। इसलिए आदमी कपड़ा कितना पहनना है कि कहीं नरक न चला जाऊं, खाना कितना खाना है, कि कहीं नरक न चला जाऊं क्या बोलना है क्या नहीं बोलना, कैसे उठना, कैसे बैठना, इस भांति सब तरह से जोड़- करके जी रहा है। इस गरीब आदमी काेनरक में भी जगह मिल जाए तो बहुत है। इस गरीब आदमी को कहीं भी जगह नहीं मिल सकती। यह बहुत दीनहीन है। यह जी ही नहीं रहा है।
मैंने सुना है कि एक आदमी मरने के करीब था, आखिरी घड़ी थी, और एक पुरोहित उसे अंतिम पश्चाताप करवाने के लिए गया। और उस पुरोहित ने उससे कहा कि अब तू पश्चाताप कर, रिपेंट पश्चाताप कर, तूने कोई पाप किए हों, उनके लिए भगवान से क्षमा मांग। आखिरी क्षण में उस आदमी ने आंख खोली और उसने कहा कि मैं सिर्फ एक ही पश्चाताप कर सकता हूं कि मैं जीया नहीं। मैने जीवन, जीने के इंतजाम में गवां लिया। मैं और कोई पश्चाताप नहीं कर सकता। और मुझे क्षमा करो मैं तुम्हारे भगवान से कोई क्षमा नहीं मांगूंगा। क्योंकि फिर मैं मौत को जीने से वंचित रह जाऊंगा। अब मुझे मरने दो। जानते हुए, जागे हुए, बिना डरे हुए, अब मैं मौत को जी लूं। जीवन को तो नहीं जी पाया अब मैं मौत को ही देख लूं, फेस टू फेस। आमने-सामने से कि मौत क्या है, जिंदगी को तो नहीं देख पाया। जिंदगी जब सामने थी, तब मैं बही-खाते पर हिसाब लगा रहा था कि कैसे जीऊं, जिंदगी गुजरती गई, मैं हिसाब लगाता रहा। हिसाब कभी काम न पड़े क्योंकि जिंदगी के काम कोई भी हिसाब नहीं पड़ते। आपके सब हिसाबों को जिंदगी डगमगा देगी। मैं भी आपसे यही कहना चाहूंगा।
और दूसरी बात इस संबंध में यह कि जिस आदमी का विवेक जग जाता है, उसे
कभी पश्चाताप नहीं करना पड़ता है। क्योंकि जैसा वह जी सकता था, जी लिया है। पश्चाताप किस बात का? अगर कल मैंने आप पर क्रोध किया, और यह पूरा जानते हुए किया, यह जानते हुए किया कि मैं क्रोध कर रहा हूँ, मुझे लगा कि क्रोध करना ही उचित है। अगर मैंने इस पूरी स्वीकृति के साथ क्रोध किया है तो आज मैं उसके लिए पश्चात्ताप नहीं करूंगा। क्योंकि मैं जानता हूं कि जो मुझसे हो सकता था वही हुआ है। लेकिन नहीं, क्रोध के पहले मैं सोचता था कि क्षमा धर्म है और क्रोध पाप, फिर क्रोध किया, फिर क्रोध के बाद सोचने लगा कि बड़ा बुरा काम हो गया है। क्षमा तो धर्म होती है और मैंने पाप कर लिया। तब पश्चात्ताप पकड़ता है। धार्मिक आदमी पछताता ही नहीं है क्योंकि धार्मिक आदमी जो भी करता है, उसे समग्रता से करता है। अगर वह बुरा भी करता है, तो वह समग्रता से करता है। और जब समग्रता से करता है तो बुरे के बाहर हो जाता है। पछताता नहीं है। बाहर हो जाता है। अगर मेरे क्रोध ने मुझे दुख दिया तो मैं बाहर हो जाऊंगा, लेकिन पछताऊंगा नहीं। बल्कि धन्यवाद ही दूंगा उस क्रोध

को। क्योंकि अगर मैं उस समय कर पाता तो शायद मैं उसके बाहर भी न हो पाता। उसने मुझे एक मौका दिया कि मैं क्रोध के बाहर हो सकूं। और मैं आपसे भी क्षमा मांगने नहीं आऊंगा कि मैंने आप पर क्रोध किया। आपको धन्यवाद देने आऊंगा कि आपने अच्छा मौका उपस्थित कर दिया कि मैं क्रोध कर पाया। क्योंकि आप मौका उपस्थित न करते तो शायद इस क्रोध से मेरा कभी छुटकारा न होता। धार्मिक आदमी पछताता ही नहीं, धार्मिक आदमी प्रत्येक पश्चात्ताप के क्षण को भी उपलब्धि का क्षण बना लेता है। क्योंकि वह पूरी तरह जीता है। इसलिए जो भी जीता है वह उसकी अनुभूति का हिस्सा हो जाता है। और जो भी हमारी अनुभूति का हिस्सा हो जाता है उसे सिद्धांत नहीं बनाना पड़ता वह अनजाने चुपचाप हमारे भीतर काम करने लगता है। वह हमारे मन की नस-नस में, रोएं-रोएं में व्याप्त हो जाता है। जब आपका हाथ आग में जल जाता है तो आपको यह सिद्धांत नहीं बनाना पड़ता कि दुबारा मैं आग में हाथ नहीं डालूंगा। अब मैं पक्का सिद्धांत करता हूं कि आग में हाथ डालना बुरा ही नहीं, आग में हाथ जल जाता है तो, आपके प्राण-प्राण के कोने तक कोई बात पहुंच जाती है; जो आग में हाथ डालने से रोकने लगती है। सिद्धांत की कोई जरूरत नहीं होती। और अगर कोई आदमी का आग में हाथ जला हो तो वह कहे कि अब मैं सिद्धांत पक्का करता हूं कि आग में हाथ न डालूंगा, तो समझना कि हाथ जलाना होगा इसलिए सिद्धांत बनाना पड़ रहा है। सिद्धांत सिर्फ अनुभवहीन को बनाना पड़ता है। जहां अनुभव है वहां सिद्धांत बनाने की कोई भी जरूरत नहीं है। जीऐं, इसलिए मैं कहूंगा कि ये मत पूछें कि कैसे जीएं? जीएं, निर्भय होकर जीएं, सारे भय छोड़ कर जीएं, पाप का भय न रखें, पुण्य की आकांक्षा न रखें, जीएं पूरी तरह और जब आप पूरी तरह जीएंगे तो आप पाएंगे कि आपकी नौका पुण्य के किनारे के तरफ बहने लगी है, और पाप के किनारे से हटने लगी है और अगर आप पाप के किनारे से डर कर जीए, तो ध्यान रहे कि जिससे हम डर कर जीते हैं, उसमें आकर्षण पैदा हो जाता है। पाप का किनारा बुलाएगा कि कभी-कभी आ जाया करो, जब सूरज ढल जाए और जब अंधेरा हो जाए और जब रात का पर्दा छा जाए। कभी-कभी आ जाया करो। पुण्य बड़ा रूखा है। जो पाप से डर कर जीएगा, अंधेरे के रास्तों से पाप उसे बुलाता ही रहेगा, उसका पाप का आकर्षण कभी भी नहीं खो सकता। असल में हम भयभीत ही उससे होते हैं जिससे हम आकर्षित होते हैं। साधु-संन्यासी सदा ही स्त्री से भयभीत रहे क्योंकि वे स्त्री से आकर्षित हैं। जहां आकर्षण है वहां भय है क्योंकि वहां हमले का डर है। वहां डर है कि कहीं स्त्री हमला न कर दे।
मैंने सुना है कि चीन में एक वृद्ध महिला ने एक संन्यासी की तीस वर्षों तक सेवा की। तीस वर्षों तक निरंतर। जब वह संन्यासी युवा था, तबसे उसने सेवा की। फिर वह संन्यासी भी बूढ़ा हो गया। साठ वर्ष का हो गया और वह स्त्री कोई नब्बे वर्ष की हो गई। मरने के करीब आ गई तो एक रात उसने गांव की वेश्या को बुलाया और उस वेश्या को बुला कर कहाः अब मैं मरने के करीब हूं, एक बात जानने से रह गई, तू कृपा कर, थोड़ा सा मेरे लिए काम कर दे। मैं जिस संन्यासी की सेवा करती हूं, और गांव के बाहर जो मैंने झोपड़ा बनाया है, आज रात बारह बजे के बाद तू उस झोंपड़े में चली जा। जाकर तू संन्यासी को गले से ही लगा लेना। और वह क्या कहता है, क्या करता है, क्या बोलता है, उसे ध्यानपूर्वक सुन कर मुझे खबर कर देना। कुछ और नहीं करना है। बस गले से लगा लेना है वह क्या कहता है, क्या बोलता है, क्या व्यवहार करता है, वह मुझे कह देना। वह वेश्या गई, वह संन्यासी बारह बजे अपने द्वार अटका कर रात्रि के अंतिम ध्यान के लिए बैठा था। उस वेश्या ने दरवाजा खोला। निर्जन, एकांत अंधेरी रात थी। गांव के बाहर वह झोपड़ी। दरवाजा खुलते देख कर संन्यासी का ध्यान... आंख खोली, देखा, गांव की वेश्या है। सुंदर सज-धज कर सामने खड़ी है। वह संन्यासी चिल्लाया कि वेश्या! नरक का द्वार, तू यहां कैसे? बाहर निकल। लेकिन वह वेश्या तो उसकी तरफ बढ़ती चली गई। वह घबड़ाया, वह उठ कर खड़ा हो गया, वह कोने में भाग कर छिपने की कोशिश करने लगा। एक ही दरवाजा था और उस पर वेश्या खड़ी। और वह वेश्या उसकी तरफ बढ़ने लगी। वह संन्यासी हाथ जोड़ने लगा कि तू यह क्या कर रही है? मैं तुझे माता मानता हूं। ये सब भय की बाते हैं, ये माता मानने वाले, बहन मानने वाले, बेटी मानने वाले, सब भयभीत हैं। वह हाथ जोड़ने लगा, उसने आंख बंद कर ली कि हे भगवान! मेरी रक्षा करो! उस वेश्या ने जाकर उसको गले से लगा लिया। उसका सारा शरीर आग सा जल रहा था। सारे शरीर

पर बुखार था। उसके हाथ-पैर कंप रहे थे। वेश्या ने आकर उस बुढ़िया को कहा कि ऐसा-ऐसा हुआ। उस बुढ़िया ने कहा कि मैंने व्यर्थ ही उस आदमी की तीस साल सेवा की। व्यर्थ की। अभी वह कामवासना के ऊपर भी नहीं जा सका।
जिससे हम भयभीत हैं उससे हम आकर्षित होते हैं। जितने हम भयभीत होते
हैं उतने आकर्षित होते हैं। कभी आपने नए सिक्खड़ को साइकिल चलाते हुए देखा। साइकिल सीखता है, वह सात फीट चौंड़े रास्ते पर भी जहां कोई न हो, निर्जन रास्ता हो, नये आदमी को साइकिल सिखाई कभी आपने? उसे साइकिल पर बिठा देना। रास्ते के किनारे वह मील का पत्थर लगा है, वह उसे एकदम दिखाई पड़ना शुरू होता है, कि कहीं इससे टकरा न जाऊं। सात फीट चौड़ा रास्ता नहीं दिखता। अगर आदमी निशाना लगा कर भी पत्थर से टकराना चाहे तो भी संभावना कम है। लेकिन यह आदमी सात फीट चौड़े रास्ते को नहीं देखता। इसे दिखाई पड़ता है, भय के कारण, वह पत्थर मील का कहीं इससे टकरा न जाऊं। और बस तब जिस मील के पत्थर से वह भयभीत हो गया, उसकी आंखें उसी पत्थर पर टिक जाती है, और रास्ता खो जाता है। और उसके साइकिल का हैंडल उस पत्थर की तरफ मुड़ना शुरू हो जाता है। जितना पत्थर की तरफ हैंडल मुड़ता है उतना वह घबड़ाता है कि कहीं मैं टकरा न जाऊं। जितना वह घबड़ाता है, उतना रास्ता खोता है और मील का पत्थर ही रह जाता है। फिर जो शेष रह जाता है उससे टकराने के सिवाय कोई उपाय ही नहीं रह जाता है, वह जाकर टकरा जाता है।
आप यह मत समझना कि मील के पत्थर नये सिक्खड़ साइकिल सीखने वाले के दुश्मन हैं। और यह मत समझना कि वे कोई नरक के द्वार हैं। मील के पत्थरों को आपसे क्या लेना-देना कि आप साइकिल सीख रहे हैं कि नहीं। मील के पत्थर का कोई भी हाथ नहीं है इस बात में, आप ही जिम्मेवार हैं। आपका भय ही आपके हाथों को मोड़ देता है। भय भी एक तरह का सम्मोहन पैदा करता है, एक तरह की हिप्नोसिस पैदा करता है। जिससे हम भयभीत हो जाते हैं, उससे हम सम्मोहित हो जाते हैं। सम्मोहित होकर हम उसकी तरफ दौड़ने लगते हैं।
बड़े मजे की बात है, संन्यासी कहते हैं कि स्त्री नरक का द्वार है। कोई उनसे पूछे कि स्त्री अगर नरक का द्वार है तो भी तुमसे कौन कहता है कि उस द्वार से गुजरो। और कोई उनसे पूछे कि अगर स्त्री नरक द्वार है भी तो स्त्री तो नरक जा ही न सकेगी। उसके लिए दरवाजा कहां! खुद दरवाजे तो कहीं नहीं जाते। तब तो पक्का मानों कि नरक में अब तक कोई स्त्री न पहुंची होगी, सिर्फ पुरुष ही पहुंचे होंगे। और खासकर संन्यासी तो पहुंच ही गए होंगे। क्योंकि नरक का द्वार उनके लिए मील का पत्थर बन जाता है। वे जितने जोर से राम-राम करते हैं, उतने जोर से भीतर ही स्त्रियां उन्हें सताना शुरू कर देती हैं। और अगर स्त्री नरक का द्वार है, तो पुरुष कौन है? पुरुष नरक का द्वार नहीं है? स्त्री के लिए पुरुष नरक का द्वार हो जाता है। वह तो स्त्री-संन्यासियों ने बहुत ग्रंथ नहीं लिखें नही तो यह हो जाता। वह तो स्त्री संन्यासिनियां बहुत कम हुईं। असल में स्त्री के मन में जीवन को जीने की इतनी अदम्य कामना होती है, कि अब तक भी स्त्री ठीक-ठीक संन्यासिनी नहीं हो सकी है। शायद स्त्री का मन जीवन के ज्यादा निकट है। पुरुष का मन मृत्यु के ज्यादा निकट है। शायद स्त्री जीवन के प्रति इतने आनंद से भरी है कि उसे छोड़ने जैसा जीवन नहीं मालूम पड़ता। और अगर परमात्मा आएगा भी तो वह जीवन के रस से ही आएगा। इसलिए स्त्रियों ने कोई ऐसी किताबें नहीं लिखीं, लेकिन कुछ स्त्रियां संन्यासिनियां हैं।
एक स्त्री संन्यासिन को मैं जानता हूं। और एक पुरुष संन्यासी को भी जानता हूं, वे दोनो कभी-कभी मिलते रहते हैं। उन्होंने एक संस्मरण लिखा है, वह मुझे बहुत हैरानी का मालूम पड़ा। स्वामी अखंडानंद और मां आनंदमयी। स्वामी अखंडानंद ने एक संस्मरण लिखा हैः कि वह आनंदमयी को माता कहते हैं और आनंदमयी जब उनको मिलती हैं, तो उनको पिता कहती हैं। उन दोनों की बातचीत बड़ी जोरदार चलती होंगी। वे कहते हैं, माताजी, वे कहती हैं, पिताजी। कौन सा भय आदमी को सता रहा है? असल में किसी स्त्री को माता कह कर हमने एक बैरियर खड़ा कर दिया। किसी स्त्री को मां कह कर, हम ये कह रहे हैं कि ठीक। अब हमारे बीच स्त्री पुरुष का होना हम मिटा रहे हैं। अब हम निर्भय होकर थोड़ी बात कर सकते हैं क्योंकि तुम मेरी मां हो। अब इतना डर नहीं रहा स्त्री कह रही है कि अब तुम मेरे पिता हो, अब इतना डर नहीं रहा। लेकिन इतना डर क्यों।

स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष है। उनके बीच जो पवित्रतम संबंध हो सकता है, वह मित्रता का हो सकता है। लेकिन स्त्री-पुरुष के बीच मित्रता का कोई संबंध होता ही नहीं। हम होने नहीं देते। या तो उसे पत्नी होना चाहिए, या उसे मां होना चाहिए या उसे बेटी होना चाहिए। किसी भी हालत में उसे किसी सेक्सुअल रिलेशनशिप में होना चाहिए। और जो अध्यात्मवादी कौमें हैं वे कहती हैं कि मां बनाओ, बहन बनाओ, बेटी बनाओ या पत्नी बनाओ, मित्रता का कोई नाता स्त्री पुरुष में नहीं हो सकता। मित्रता खतरनाक है। ये सब संबंध सेक्सुअल हैं। मां का मतलब है, मेरे पिता की पत्नी। पिता का मतलब है मेरी मां का पति। बहन का मतलब है, एक ही योनि मार्ग से आए हुए दो व्यक्ति। बेटी का मतलब है, मेरी पत्नी से पैदा हुई। मां, बहन, बेटी, पत्नी ये सारे संग-संबंध सेक्सुअल और कामुक हैं। ये सब यौनजन्य हैं। ये जो डरे हुए लोग हैं, ये इसमें कहते हैं कि कुछ भी निर्णय पक्का कर लो। मित्रता भर, एक अयौनज, एक नॉन-सेक्सुअल संबंध है। मित्रता का लेकिन कोई उपाय नहीं। अगर आप एक स्त्री के साथ जा रहे हो रास्ते पर, कोई मित्र मिले और यह न पूछे, यह कौन? आध्यात्मिक मुल्क में यह असंभव है। स्त्री आपके साथ हो, और पहला सवाल यह न हो कि यह कौन? अगर आप कह दें कि पत्नी है, तो बड़ी आश्चर्य की घटना है। अगर आप बता दें कि पत्नी है, तो यह खयाल ही नहीं आता कि इन दोनों के बीच में कोई काम का संबंध होगा। बात खत्म हो गई। अगर आप कह दें कि मित्र है तो बेचैनी शुरू हो गई। तब तत्काल खयाल आता है कि दोनो के बीच कुछ गलत संबंध होने चाहिएं। मित्रता भर गलत संबंध है। पति-पत्नी के बीच भी खयाल नहीं आता कि इनके बीच कोई काम संबंध होगा। जब कि पति-पत्नी का मतलब ही यह है कि सोसाइटी सेंकशंस सेक्सुअल रिलेशनशिप। यह समाज के द्वारा स्वीकृत काम संबंध है। लाइसेंस। लेकिन यह खयाल नहीं आता। क्योंकि लाइसेंस के अंतर्गत जो भी हो रहा है, हम उसे बड़े आनंद से स्वीकार करते हैं। लेकिन मित्रता जो कि हो सकता है कि काम संबंध न हो, सिर्फ मित्रता ही एक संबंध है जो काम संबंध नहीं है। लेकिन फ्रेंडशिप, मित्रता का कोई उपाय नहीं है। ये भयभीत लोगों ने जो दुनिया बनाई है। जिंदगी से भयभीत लोगों ने जो सिद्धांत बनाए हैं, जिंदगी से भयभीत लोगों ने जो साधना से जो पद्धतियां बनाई हैं, ये कहीं भी नहीं ले जातीं। और गहरे। और गहरे भय में उतार देती हैं। और अंततः आदमी को कंपता हुआ, डरता हुआ छोड़ देती हैं। डरे हुए आदमी के अतिरिक्त नरक कहीं भी नहीं है। एक मित्र ने पूछा है कि स्वर्ग और नरक की आपकी क्या परिभाषा है? तो मैं आपसे कहता हूं कि डरे हुए आदमी के अतिरिक्त नरक कहीं भी नहीं है। निर्भय आदमी के अतिरिक्त स्वर्ग कहीं भी नहीं है। पूर्ण अभय में जो प्रतिष्ठित है वह स्वर्ग में है। पूर्ण भय में जो प्रतिष्ठित है वह नरक में है। और भयभीत होने के लिए सुगम उपाय तथाकथित धार्मिक लोगों ने खोज रखे हैं। सब चीजों से डरवा दिया है। स्वाद मत लेना भोजन करो। अगर भोजन किया और स्वाद लिया तो नरक जाओगे। अस्वाद चाहिए। गांधीजी के व्रतों में एक है, अस्वाद। भोजन करना लेकिन स्वाद मत लेना। बड़े मजे की बात है। सिर्फ पशु हैं, जानवर हैं, जो भोजन करें और स्वाद न लें। मनुष्य के विकास का अनिवार्य हिस्सा है, कि वह स्वाद भी ले सकता है। कोई पशु स्वाद नहीं ले सकता। सिर्फ चरता है भोजन करता है। जो लोग अस्वाद साधेंगे वे अपने को पशु के तल पर नीचे उतार देंगे, नहीं। अस्वाद नहीं साधा जा सकता। अस्वाद आता है पूर्ण स्वाद के फलस्वरूप।
अगर कोई व्यक्ति किसी चीज में पूरे स्वाद को ले सके तो तृप्त हो जाए, वही तृप्ति अस्वाद बन जाती है; फिर स्वाद की आकांक्षा नहीं रह जाती। फिर स्वाद के पीछे दौड़ नहीं रह जाती। फिर स्वाद के पीछे तृष्णा नहीं रह जाती। फिर स्वाद के पीछे वासना नहीं रह जाती। जिसे हम जान लेते हैं, जिसे हम भोग लेते हैं उससे हम मुक्त हो जाते हैं। मैं आपसे कहूंगा, लेना पूर्ण स्वाद, अगर व्रत ही लेना हो तो लेना पूर्ण स्वाद का। कि स्वाद लूंगा तो स्वाद ही लूंगा और पूरा लूंगा और जब स्वाद ले रहा होऊंगा तो सब भूल जाऊंगा--जगत, दुकान, बाजार, ज्ञान, गीता, कुरान, सब भूल जाऊंगा। जब स्वाद लूंगा तो अपनी जीभ पर ही आ जाऊंगा। सारी चेतना वहीं ले आऊंगा। सारी आत्मा स्वाद ले सकेगी। तो आप स्वाद के बाहर हो गए। अगर स्त्री आकर्षित करती हो तो भागना मत, अगर पुरुष आकर्षित करता हो तो पीठ मत दिखाना। असल में युद्धों से भागे

हुए लोगों को हम कोई सम्मान नहीं देते। लेकिन जीवन के युद्ध से भागे हुए लोगों को बहुत सम्मान देते हैं।
एक मित्र ने मुझे आकर कहा कि एक महात्मा हैं, उनका नाम है, रणछोड़दास जी। एक मित्र ने आकर मुझसे कहा कि आप एक संन्यासी को जानते हैं, रणछोड़दास जी को?
मैंने कहाः मैं जितने संन्यासियों को जानता हूं, सभी रणछोड़दास जी हैं। रणछोड़दास का मतलब समझते हैं?

मैं कौन हूं?
ग्यारहवां प्रवचन

मैं विज्ञान की भाषा में बोल रहा हूं

एक मित्र ने पूछा हैः साधु, संन्यासी, योगी, वर्षों गुफाओं में बैठ कर ध्यान को उपलब्ध होते रहे हैं। और आप कहते हैं कि चालीस मिनट में भी ध्यान संभव है। क्या ध्यान इतना सरल है?

इस संबंध में दो-तीन बातें समझने योग्य हैं। एक तो आज से दस हजार साल पहले आदमी पैदल चलता था। पांच हजार साल पहले बैलगाड़ी से चलना शुरू किया। अब वह जेट-यान से उड़ता है। जैसे हमने जमीन पर चलने में विकास किया है वैसे ही चेतना में जो गति है उसके साधन में भी विकास होना चाहिए। तो वह भी एक गति है। आज से पांच हजार साल पहले अगर किसी को ध्यान उपलब्ध करने में वर्षों श्रम उठाना पड़ता था, तो उसका कारण ध्यान की कठिनाई न थी। उसका कारण ध्यान तक पहुंचने वाले साधनों की--बैलगाड़ी चलने की या पैदल चलने की शक्ल थी। मनुष्य जिस दिन अंतरात्मा के संबंध में वैज्ञानिक हो उठेगा, उस दिन शायद क्षण भर में भी ज्ञान पाया जा सकता है। क्योंकि ध्यान को पाने का समय से कोई भी संबंध नहीं है। समय से संबंध हमेशा साधन का होता है, ध्यान का नहीं होता। आप जिस मंजिल पर पहुंचते हैं उस मंजिल पर पहुंचने का कोई संबंध समय से नहीं होता। संबंध होता है रास्ते पर किस साधन से आप यात्रा करते हों।
उसका अगर कोई कहे कि पहले हम दिल्ली वर्ष भर पैदल चल कर पहुंचते थे।
उस वर्ष भर चलने से दिल्ली पहुंचने का कोई संबंध न था, आपके पैदल चलने से वर्ष भर का संबंध था। फिर बैलगाड़ी से आप तीन महीने में पहुंचने लगे, तब भी दिल्ली का संबंध तीन महीने से नहीं था। तीन महीने का संबंध आपकी बैलगाड़ी से है। और आप अगर अब आधा घंटे में पहुंच जाते हैं, तब भी दिल्ली पहुंचने का संबंध आपसे आधा घंटे का नहीं है। अब आप जिस यान का उपयोग कर रहे हैं वह आधा घंटे में पहुंच जाता है। कोई आश्चर्य नहीं कि कल हम आधा मिनट में भी पहुंच सकें। और कोई आश्चर्य नहीं कि आधा सेकेंड लगना भी किसी दिन ज्यादा समय मालूम होने लगे। कितनी तीव्रता से हम साधन का प्रयोग करते हैं इस पर सब कुछ निर्भर करता है। जिस भांति आदमी ने बाहर की जिंदगी में गति और स्पीड का विकास किया है उस भांति भीतर की जिंदगी में नहीं किया है। लेकिन भीतर की जिंदगी में भी किया जा सकता है।
मैं जिस ध्यान के प्रयोग की बात कर रहा हूं, वह चालीस मिनट में ही परिणामकारी हो जाता है। सवाल चालीस मिनट का नहीं, सवाल आपका चालीस मिनट तक एक विशेष साधन प्रक्रिया को करने का है और अगर आपकी तीव्रता और भी ज्यादा हो तो वह बीस मिनट में भी हो सकता है। और अगर तीव्रता टोटल हो कि आप समग्रपन से एक क्षण भी कर पाए तो एक क्षण में भी हो सकता है। कितनी समग्रता से कितने इंटिग्रेटेड, कितना पूरे प्राण-पन से आप संकल्प में कूदे हैं, इस पर सब कुछ निर्भर करता है, लेकिन हमारे पास जो योग के साधन हैं, वे उसी जमाने के हैं जब बैलगाड़ी चलने का वाहन था। इसलिए कुछ व्यक्ति आज भी गुफाओं में बैठ कर पांच हजार साल पहले की प्रक्रियाओं का प्रयोग कर रहे हैं, और मैं आप से कहना चाहता हूं कि जब तक हम विज्ञान के साथ धर्म को गति न देंगे, तब तक विज्ञान सदा जीतेगा और धर्म सदा हारेगा। विज्ञान के साथ धर्म की भी गति होनी चाहिए। हो सकती है, कोई कठिनाई नहीं है। इस के उदाहरण के लिए दो- चार बातें मैं आप से कहूं, तो आपको समझ में आएगा कि साधन में कैसे गति हो सकती है। एक आदमी अगर चालीस दिन उपवास करे, और फिर उसका मन शांत हो जाए तो आप क्या समझते हैं? चालीस दिन उपवास करने से शरीर में क्या होगा? चालीस दिन उपवास करने से शरीर की केमिकल, रासायनिक व्यवस्था ही बदलती है, चालीस दिन भूखा रहने से शरीर में कुछ तत्व बिल्कुल नष्ट हो जाते हैं, और कुछ तत्व बोध मात्रा में हो जाते हैं। शरीर का जो रासायनिक संतुलन था वह रूपांतरित हो जाता है। यह बहुत पुरानी व्यवस्था थी, शरीर की केमिस्ट्री पर काम करने की।

लेकिन आज अगर हम विज्ञान का उपयोग कर सकें तो चालीस दिन उपवास से शरीर में जो परिवर्तन होता है, वह एक इंजेक्शन से भी हो सकता है। आखिर रासायनिक परिवर्तन ही करना है। चालीस दिन भूखे मर कर भी तो आप रासायनिक परिवर्तन ही करते हैं। चालीस दिन खाना नहीं खाते, यह कोई आप आध्यात्मिक बात समझ रहे हैं? और अगर खाना न खाना आध्यात्मिक हो सकता है, तो इंजेक्शन लगाना क्यों आध्यात्मिक नहीं हो सकता है? जितना खाना भौतिक है, उतना ही इंजेक्शन भी भौतिक है। दोनों में कोई फर्क नहीं है। खाना न खाकर हम चालीस दिन में जो परिवर्तन कर पाते हैं वह परिवर्तन भी कैमिकल है। उस परिवर्तन में भी शरीर के कुछ रस समाप्त हो जाते हैं, शरीर के कुछ तत्व नष्ट हो जाते हैं, वे तत्व तो वैसे ही नष्ट किए जा सकते हैं। और उन तत्वों के नष्ट होने से कुछ दूसरे रासायनिक तत्व प्रभावी हो जाते हैं, इंजेक्शन द कर उन तत्वों को अभी प्रभावी किया जा सकता है। वही अनुपात पैदा किया जा सकता है जो चालीस दिन के उपवास से होता है। जिस दिन हम विज्ञान का उपयोग करेंगे उस दिन अगर कोई कहे कि महावीर की भांति बारह साल उपवास करना पड़ेगा तब ज्ञान उत्पन्न होगा तो मैं उसको कहूंगा कि वह बैलगाड़ी के जमाने की बात कर रहा है। महावीर की मजबूरी थी कि उन्हें बारह साल उपवास करना पड़ा। अगर महावीर आज होते तो इस तरह की नासमझी को न करते। उस समय कोई उपाय न था। उन्हें जो भी शरीर में रासायनिक परिवर्तन करने थे, उसके लिए सिवाय इसके, उसके पास कोई साधन न था। लेकिन आज साधन उपलब्ध हैं, अगर हम साधनों को इनकार करें तो हम सिर्फ धर्म की प्रगति को इनकार कर रहे हैं। अगर एक आदमी शीर्षासन करके कोई परिवर्तन लाता है तो परिवर्तन बिल्कुल भौतिक है। उस परिवर्तन में कुछ अध्यात्म नहीं है। लेकिन वह भौतिक परिवर्तन आध्यात्मिक यात्रा में सहयोगी हो जाता है। अब शीर्षासन से जो होता है अब बिना शीर्षासन के हो सकता है। अब शीर्षासन में होगा क्या? सिर्फ सिर में खून की गति बढ़ जाएगी। तो सिर में खून की गति बढ़ाने के बहुत उपाय हो सकते हैं। सिर में खून की गति बढ़ाने के लिए बहुत तरह के प्रयोग हो सकते हैं, जो बिना शीर्षासन के संभव हो जाएं। जितनी हमारी समझ बढ़ेगी उतना हम पाऐंगे कि मनुष्य को धर्म के जगत में भी वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सहारा लेना चाहिए। अन्यथा विज्ञान बढ़ता चला जाएगा और आदमी सिकुड़ता चला जाएगा। विज्ञान बड़ा होता जाएगा, और धर्म छोटा होता जाएगा। धर्म यात्रा करेगा बैलगाड़ी में और विज्ञान यात्रा करेगा राकेट में। तो जीत की आशा आप धर्म के लिए न करें।
धर्म को वैज्ञानिक होना पड़ेगा। जिस ध्यान के प्रयोग की मैं बात कर रहा हूं, वह बहुत अर्थों में वैज्ञानिक है। और चालीस मिनट बहुत सोच-विचार कर तय किए गए हैं। आपने देखा होगा कालेज में, स्कूल में, चालीस मिनट से बड़ा पीरियड नहीं होता, कभी आपने पूछा कि क्यों? मनुष्य के मन की क्षमता एक काम को चालीस मिनट से ज्यादा करने की साधारणतः नहीं होती। चालीस मिनट में आदमी को काम बदलना चाहिए। अन्यथा उदासी, ऊब और बोर्डम पैदा हो जाएगी। चालीस मिनट मनुष्य के मन की फैलने की क्षमता की सीमा है, इसलिए चालीस मिनट। और चालीस मिनट में जो मैंने चार, दस-दस मिनट के विभाजन किए हैं, उन्हें भी थोड़ा समझ लेना उपयोगी है। दस मिनट तक भस्त्रिका का प्रयोग, भस्त्रिका का अर्थ है फेफड़ों को इस भांति चलाना जैसे कि लोहार अपनी धौंकनी को चलाता है। वह इतनी तेजी से श्वास को बाहर और भीतर फेंकना है, कि भीतर की सारी गंदी वायु बाहर फेंकी जा सके।
शायद आपको पता न हो कि हमारे फेफड़े में कोई छह हजार छिद्र होते हैं। साधारणतः जो हम श्वास लेते हैं, वह मुश्किल से हजार छिद्रों तक पहुंचती है, आम तौर से छह सौ छिद्रों तक पहुंचती है। अगर हम दौड़ते भी हैं और तेजी से भी श्वास लेते हैं, व्यायाम भी करते हैं तो भीश्वांस दो हजार छिद्रों से ज्यादा नहीं पहुंचती। इसका मतलब हुआ कि हमारे फेफड़ों के चार हजार छिद्र सदा ही कार्बन डाइआक्साइड की गंदगी से भरे रहते हैं। शायद आपको पता न हो कि हमारे फेफड़ों में जितनी ज्यादा कार्बन डाइआक्साइड होगी उतना ही तमस हमारे चित्त में होगा। इसलिए दिन को सोना मुश्किल होता है, रात को सोना आसान हो जाता है, क्योंकि रात सूरज के ढल जाने के बाद हवाओं में कार्बन की मात्रा बढ़ जाती है, और आक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। सुबह सारी दुनिया जाग जाती है, वृक्ष जागते हैं, पशु जागते हैं, पौधे जागते हैं। कोई अलार्म

घड़ियां उनके पास नहीं हैं। कैसे जाग जाते हैं, सूरज के आने की घड़ी भर पहले। सारा जगत कैसे उठने लगता है, बात क्या है? यह नींद टूटने का क्या कारण है? जैसे ही वातावरण में आक्सीजन की मात्रा बढ़नी शुरू होती है, नींद टूटनी शुरू हो जाती है। क्योंकि नींद के लिए कार्बन डाइआक्साइड का बहुत होना जरूरी है, वह जैसे ही कम हुआ कि नींद गई। नींद जितनी ज्यादा आपको चाहिए उतना कार्बन चाहिए।
अब ध्यान का जो प्रयोग है, वह नींद को तोड़ने का प्रयोग है। अंततः समक्ष मूर्च्छा टूट जाए इसलिए दस मिनट तक भस्त्रिका का प्रयोग करें। इतने जोर से श्वास फेंकनी है कि पूरे फेफड़े अपनी गंदगी को बाहर कर दें और नयी हवाओं से भर जाए। अगर पूरा फेफड़ा नयी हवाओं से भर जाए तो आपके भीतर शक्ति का नया जागरण शुरू हो जाएगा जो कि वर्षों भी साधारण बैठ कर नहीं हो सकता है। मनुष्य के भीतर जैसे मनुष्य के जागने के नियम हैं, कि सुबह सूरज उगने पर हवाओं में आक्सीजन बढ़ने पर जागना शुरू होता है, ऐसी ही हमारी अंतर-चेतना भी, अगर फेफड़ों में आक्सीजन की मात्रा बढ़ा दी जाए तो जागना शुरू हो जाती है। अब जिस दिन विज्ञान और सफल हो सकेगा, और जिस दिन हम धर्म में विज्ञान का प्रयोग कर सकेंगे उस दिन मैं न चाहूंगा कि खुले मैंदान में एक प्रयोग हो। मैं चाहूंगा कि एक हाल के भीतर प्रयोग हो और इस हाल में आक्सीजन के बड़े-बड़े चेंबर रखे हों और इस हाल को बहुत ज्यादा आक्सीजन से भरा जा सके तो शायद दस मिनट का काम दो मिनट में भी हो सकता है।
असली सवाल यह है कि भीतर की कार्बन डाइआक्साइड की मात्रा कैसे रूपांतरित हो? यह अगर रूपांतरित हो जाए तो भीतर भी चेतना को जगने में सहायता मिलती है, भीतर चेतना अटेंटिव, ध्यानपूर्ण होने के लिए सजग और सहज हो जाती है। इसलिए दस मिनट तक भस्त्रिका का प्रयोग करना है। मैं जो भी कह रहा हूं उसके वैज्ञानिक आधार हैं। और जब शरीर के भीतर आक्सीजन की मात्रा बढ़ती है तो शरीर के भीतर छिपी हुई जो विद्युत की शक्ति है, जो बाडी इलेक्ट्रिक है, वह भी सजग हो जाती है। शायद आपको पता न हो कि शरीर के भीतर कितनी विद्युत की शक्ति का कितना बड़ा वर्तुल है। हम सारे के सारे लोग उसी विद्युत से जीते हैं वही हमारी ऊर्जा, वही हमारी शक्ति है। कार में ही बैटरी नहीं लगी होती। हमारे भीतर भी विद्युत की बैटरियां हैं। हमारा शरीर भी विद्युत का एक वर्तुल है और कभी-कभी वर्तुल टूट जाता है, तो बड़ी कठिनाई होती है। अभी पीछे स्वीडन में एक महिला के शरीर के वर्तुल का टूटना हो गया। किसी चोट में, दुर्घटना में उसके शरीर के विद्युत की धारा टूट गई, फिर उस स्त्री को छूना मुश्किल हो गया। जो भी उसे स्पर्श करेगा उसे शॉक लगेगा। उस स्त्री से प्रेम करना बहुत मुश्किल बात हो गई। उसे प्रेमी मिलना मुश्किल हो गया। क्योंकि उसे छूना, और शॉक लगना। उसका इलाज करना पड़ा, और बहुत मुश्किल से उसके वर्तुल को फिर से स्थापित किया जा सका। एक आदमी ने जर्मनी में अपने शरीर की विद्युत के बहुत प्रयोग किए और पांच केंडल के बल्ब को सीधा हाथ में रख कर जला कर दिखाया। शरीर के भीतर विद्युत है। असल में तो बिना विद्युत के तो आप जी नहीं सकते। और शरीर के भीतर विद्युत का पूरा इंतजाम है। जब शरीर में आक्सीजन की मात्रा बढ़ती है, तब शरीर की विद्युत सक्रिय हो जाती है। उस सक्रियता की हालत में पूरे शरीर में विद्युत के कंपन इलेक्ट्रिफाइड होना शुरू हो जाते हैं। पूरा शरीर विद्युत से कंपने लगता है। इस विद्युत के ही संगृहीत परिणाम मनुष्य की रीढ़ पर होने शुरू होते हैं, क्योंकि रीढ़ हमारे इस स्नायु संस्थान का, हमारे नर्वस सिस्टम का, केंद्रीय तत्व है। जब सारे शरीर में विद्युत जगनी शुरू होती है तो उसकी धाराएं हमारे रीढ़ में संगृहीत हो जाती हैं, इकट्ठी हो जाती हैं और कुंडलिनी, जैसे योग ने कहा है कि वह रीढ़ में इकट्ठी हो गई विद्युत का प्रवाह है।
यह मैं विज्ञान की भाषा में बोल रहा हूं। कुंडलिनी धर्म की भाषा है, योग की भाषा है। वैज्ञानिक कहता है कि कुंडलिनी कहां है? और आप की पूरी की पूरी रीढ़ को भी काट डाला जाए तो कुंडलिनी कहीं मिलती नहीं। यह वैसे ही नासमझी की बात है कि जैसे ही कोई इस बल्ब को फोड़ दे और कहे कि विद्युत कहां है? बल्ब को फोड़ने से मिलती नहीं। कोई बिजली के तार को काट-काट कर टुकड़े- टुकड़े कर दे और कहे कि विद्युत कहां है। क्योंकि विद्युत तार के टुकड़े-

टुकड़े करने से मिलती नहीं। आज तक विद्युत किसी ने देखी नहीं है, सिर्फ विद्युत के परिणाम देखे हैं। कोई बड़े से बड़े वैज्ञानिक ने भी विद्युत को अब तक देखा नहीं है और भविष्य में भी कभी विद्युत देखी नहीं जा सकेगी। सिर्फ परिणाम देखे जाते हैं। जब आकाश में आप चमकते देखते हैं वह भी एक परिणाम है, एक इफेक्ट है। वह भी बिजली नहीं है, बिजली का प्रभाव है। और जब बल्ब में जलते देखते हैं तब भी बिजली नहीं है वह भी बिजली का प्रभाव है, और जब इस माइक से आवाज आप तक पहुंच रही है तब भी बिजली सीधी नहीं है। यह भी प्रभाव है। हम सिर्फ प्रभावों को जानते हैं वस्तुओं को नहीं जानते हैं। वस्तुओं का मूल अर्थ सदा ही अदृश्य रह जाता है। अब तक बिजली किसी ने नहीं देखी। बिजली छोड़ दें, आपने शायद कभी खयाल नहीं किया है कि आज तक प्रकाश, लाइट भी किसी ने नहीं देखा है। हम सिर्फ लाइटेड चीजें देखते हैं। हम सिर्फ प्रकाशित चीजें देखते हैं, प्रकाश नहीं। प्रकाश को दुनिया में कभी किसी ने भी नहीं देखा। प्रकाश में चमकती हुई कुर्सी दिखाई पड़ती है। प्रकाश में चमकती हुई दीवाल दिखाई पड़ती है। प्रकाश में आप मुझे दिखाई पड़ते हैं। और जब प्रकाश नहीं होता तो आप मुझे दिखाई नहीं पड़ते तो मैं कहता हूँ कि अंधेरा हो गया, प्रकाश को हमने कभी नहीं देखा है। हमने सिर्फ ऑब्जेक्टस, प्रकाश में प्रकाशित हो गई वस्तुओं को देखा है। प्रकाश को आज तक किसी ने भी नहीं देखा और आगे भी कोई कभी देख नहीं सकेगा।
वह जो कुंडलिनी है उसे कोई रीढ़ की हड्डियां काट कर नहीं देख सकता। लेकिन धर्म की पुरानी भाषा बहुत जगह जाकर पुरानी पड़ जाने के कारण बड़ी अर्थहीन हो जाती है। हमें भाषा को भी रोज नया निखार देना चाहिए। मत कहें कुंडलिनी उसे, कहें बॉडी इलेक्ट्रिसिटी, उसे कहें शरीर विद्युत। निश्चित ही शरीर की विद्युत अगर पैदा होगी तो उसके सबसे ज्यादा गहरे परिणाम और प्रभाव रीढ़ में देखे जायेंगे क्योंकि रीढ़ हमारे शरीर का मूल है, जिस पर सारा शरीर टंगा हुआ है। शरीर की सारी धाराएं वहां से आती हैं और वहां वापस लौटती हैं। और जब यह विद्युत रीढ़ में अनुभव होगी तो सांप की तरह उठती हुई अनुभव होगी। जैसे रीढ़ में कुछ उठ रहा हो, सर्प की तरह ऊपर सरक रहा हो। निश्चित ही पुराने आदमी के पास विद्युत की भाषा नहीं थी, विद्युत का प्रतीक नहीं था लेकिन फिर भी उसने जो प्रतीक चुना था वह बिल्कुल ठीक है, सर्प। उन दिनों सरकने वाली इससे बढ़िया कोई चीज ज्ञात न थी। अब तो सर्प हमें बहुत कम ज्ञात है क्योंकि गांव में वह आता नहीं। सीमेंट की सड़कों पर वह चलता नहीं, बंधे हुए मकानों में घुसता नहीं। हमने सर्प को गांव के बाहर कर दिया। कभी-कभी नागपंचमी को कुछ धन्धे वाले लोग उसे बस्ती में ले आते हैं। वे भी कब तक लाएंगे, कहना मुश्किल है। वह दिखाई नहीं पड़ता। वह हमारी जिंदगी का हिस्सा नहीं है। लेकिन आज से तीन हजार, चार हजार साल पहले सांप जिंदगी का बड़ा अनिवार्य हिस्सा था। वह हर वक्त मौजूद था। उससे ज्यादा तेज चलने वाली चीज आदमी के अनुभव में न थी। इसलिए जब उसने अपनी रीढ़ में किसी चलती हुई चीज को देखा तो उसने कहा, यह सर्पाकार है। सर्प में ही पॉवर का खयाल उसे आना स्वाभाविक था। फिर उसे यह भी खयाल आया कि यह अब उठ गया, अभी तक कहां था? तो जब सर्प बैठा होता है तो कुंडली मार कर बैठा होता है। जमीन में कुंडली मार लेता है और छोटी सी जगह में सिकुड़ कर बैठ लेता है।
तो स्वभावतः उस आदमी को खयाल आया कि जब शक्ति नहीं उठी थी तब कहां थी?
तो उसे खयाल आया जैसे सांप कुंडली मार कर नीचे बैठा रहता है ऐसे ही यह भी कुंडली मार कर बैठी होगी। इसलिए इस शक्ति का नाम कुंडलिनी हो गया। फिर जब सांप फुंकार कर उठता है तो पूरा का पूरा खड़ा हो जाता है। यह आपको पता है कि सांप का खड़ा होना एक मिरेकल है यह सांप के भीतर हड्डी नहीं होती। लेकिन जब सांप खड़ा होता है तो पूंछ जमीन को छूती है और फन आकाश में फैल जाता है। ठीक जब भीतर जब पूरी विद्युत ऊर्जा रीढ़ से पार होकर फैलती है तो मस्तिष्क में फन की तरह फैल जाती है। इसलिए आपने देखा होगा कि न मालूम कितने तीर्थंकरों के, अवतारों के ऊपर नाग का फन सिर के ऊपर फैलाए हुए बैठा होता है। आप यह मत सोचना कि किसी असली नाग का इससे कोई संबंध है। यह प्रतीक है उस भीतर की ऊर्जा का मस्तिष्क में पूरी तरह जाग कर फैल जाना। यह सांप का फन उसका प्रतीक है।

यह जो विद्युत है शरीर में इसको जगाने के लिए दस मिनट शरीर में आक्सीडाइजेशन होना जरूरी है। शरीर में जितने जोर से आक्सीजन पहुंच जाए, शरीर के खून की गति में अंतर हो जाता है, शरीर के परमाणु अंतरित हो जाते हैं, शरीर की सारी व्यवस्था बदल जाती है। और उस नई व्यवस्था में विद्युत का जागना संभव हो जाता है। यह विद्युत के जागरण के लिए दस मिनट पर्याप्त हैं, अगर आप करें तो। आप न करें, तो दस जन्म भी अपर्याप्त हैं। दूसरे दस मिनट में जब शरीर की विद्युत शक्ति जागती है, तो स्वभावतः शरीर में बहुत से हलन-चलन शुरू हों, क्योंकि शरीर में जब एक नई शक्ति जागेगी।
आपने छोटे बच्चे को देखा है जब उसमें जिंदगी की शक्ति जागनी शुरू होती है, तो आप उससे कितना भी कहें कि बिल्कुल ठीक सिद्धासन लगा कर बैठो एक कोने में। वह एक कोने में बैठ जाए, तो भी डोलता रहेगा। उसके भीतर कोई चीज जाग रही है, जिंदा हो रही है। और जरा आंख बची आपकी कि वह भागा। वृक्षों पर चढेगा, जमीन पर लोटेगा, भागेगा, दौड़ेगा, कूदेगा। यह मत सोचिए कि आपको परेशान करने के लिए दौड़ रहा है। उसके भीतर कुछ जाग रहा है जो उसे गतिमान कर रहा है। जब भी नयी शक्ति जागती है तो शरीर गतिमान होगा। और जब यह विद्युत की ऊर्जा या कुंडलिनी जागती है, तो पूरा शरीर नयी गतियां करेगा। इन्हीं गतियों से आसन और मुद्राओं का विकास हुआ है। आसन और मुद्राओं से गतियां नहीं होतीं। गतियों से आसन और मुद्राओं का विकास हुआ है। जब जोर से शक्ति सिर की तरफ भागेगी तो अचानक मन होगा कि सिर जमीन पर लगा कर उलटे खड़े हो जाओ। उससे बड़ी राहत मिलेगी। शीर्षासन ऐसे ही जन्मा। जब जोर से शक्ति भीतर जाती है तो अचानक साधक को लगता है कि सिर जमीन पर कर ले और पैर ऊपर कर ले। इससे उसे बड़ी राहत मिलती है। यह राहत वैसे ही होती जैसे कि अगर आपको बिना तकिए के रात सोने को कहा जाए तो आपको मुश्किल होती है। तकिया रखने से आपको क्या राहत मिलती है, कभी खयाल किया है? तकिया हटा लिया जाए आपके सिर के नीचे से, तो आप कहते हैं कि नींद नहीं आती। तकिया क्या करता होगा? तकिया आपके शरीर में, आपके मस्तिष्क में खून की गति को बदलता है। जब सिर ऊंचा हो जाता है तो खून की गति सिर की तरफ बंद हो जाती है, और जब सिर नीचा हो जाता है तब खून की गति सिर की तरफ बढ़ जाती है। जब सिर की तरफ खून की गति बढ़ती है तो नींद असंभव हो जाती है। इसलिए जो लोग शीर्षासन करते हैं उनकी नींद कम हो जाएगी। अगर बहुत ज्यादा शीर्षासन करेंगे तो नींद बिल्कुल समाप्त हो जाएगी।
इसलिए आप यह मत सोचना कि साधु बड़े खयालों से ऊपर उठ गया है, इसलिए उसको नींद नहीं आती। शीर्षासन का परिणाम स्वभावतः नींद को कम कर देना है। खून जितना मस्तिष्क में जाएगा उतनी नींद कम हो जाएगी। लेकिन शीर्षासन अगर आपने जबरदस्ती किया, तो नुकसान पहुंचा सकता है। क्योंकि अगर मस्तिष्क में बहुत ज्यादा खून जाए, तो मस्तिष्क में जो बहुत बारीक स्नायु हैं, वे टूट जाते हैं।
इसलिए साधारणतः शीर्षासन करने वाले लोगों में बुद्धि का पता नहीं चलेगा। उनमें जरा बुद्धि खोजना मुश्किल होगा। उसके कारण हैं। आदमी में जो बुद्धिमत्ता पैदा हुई वह दो पैर पर खड़े होने की वजह से पैदा हुई। दूसरे जानवरों में न पैदा होने की वही बायोलाजिकल वजह है। जिस दिन से आदमियों का कोई पूर्वज जमीन पर दो पैर से खड़ा हो गया, उसी दिन से आदमी की बुद्धि की क्षमता शुरू हुई। क्योंकि मस्तिष्क तक खून बहुत कम पहुंचने लगा। कम खून की वजह से मस्तिष्क की शिराएं पतली हो गईं। कम खून की वजह से मस्तिष्क में बारीक तंतु पैदा हो सके। वे तंतु बहुत बारीक, एक-एक मस्तिष्क में करोड़ों का जाल। और अगर हम उदाहरण से समझें, तो जितना हमारा बाल मोटा है, यह बहुत मोटा है। अगर हम मस्तिष्क के स्नायुओं को एक लाख एक के ऊपर एक रखें, तो वह एक बाल की मोटाई के बराबर हो पाता है। जब तक ज्यादा खून मस्तिष्क में जाता था तब तक ये पैदा नहीं हो सकते थे। जानवर हमसे बिछड़ गए। एक छोटी सी ट्रिक हमने कर ली, वे नहीं कर पाए। हम दो पैर से खड़े हो गए, वे बेचारे चार से अभी भी चल रहे हैं।
इसलिए अगर कोई बहुत शीर्षासन करेगा, कोशिश करके, तो मस्तिष्क को नुकसान पहुंचेगा। तो वह वापस पशुओं की दुनिया में लौट रहा है। इसलिए अगर आप जाएं कुंभ में, इत्यादि, मेलों में, जहां हिंदुस्तान भर के साधु-

संन्यासी इकट्ठे होते हैं, तो सौ में से नब्बे के चेहरे पर आपको जड़ता दिखाई देगी। एकदम जड़ मालूम पड़ेंगे। जिनके भीतर से बुद्धि खो गई है। जिनके भीतर बुद्धि नाम मात्र भी नहीं है। उसके कारण हैं। उसके वैज्ञानिक कारण हैं।
इसलिए मैं शीर्षासन का पक्षपाती नहीं हूं। लेकिन अनिवार्य क्षण में
वह उपयोगी हो सकता है। जब शरीर की विद्युत जागी हो और अगर साधक को अपने आप शीर्षासन हो जाए, तो वह सही है। शरीर नाच सकता है। जब शरीर में विद्युत पैदा होती है तो उसके इतने जोर से स्पंदन होते हैं कि अगर आप नहीं नाचेंगे तो आपके भीतर बड़ी बेचैनी शुरू हो जाएगी। अगर आप नाचे तो वह बेचैनी निकल जाएगी और बिखर जाएगी।
इसलिए दूसरे चरण में शरीर को दस मिनट तक मुक्त भाव से छोड़ देने की बात है। उसे जो करना हो--रोना हो, हंसना हो, नाचना हो, जो करना हो उसे पूरी तरह छोड़ देने की जरूरत है। न केवल छोड़ देने की बल्कि पाजिटिव को-ऑपरेशन, विधायक सहयोग की भी जरूरत है। क्योंकि मनुष्य ने जो सभ्यता बनाई है, वह पूरी की पूरी सभ्यता सप्रेसिव है, दमनकारी है। न तो हम हंसते हैं खुल कर, न हम रोते हैं खुल कर, हम सब दबा लेते हैं। वह सब दबा हुआ नष्ट नहीं होता, ध्यान रहे। वह सब हमारे भीतर बैठ जाता है और प्रतीक्षा करता है कभी निकलने की। पुरुषों ने तो रोना बंद ही कर दिया है। पुरुष तो समझते हैं कि रोना स्त्रियों का काम है। खाना आप भी खाते हैं, खाना स्त्रियां भी खाती हैं। श्वास आप भी लेते हैं, श्वास स्त्रियां भी लेती हैं। प्रेम आप भी करते हैं, प्रेम स्त्रियां भी करती हैं। दुखी आप भी होते हैं, दुखी स्त्रियां भी होती हैं। क्रोध आप भी करते हैं, क्रोध स्त्रियां भी करती हैं। लेकिन रोना, रोना सिर्फ स्त्रियों का काम है, वह पुरुष नहीं करते। पुरुष ने रोने को बुरी तरह से दबाया है कि उसके प्राण के रोएं-रोएं में रोना समा गया है। और जब तक यह रोना निकल न जाए तब तक पुरुष हलका नहीं हो सकता है। इसलिए आपको पता होना चाहिए कि दुनिया में पुरुषों के पागल होने का अनुपात स्त्रियों से बहुत ज्यादा है। उसका कारण है। उसका कारण है कि पुरुष ऐसे तनाव लेता है जो अकारण व्यर्थ हैं। अब जैसे अगर कोई लड़का रोने लगे तो हम कहेंगे कि क्या लड़कियों जैसे रो रहे हो, जब कि रोना जिंदगी का एक हिस्सा है। उसका लड़कियों ने कोई ठेका नहीं लिया। और यह ठेका बहुत मंहगा पड़ता है लड़कों के लिए, बहुत मुश्किल हो गया है। स्त्रियां ज्यादा सुंदर मालूम पड़ती हैं, स्त्रियां ज्यादा हल्की मालूम पड़ती हैं, स्त्रियां ज्यादा ताजी मालूम पड़ती हैं, उसके कारण हैं। पुरुष ज्यादा दमन किए हुए है अपना, रोता भी नहीं है, जोर से हंसता भी नहीं है, नाचता भी नहीं है, गाता भी नहीं है, एकदम सख्त पत्थर की मूर्ति बना हुआ अपने पुरुषत्व को संभाले हुए घूमता है। जिंदा कम मरा हुआ ज्यादा।
जब ध्यान की दूसरी प्रक्रिया शुरू होगी तो रोना शुरू होगा, हंसना शुरू होगा, नाचना शुरू होगा। उस सबको निकल जाने देना जरूरी है। वह कैथार्सिस है, वह हमारा विरेचन है। वह जो हमारे भीतर दबा हुआ है उसे बाहर छोड़ देना चाहिए। कितनी बार, आपको पता है जब आप बाथरूम में होते हैं तो क्या-क्या करते हैं, मैं पूछता नहीं क्योंकि आप बताएंगे नहीं। बाथरूम में बुद्धिमान से बुद्धिमान आदमी बच्चों के जैसे काम शुरू कर देता है। आईने के सामने मुंह बिचकाता है। क्यों? क्या बात है? अगर यह आदमी बैठकखाने में बैठा हो तो ऐसा न कर सकेगा। या अगर किसी के बाथरूम में की-होल में से कोई झांकने लगे तो फौरन संभल कर, अपनी टाई वगैरह ठीक करके खड़ा हो जाएगा। हम सब एक दूसरे से भयभीत हैं। हम सब एक दूसरे के दुश्मन हो गए हैं। हम एक दूसरे के मित्र नहीं हैं क्योंकि जिससे भयभीत होना पड़े वह दुश्मन है। घर में बाप बेटे से डर रहा है, बेटा बाप से डर रहा है, पत्नी पति से डर रही है, पति पत्नी से डर रहा है। सब सबसे डरे हुए हैं। मित्र, मित्र से डर रहे हैं। सब एक-दूसरे से डरे हुए जी रहे हैं। इस भयभीत जगत में अगर हमने अपने को बिल्कुल दबा कर रख लिया है और वह जो हमारी स्पांटेनिटी है, वह जो हमारी निसर्गता है, वह जो हमारी सहजस्फूर्त व्यक्तित्व है उसको सब तरफ से द्वार बंद कर दिए हैं और हम अभिनय कर रहे हैं, जी नहीं रहे हैं। हम अभिनेता हैं। हम जीवित व्यक्ति नहीं हैं। हम जो भी कर रहे हैं वह एक अभिनय है। कभी आपने

सोचा है जब आप अपनी पत्नी से कहते हैं कि तुझसे सुंदर कोई भी स्त्री नहीं है, कभी आपने सोचा कि आप क्या कह रहे हैं? यह सच है? जब आप किसी से कहते हैं कि तेरे अलावा मैं किसी को भी कभी प्रेम नहीं करता हूं, तब आपने सोचा है कि यह सच है? नहीं, हम सब अभिनय कर रहे हैं और हम सब जान रहे हैं, और हम भलीभांति अभिनय किए चले जाते हैं। हमने यह जो जिंदगी बनाई है झूठी, अभिनय की, दबाई हुई, ध्यान में जाने के लिए सहयोगी नहीं। इसलिए दूसरे दस मिनट में मैं कहता हूं निसर्गमय हो जाओ। जो होना है उसको हो जाने दो। शायद आपको पता नहीं कि दस मिनट भी अगर आप अपने को खुला छोड़ दें तो आपके भीतर के कितने भूत-प्रेत मुक्त हो जाएं। दस मिनट। और ऐसे तो आप न छोड़ पाएंगे और अगर छोड़ेंगे तो मुश्किल में पड़ जाएंगे। ध्यान के नाम से छोड़ना आसान हो जाता है। सरलता से छोड़ पाते हैं।
मैंने दूसरे हिस्से में दस मिनट के लिए अनिवार्य रूप से कैथार्सिस, विरेचन की जगह रखी है। जब तक हमारा विरेचन न हो जाए, जो गंदगी हमने इकट्ठी कर रखी है वह फिंक न जाए तब तक हम कभी शांत नहीं हो सकते, हम कभी हल्के नहीं हो सकते, हम कभी बच्चों जैसे सरल नहीं हो सकते। हम बंधे-बंधे गुलाम, जंजीरों में कसे-कसे हुए आदमी बने रहेंगे। बड़ी मुश्किल लगती है जंजीरें छोड़ने में। खुद की जंजीरें भी हम इतनी संभाल कर रखते हैं कि कोई दूसरा न छीन ले। पकड़ कर खड़े रहते हैं कि कहीं रोना न आ जाए। किसका भय है कि कहीं हम जोर से न हंस पड़ें। किसका भय है कि कहीं हम नाचने न लगें। यह हमारी कौम तो कुछ बातें बिल्कुल ही भूल गई है। नाचना हम भूल ही गए। नाचना कोई अच्छे आदमी का लक्षण नहीं। जोर से चिल्ला कर हम गीत नहीं गा सकते, दौड़ नहीं सकते। हम कुछ भी नहीं कर सकते जो कि नैसर्गिक आदमी की जिंदगी का हिस्सा होना चाहिए। और नहीं कर सकते तो हम पंगु होते चले जाते हैं।
बर्ट्रेंड रसल ने कहीं लिखा है कि जब वह पहली दफे एक आदिवासी कौम में
रह कर लौट आए तो उसने आकर लंदन में अपने मित्रों को कहा कि मैं विचार में पड़ गया हूं कि जो हमने सभ्यता से पाया, वह सच में पाने योग्य है? और हमने जो सभ्यता पाकर खोया वह सच में क्या खोने योग्य है? उस आदमी ने कहा, क्या मतलब है आपका? बर्ट्रेंड रसल ने कहा कि मैं ट्रेफ्लगर स्केवर पर खड़े होकर नाच नहीं सकता। ट्रेफिक का पुलिसवाला आदमी मुझे फौरन पकड़ कर ले जाएगा कि चलिए आप ट्रेफिक में बाधा डाल रहे हैं। और मेरी पत्नी समझेगी कि पागल हो गए हैं। मेरे बेटे समझेंगे कि हो गया वही जो कि फिलॉसफर को होना चाहिए। और तुम जल्दी से मुझे इलेक्ट्रिक शॉक लगवाने का इंतजाम करने लगो। लेकिन मैं जंगल में लोगों को नाचते देख कर आया हूं। आधी रात को चांद के नीचे उनका नाच, उनका मुक्त भाव से नाच, जिसमें कोई बहुत व्यवस्था नहीं थी। जिसमें कोई बहुत शास्त्रीय नियम नहीं है, जिसमें कोई क्लासिकल डांस, कत्थक और सबका हिसाब नहीं है, वे नाच रहे हैं, नाचना जैसे उनसे सहज में निकल रहा है, वह निकल रहा है। बहुत नियमबद्ध नहीं है। नाचना भी आनंद है। उसमें कोई क्रम और साइंस बनाने की जरूरत नहीं है। पर हम बड़े होशियार लोग हैं, हम नाचने तक को गोरखधंधा बना लेते हैं। हम उसमें भी इतना इंतजाम कर देते हैं, इतनी ट्रेनिंग, इतनी शिक्षा कि एक आदमी नाचना सीखते-सीखते नाचने का मन खो देता है। नाचना तो सीख जाता है लेकिन तब वह गुड्डी की तरह नाचता है। नाचने वाला मन खो जाता है इस प्रशिक्षण से। नाचना भी सीखना पड़ेगा। इसलिए मैं मानता हूं कि यूरोप और अमरीका में बच्चों ने जो बगावत की है वह बड़ी शुभ है। उन्होंने ऐसा नाच खोज लिया जिसके लिए सीखने की कोई जरूरत नहीं। अब वे नाच रहे हैं खुले मन से। बैंड बज रहा है और जैसे पैर पड़ रहे हैं वे पड़ रहे हैं। बैंड बजवा लें, नचा लें तो नाच लेंगे। उसमें तो न कोई व्यवस्था है, न कोई शास्त्रीयता है, न कोई प्रशिक्षण है, यह बहुत कीमती है घटना।
लेकिन हमारी कौम ने यह सब खो दिया है। और हमारी कौम में अगर लौट भी सकता है तो बिना ध्यान के और किसी रास्ते से नहीं लौट सकता, यह भी मैं जानता हूं। इसलिए दूसरे दस मिनट के समय को मैं कैथार्सिस के क्षण कहता हूं। और ज्यादा की जरूरत नहीं है, अगर आप करने को राजी हैं तो दस मिनट में आप इतने हलके हो जाएंगे कि जितने हलके आप जिंदगी में कभी भी न रहे। तीसरे दस मिनट एक इंक्वायरी एक जिज्ञासा सी है कि मैं कौन हूं। धर्म की मौलिक जिज्ञासा यही है। धर्म की मौलिक जिज्ञासा यह नहीं है कि परमात्मा है या

नहीं। इसे जानने का उपाय नहीं है, जब तक हम यहे भी नहीं जानते कि मैं कौन हूं? धर्म का मूलभूत प्रश्न यह नहीं है कि सृष्टि कब बनी? अगर इसका पता भी चल जाए तो क्या फर्क पड़ता है? इससे हम धार्मिक न हो जाएंगे। अगर पक्की तारीख और तिथि और नए कलेंडर पर छपा हुआ ताम्रपत्र मिल जाए कि पृथ्वी इस दिन बनी और दुनिया इस दिन शुरू हुई तो फिर क्या करिएगा? उसको पूजिएगा? उससे आप धार्मिक न हो जाएंगे। वह होगी किसी ऐतिहासिज्ञ की खोज, वे करें। वह होगी किसी पुरातत्व के अन्वेषण करने वाले की इच्छा, वह करे। लेकिन धर्म का इससे कोई लेना-देना नहीं है। धर्म का बुनियादी सवाल एक ही है कि मैं कौन हूं? यह जो मेरी जिंदगी है, यह जो मेरी श्वास है, यह जो मेरा मन है, यह जो मेरा विचार है, यह जो मेरा प्रेम है, मेरा क्रोध है, यह सब जो मैं इकट्ठा हूं, यह मैं कौन हूं? यह मैं क्या हूं? इसका कुछ परिचय, इसकी कुछ समझ, इसकी कोई पहचान, धर्म इस मौलिक प्रश्न से संबंधित है। धर्म मूलतः ईश्वर से नहीं मनुष्य से संबंधित है। और जिन लोगों ने धर्म को ईश्वर से संबंधित बनाया, उन्होंने मनुष्य का धर्म से संबंध तोड़ने का काम किया है और कुछ भी नहीं किया।
नहीं, आकाश में बैठे ईश्वर से धर्म का कोई लेना-देना नहीं है। धर्म का लेना-देना आप से है, जमीन पर खड़े हुए आदमी से है। धर्म मनुष्य केंद्रित है। ईश्वर केंद्रित नहीं है। यद्यपि यह सच है कि जब आदमी अपने को जान लेता है तो उसे ईश्वर को जानने का द्वार खुल जाता है। वह द्वार है। अपना ही द्वार। जिस दिन मैं अपने को पहचान लेता हूं, उस दिन अचानक मैं पाता हूं कि मैं सिर्फ मैं ही नहीं हूं। मेरे भीतर मेरे होने का और भी बड़ा विस्तार है। ऐसे ही जैसे कोई कुआं पूछे कि मैं कौन हूं? और अगर खोज करे तो उसे नीचे जल के स्रोत दिखाई प.ड़ें और अगर जल स्रोतों में प्रवेश करता जाए कुआं और पता लगाए कि मूलतः मैं कौन हूं, तो सागर तक पहुंचना पड़ेगा। क्योंकि सागर से कम जल स्रोतों के अंतिम हिस्से का पता नहीं चलेगा। हमारी जड़ें भी, हमारे स्रोत भी इसी तरह परमात्मा तक फैले हुए हैं। लेकिन मैं पहली बात तो पूछूं कि मैं कौन हूं? यह कुआं कौन है? और इस पहले प्रश्न से भीतर प्रवेश करूं तो सागर तक पहुंच जाऊंगा, पहुंचना ही पड़ेगा क्योंकि उसके पहले कोई पड़ाव नहीं है, उसके पहले कोई रुकाव नहीं है, उसके पहले कोई जिज्ञासा का अंत नहीं है। लेकिन जिज्ञासा शुरू होगी, मैं कौन हूं और जिज्ञासा पूर्ण होगी कि ईश्वर कौन है। शुरू होगा मैं से, अंत होगा ईश्वर से। धर्म का पहला चरण मैं, धर्म का अंतिम चरण तू। लेकिन तू उसका पहला चरण नहीं है। इसलिए तीसरे चरण को एक इनक्वायरी, एक जिज्ञासा का रूप दिया है कि मैं कौन हूं?
लेकिन यह धीरे-धीरे पूछने से नहीं चलेगा क्योंकि हम अपने जीवन के बरामदे बैठे हुए ह।ैं हमें पता ही नहीं है कि भीतर भी कुछ है। हम बाहर ही बाहर ढूंढते हैं। हम भूल ही गए है कि हमारे भीतर के कक्ष भी हैं, इनर चेंबर्स भी हैं कोई जिंदगी के। हम तो बाहर जीते-जीते याद भी भूल गए हैं, वहीं जीते हैं वहीं रहते हैं, वहीं मर जाते हैं। बरामदे में जीते हैं, लड़ते-झगड़ते हैं, प्रेम करते हैं, दूसरों को पैदा करते हैं और बरामदे में मर कर वहीं कब्र बना लेते हैं। घर के भीतर प्रवेश ही नहीं हो पाता। घर के भीतर प्रवेश तभी हो सकता है जब यह मैं कौन हूं की जिज्ञासा सिर्फ प्रश्न में न रह जाए। यह मैं कौन हूं? सिर्फ इनक्वायरी न रहे, क्वेस्ट बन जाए। यह सिर्फ प्रश्न न रहे जिसका किसी से उत्तर लाना है, यह खोज बन जाए जिसका उत्तर खुद पाना है। इसलिए इसमें पूरे प्राणों को लगा देना जरूरी है। और पहले दो चरण के बाद पूरे प्राण लगा देना एकदम आसान है। शरीर की विद्युत पूरी जाग जाती है, शरीर की गंदगी और शरीर के रुके हुए ठहराव और शरीर के बंधन और शरीर की बीमारियां रेचन हो जाती हैं। मन हलका होता है तब हम भीतर प्रवेश कर करते हैं और पूछ सकते हैं कि मैं कौन हूं।
आज मुझे दोपहर में कोई पूछ रहा था तो कि हम किससे पूछें कि मैं कौन हूं? लगता है कि ठीक। तो मैंने उससे कहा कि कभी तुम्हारा कमरे में चश्मा गुम हो जाता है, और कोई भी नहीं है कमरे में, और तुम अपने से पूछते हो, मेरा चश्मा कहां है? किससे पूछते हो दीवालों से, चश्मे से, कुर्सी से, फर्नीचर से? कमरे में कोई भी नहीं, लेकिन आपके मुंह से निकल जाता है कि चश्मा कहां है? किससे पूछते हैं? नहीं, यह किसी के लिए एड्रेस नहीं है। इस लिफाफे में

किसी का पता नहीं है। यह अपने से ही पूछते हैं। यह किसी और से नहीं पूछते। जब तक आप किसी और से पूछते हैं तब तक आपकी जिंदगी में साधना शुरू नहीं होगी। तब तक आप सिर्फ एक जिज्ञासु रहेंगे। जिज्ञासु कहना भी ठीक नहीं, कहना चाहिए कि सिर्फ एक कौतूहल प्रेमी रहेंगे, पूछते रहेंगे किसी से। लेकिन जिस दिन आप अपने से पूछेंगे उसी दिन जिज्ञासा वास्तविक मुमुक्षा बनती है। उसी दिन से यह यात्रा शुरू होती है और खोज शुरू होती है। कोई नहीं है जो उत्तर दे सके। जब आपको ही पता नहीं कि आप कौन हैं तो आपको कौन बताएगा कि आप कौन हो? जब मुझे ही पता नहीं कि मैं कौन हूं? तो मैं किससे जाकर पूछूं कि मैं कौन हूं? और जब मैं वह दूसरे से सीख लूंगा तो वह खतरनाक है। कोई बता देगा कि तुम आत्मा हो और मैं घर मजे से लौट आऊंगा, कि मैं तो आत्मा हूं। और कल यह आत्मा चोरी करती हुई पकड़ी जाएगी। कल यह कालाबाजारी करेगी। और जहां तक तो संभावना यह है कि गुरु के घर से चलते वक्त उनकी ही कोई चीज उठा लाऊं। मैं आत्मा हूं, यह कोई दूसरा बता सकेगा? कोई कह देगा कि तुम तो ब्रह्म हो। अहं-ब्रह्मास्मि। जाओ मजा करो, समझ लो कि तुम ब्रह्म हो। समझ लेने से कुछ होगा? तो बैठ कर अपने घर में लोग दोहरा रहे हैं कि मैं ब्रह्म हूं, मैं ब्रह्म हूं। उनका दोहराना बताता है कि उन्हें अभी पता नहीं चला, नहीं तो दोहराने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। अगर कोई पुरुष किसी कमरे के कोने में बैठ कर दोहराए कि मैं पुरुष हूं, मैं पुरुष हूं तो आस-पड़ोस के लोगों को भी शक हो जाएगा कि बात क्या है? यह कोई दोहराने की बात नही है। है, तो भी बात खत्म हो गई, नहीं है, तो दोहरा कर क्या होगा? लोग दोहरा रहे हैं कि मैं ब्रह्म हूं। बात कर रहे हैं सुबह, मैं ब्रह्म हूं। अहं-ब्रह्मास्मि। शास्त्र खोले बैठे हैं कि ठीक पढ़ा है? कहीं गलत तो नहीं हो गया? फिर देख रहे हैं, फिर देख रहे हैं। दोहरा रहे हैं, अहं-ब्रह्मास्मि। इनकी बकवास सुन कर ब्रह्म भी थक गया होगा। इस तरह दोहराने से कुछ भी न होगा। नहीं, सवाल यह नहीं है कि आप समझ लें पहले से कि मैं कौन हूं। पहली बात जानने की है कि मुझे पता नहीं है, मैं अज्ञानी हूं। कोई शास्त्र मेरा ज्ञान कैसे बनेगा? कोई सद्वचन मेरा ज्ञान कैसे बनेगा? किसी दूसरे का उत्तर मेरा उत्तर कैसे हो सकता है? जूठे उत्तरों से सावधान रहने की जरूरत है। बासे उत्तरों से सावधान रहने की जरूरत है। जूठा भोजन एक बार कर भी लेना बहुत हर्जा नहीं होता है। पीछे डिटाल से मुंह साफ किया जा सकता है। लेकिन जूठा ज्ञान भीतर मत ले जाना, उसे हटाने के लिए अभी तक कोई डिटाल नहीं बनाया जा सका है। उसकी सफाई बहुत मुश्किल है। वह बहुत संक्रामक है। उसके कीटाणु प्राणों में भीतर तक घुस जाते हैं।
इसलिए तीसरे चरण में पूछते हैं कि मैं कौन हूं? पूछते ही नहीं इसको एक तीर के भांति प्राणों में चुभाते हैं कि मैं कौन हूं? और कोई भी उत्तर जो बुद्धि दे तैयार, रेडीमेड उसको इनकार करना है। स्मृति यह कह रही है कि उपनिषद में पढ़ा था कि तू तो वही है। उसका कहना है कि तू शांत है। उपनिषद में पढ़ा हुआ काम नहीं पड़ेगा। वह कहे कि गीता में पढ़ा था कि मैं तो वही हूं जो न मरता, न जिसको बाण छेदते और न अग्नि जलाती, तो उससे कहना कि स्मृति तु चूप रह, मुझे ही खोज लेने दे। स्मृति आप के ज्ञान का अभिनय न करे तो ही आप भीतर प्रवेश कर सकते हैं। इसलिए तीसरे में वैज्ञानिक आधार है। स्मृति को हटाओ और अपने से सीधा पूछो कि मैं कौन हूं? क्या होगा? जैसे-जैसे यह प्रश्न गहरा होगा, जैसे-जैसे इसकी हैमरिंग होगी, जैसे-जैसे हथौड़े की चोट पड़ेगी भीतर कि मैं कौन हूं, वैसे-वैसे बाहर के बरामदे से चेतना भीतर के कक्षों में प्रवेश करेगी और अंततः एक दिन आप उस जगह पहुंच जाते हैं, उस जगह नहीं जहां उत्तर मिल जाता हो बल्कि उस जगह जहां प्रश्न गिर जाता है। इस फर्क को ठीक से समझ लेना जरूरी है। उस जगह नहीं जहां उत्तर मिल जाता है, उस जगह जहां प्रश्न गिर जाता है। जहां आप अवाक, अपने को जान कर ठगे खड़े रह जाते हैं कि यह था मैं। कोई लिखा हुआ कागज, कोई पुर्जा नहीं मिल जाता है कि जिसमें लिखा है कि आप ब्रह्म हैं। न कोई तख्ती मिलती है भीतर के मकान पर लगी हुई कि आप ब्रह्म हैं। नहीं, कोई शब्द वहां नहीं मिलते, कोई उत्तर वहां नहीं मिलता लेकिन, वह मिल जाता है जो उत्तर है। उत्तर नहीं मिलता वही मिल जाता है जिसको हम पूछ रहे थे कौन? जिससे हम पूछ रहे थे कौन? जो पूछ रहा था कौन? वही मिल जाता है और जब वह द्वार पर ही मिल जाता है तब आप अवाक, मौन, और

चुप हो जाते हैं। सब शांत हो जाता है। उस क्षण में आप जानते हैं तब कोई प्रश्न नहीं होता, न कोई उत्तर होता तब ज्ञान होता है जहां सब प्रश्न और उत्तर बंद हो जाते हैं।
अब ध्यान रहे, भीतर जाने की दो ही संभावनाएं हैं, या तो उत्तर को पकड़
कर भीतर जाएं या प्रश्न को पकड़ कर भीतर जाएं। इसको थोड़ा समझ लेना जरूरी है क्योंकि मैं तीसरे चरण में किसी उत्तर का उपयोग नहीं करता, प्रश्न का उपयोग करता हूं। अगर आप उत्तर का उपयोग करेंगे तो हजारों साल लग जाएंगे और भीतर नहीं पहुंच सकते। क्यों? क्योंकि उत्तर बाहर से आता है और भीतर नहीं ले जाता। और उत्तर तृप्त करता है और तृप्ति सदा रुकावट बनती है। और उत्तर निश्चिंत कर देता है। निश्चिंत आदमी खोज पर नहीं निकलता। उत्तर समाप्त कर देता है जिज्ञासा को। उत्तर में वह क्वेश्चन मार्क, वह प्रश्न-चिह्न नहीं है जो कहे, आगे खोजो। उत्तर कहता है, मिल गया। अहं-ब्रह्मास्मि। अब बैठो, अब कहां जाते हो? अब पैरों को क्यों थकाते हो? अब आराम करो। फिर आदमी वहीं बेसुरा एक ही सुर लेकर बैठ जाता है।
मैंने एक संगीतज्ञ के संबंध में सुना है, पता नहीं आप उसको संगीतज्ञ मानेंगे या नहीं मानेंगे उसकी पत्नी, खैर, नहीं मानती थी। उसके पड़ोसी भी नहीं मानते थे। वह एक वाद्य बजाता था तारों का और एक ही तार को एक ही जगह पकड़ कर रगड़ता रहता था घंटों तक, और एक ही स्वर उठता था, और एक ही स्वर जब बार-बार उठे तो बेसुरा हो जाता है। उसकी पत्नी ने बहुत हाथ-पैर जोड़े कि तुम यह क्या कर रहे हो, मैंने औरों को भी वाद्य बजाते देखा लेकिन ऐसा कभी नहीं देखा कि एक ही तार को एक ही जगह पकड़ कर घंटों तक रगड़े जा रहे हैं। इसमें तो प्राण भी कोई चरमराने लगते हैं। आस-पास के लोग पुलिस में रिपोर्ट कर चुके हैं। कुछ लोग बंदूक खरीदने के लिए लाइसेंस खोज रहे हैं। इसको तुम बंद करो। लेकिन उस आदमी ने कहा कि पागल, तुझे पता नहीं। वे जो लोग तारों पर इधर-उधर हाथ चलाते हैं उनको अभी ठीक जगह मिली नहीं, मुझे ठीक जगह मिल गई है, मैं उसी को बजाता हूं। वह ठीक जगह खोज रहे हैं, जब मिल जाएगी तो रुक जाएंगे। हमें मिल गई है हम रुक गए हैं। जिनको उत्तर मिल गए हैं बाहर से वे ऐसे ही बेसुरा बजाते रहते हैं। अहं-ब्रह्मास्मि। अहं-ब्रह्मास्मि। अहं-ब्रह्मास्मि। उत्तर से कोई यात्रा नहीं होती। जिसको खयाल आ गया कि मिल गया, वह रुक जाता है। खोज वहां हैं जहां इस बात का पता है कि नहीं मिला है। खोज वहां है जहां इस बात का पता है कि अभी खोजना है। खोज वहां है जहां इस बात का पता है कि सवाल नहीं, कोई जवाब नहीं है इस सवाल का। सिर्फ सवाल है और जवाब मुझे, मुझे ही जानना है, खोदना है, इसलिए तीसरे चरण में उत्तर नहीं है। नहीं तो आपको कह सकता हूं कि तीसरे चरण में दोहराएं कि मैं ब्रह्म हूं, परमात्मा हूं, नहीं, तीसरे चरण में पूछना है कि मैं कौन हूं? इतनी तीव्रता से पूछना है कि आप पूछने वाले ही न रह जाएं। पूछना ही बन जाएं। इतनी त्वरा से पूछना है कि यह एक क्वेश्चन न रह जाए और आप अलग न रह जाएं, आप क्वेश्चन ही बन जाएं, आप प्रश्न ही हो जाएं। यह भी सवाल न रहे कि कौन पूछ रहा है, किससे पूछ रहा है सिर्फ पूछना ही शेष रह जाए।
तो इन तीस मिनट में वह घटना घट सकती है, जिस घटना को वर्षों तक में घटाना बहुत मुश्किल है। और घटती है। और मैं यह सैकड़ों लोगों के अनुभव से कह रहा हूं कि घटना घटती है और मैं आपसे कहूंगा कि मेरी बात न मानें। घटना घटा कर देखें। बात मानने की कोई भी जरूरत नहीं। हाइपोथेटिकल मान लें कि यह आदमी कहता है शायद हो, करके देखें। लेकिन जो मैं कह रहा हूं उसे पूरा कर लें तभी आप निर्णय कर पाएंगे कि सच में घटना घटती है या नहीं घटती। मैं आपसे कहता हूं कि आएं मेरी खिड़की पर और देखें सूरज निकला है, मैं नहीं कहता कि आप विश्वास करके आएं। मैं कहता हूं कि सिर्फ खिड़की पर एक बार आएं। पूरे अविश्वास से भरे आएं लेकिन खिड़की पर तो आएं। खिड़की से आ कर देख लें और अगर सूरज दिखाई पड़ जाए तब क्या आप मुझसे कहेंगे कि पहले के ऋषि-मुनि तो हजारों साल बैलगाड़ी में यात्रा करते थे, तब सूरज के दर्शन होते थे। इतनी सरलता से कैसे हो सकता है? कर लें। फिर भी पूछेंगे कि कैसे हो सकता है? परमात्मा दूर नहीं है। हमारी शक्ति, हमारे साधन का सवाल है कि वह कैसा है? हम कैसी क्रिया से उस तक पहुंचते हैं?

मैंने सुना है, एक आदमी दिल्ली के पास जोर से भागा जा रहा था। रास्ते
के किनारे बैठे एक ग्रामीण बूढ़े से उसने पूछा कि बाबा, दिल्ली कितनी दूर है? उसने कहा कि दो बातों पर निर्भर करता है। पहला तो यह कि मैं जान लूं कि तुम किस तरफ जा रहे हो? जिस तरफ जा रहे हो अगर उसी तरफ जाते हो तो दिल्ली उतनी दूर है जितनी कोई चीज दूर हो सकती है क्योंकि पूरी जमीन का चक्कर लगाओगे तब दिल्ली आएगी, क्योंकि दिल्ली पीछे की तरफ है आठ मील। लेकिन पीछे की तरफ। अब आप किस तरफ जा रहे हैं, यह उस पर निर्भर करता है। अगर आप ऐसी जाने की जिद्द किए हैं तो जाएं, सारी जमीन का चक्कर लगा कर आप आएंगे और ध्यान रखना, जरा भी चक्कर इधर-उधर टेढ़ा-मेढ़ा हुआ कि पक्का नहीं है कि दिल्ली आएगी कि नहीं आएगी। भटक भी सकते हैं। और उस बूढ़े ने कहा कि दूसरा, जरा चल कर बताइए कि चाल की गति कितनी है? तब जरा मैं अंदाज करके बताऊं कि दिल्ली कितनी दूर है क्योंकि दिल्ली की दूरी चलने वाले के चलने पर निर्भर होगी। दिल्ली की दूरी कोई फिक्सड चीज नहीं है, पैदल चलिएगा, बैलगाड़ी से चलिएगा, दौड़ के जाइएगा, सरकते हुए जाइएगा, बैठते हुए जाइएगा, इरादा क्या है? जरा चाल दिखाइए। उस आदमी ने कहा कि गजब के आदमी हो अब तक तो मैंने बहुत से लोगों से पूछा कि कौन सी चीज कितनी दूर है? लेकिन इतने सवाल मुझसे किसी ने नहीं पूछे थे। उस बूढ़े ने कहा कि मैं ठीक ही जवाब देना पसंद करता हूं अन्यथा पसंद ही नहीं करता। स्वभावतः दिल्ली की दूरी जैसी कोई निश्चित चीज नहीं है। बहुत सी चीजों पर निर्भर है कि दिल्ली कितनी दूर होगी। इस पर निर्भर है कि आप कितना चलते हैं, कैसा चलते हैं, चलते भी हैं कि नहीं चलते। अन्यथा दिल्ली अगर आठ मील दूर है और एक आदमी खड़ा ही रहे तो हो सकता है कि जो आदमी दिल्ली को सारी दुनिया का चक्कर लगा कर आया वह भी पहुंच जाए और यह खड़ा हुआ आदमी न पहुंच पाए। अगर आपकी चाल चींटी की चाल या कई लोग बड़ी उलटी चाल चलते हैं उनकी चाल का पता लगाना मुश्किल है कि वे कैसी चाल चलते हैं। मैंने सुना है कि एक स्कूल में एक बच्चा बहुत देर से पहुंचा और उसके शिक्षक ने कहा कि इतनी लेट! तो उस बच्चे ने कहा कि आप देखते नहीं कि बाहर वर्षा हो रही है और सड़कों पर इतनी कीचड़ हो गई कि मैं एक कदम चलता था तो दो पैर पीछे खिसक जाता था, बहुत मुश्किल से आ पाया। उसके गुरु ने कहा कि चलो यह मैं समझ गया कि तुम एक कदम चलते थे तो दो कदम पीछे सरक जाते थे। फिर तुम पहुंचे कैसे? क्योंकि जो एक कदम चलेगा और दो कदम पीछे सरकेगा। तुम यहां पहुंचे कैसे? उस लड़के ने कहाः मैंने अपनी घर की तरफ चलना शुरू कर दिया और स्कूल की तरफ तेजी से आ गया। अब इस पर निर्भर करता है कि आप कैसे चलते हैं। और धार्मिक आदमियों की चाल बहुत आड़ी-तिरछी होती है। और धार्मिक आदमी अक्सर ऐसे चलते हैं कि एक कदम चलते हैं और दो कदम फिसलते हैं। अगर यही उनकी चाल का ढंग है तो वे परमात्मा तक वह कभी भी न पहुंच पाएंगे। किसी जन्म में पहुंचना नहीं हो पाएगा। सवाल है कैसे चलते हैं?
मैंने जो प्रक्रिया आपसे कही, वह प्रक्रिया बहुत वैज्ञानिक, बहुत संक्षिप्त, बहुत सीधी है। सिर्फ आप जरा थोड़े से सीधे हों तो काम हो सकता है। और तीन चरणों के बाद दस मिनट सिर्फ प्रतीक्षा है। हम और कुछ कर भी नहीं सकते। आदमी परमात्मा के लिए अपने को खुला छोड़ दे। प्रतीक्षा ही कर सकता है और क्या कर सकता है। उसे हम खींच कर ला सकते हैं? उसे हम खींच कर कैसे ला सकते हैं? उसे हम मुट्ठी में बांध सकते हैं? उसे हम मुट्ठी में कैसे बांध सकते हैं? ज्यादा से ज्यादा निमंत्रण भेज सकते हैं कि आओ और प्रतीक्षा कर सकते हैं। दरवाजे के बाहर सूरज निकला है, हम अपना दरवाजा खुला छोड़ सकते हैं और सूरज से कह सकते हैं, इधर आओ, ला नहीं सकते। दरवाजा खुला होता है, तो सूरज आ जाता है। पर बड़े मजे की बात है, इसे खयाल में ले लेना। सूरज को हम भीतर तो नहीं ला सकते, लेकिन बाहर ही रोक जरूर सकते हैं। दरवाजा बंद कर दें। और दरवाजा बंद करना भी बहुत बड़ी बात है। एक बहुत छोटा, जेब में रखा हुआ दरवाजा हमारे पास है, हमारी आंखें। दरवाजा खुला हो, हम आंख बंद कर लें, सूरज क्या करेगा? ये छोटी सी दो पलकें बंद हो जाएं तो सूरज कुछ भी नहीं कर सकता। हम रोक सकते हैं, निगेटिव फोर्स हमारे पास बहुत है। नकारात्मक रूप से हम परमात्मा को रोक सकते हैं लेकिन विधायक रूप से बुला नहीं सकते। फिर क्या कर सकते हैं? एक ही काम कर सकते हैं। हमारी जो नकारात्मक व्यवस्था है उसको तोड़ दें। नग्न, शून्य, द्वार खुला रह जाए और हम प्रतीक्षा करें।

प्रतीक्षा को मैं प्रार्थना कहता हूं। ऐसी प्रतीक्षा को जो अनंत काल तक बिना अंधेरे के राह देखने को तैयार है।
चौथा दस मिनट का जो चरण है वह सिर्फ प्रतीक्षा का, जस्ट अवेटिंग। नहीं, हमें पक्का पता नहीं है कि वह कौन है जो आएगा। मेहमान को हमने कभी देखा नहीं है। लेकिन फिर भी हम अपने द्वार पर बैठे हैं कि मेहमान आएगा। अपरिचित, अनजान, लेकिन उसके दूर पगों की ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। अगर तीन चरण पूरे किए तो उसकी पग ध्वनि सुनाई पड़ने लगती है। अगर तीन चरण पूरे किए तो उसकी रोशनी की किरणें आनी शुरू हो जाती हैं। अगर तीन चरण पूरे किए तो उसकी सुगंध उतरने लगती है, अगर तीन चरण पूरे किए तो उसके वाद्य बजने लगते हैं, उसकी खबर आने लगती है। हम प्रतीक्षा कर सकते हैं, द्वार खोल कर। और जो आदमी भी पूर्ण प्रतीक्षा से भर जाए...
पूर्ण प्रतीक्षा का मतलब यह होता है कि पूर्ण शून्य। पूर्ण प्रतीक्षा
का मतलब होता हैः पूर्ण सन्नाटा। पूर्ण प्रतीक्षा का मतलब होता है कि मेरी प्रतीक्षा करने की इच्छा भी बीच में न आ जाए, अन्यथा वह भी बाधा डालेगी। पूर्ण प्रतीक्षा का मतलब हैः सर्वांग शून्यता, शीयर एंप्टीनेस। और उन दस मिनटों में अगर पूरी शून्यता में राह देख सकें तो जरूर वह आ जाता है जिसकी तलाश है, जरूर हमें उसका पता चल जाता है जिसकी खोज है। लेकिन अगर आपके रास्ते चलने के और हैं, आपके ढंग और हैं, आप एक कदम चलते हों, दो कदम पीछे फिसलते हैं और कहते हैं कि संसार में कीचड़ मची है, कर भी क्या सकते हैं? माया जाल फैला है। तो उन मित्र ने पूछा है कि गुफाओं में बैठ कर करते थे। जरूर करते थे गुफाओं में बैठ कर। गुफाओं में बैठने का कारण था। गुफाओं में बैठने का कारण सिर्फ इतना ही था कि जो साधन थे उनके पास वे ऐसे नहीं थे कि भीड़-भाड़ में बैठ कर करना आसान हो जाए। आज स्थिति बिल्कुल बदल गई है। आज हम भीड़-भाड़ में बैठ कर भी कर सकते हैं। और गुफाओं में बैठ कर करते थे जरूर क्योंकि आज से दो हजार, तीन हजार, चार हजार साल पहले जो भी उपलब्ध था ज्ञान, वह सारा ज्ञान यह मानता था कि जब तक समाज छोड़ कर न भागा जाए तब तक परमात्मा नहीं पाया जा सकता। शायद जो लोग छोड़ कर भाग गए थे और उन्होंने पाया था, उनके प्रभाव में यह धारा बन गई। लेकिन मैं आपसे कहता हूं कि जो जहां है वहीं रह कर परमात्मा को पाया जा सकता है।
असल में कठिनाई क्या है? कठिनाई ऐसी है कि मैंने सुना है कि एक आदमी को अमरीका में एक बात सिद्ध करनी थी। उसे सिद्ध करना था कि तेरह नंबर, तेरह का आंकड़ा, तेरह की संख्या अपशगुन क्यों है? उस आदमी ने क्या किया? उस आदमी ने जाकर हस्पताल में पता लगाया कि तेरह तारीख को भर्ती होने वाले कितने मरीज मर जाते हैं। मिल गए बहुत मरीज। बारह तारीख को भी मिल जाते हैं। ग्यारह को भी मिल जाते हैं। अस्पताल में मरते ही रहते हैं। लेकिन उसनें तेरह तारीख को कितने मरीज मरते हैं वह हिसाब लगाया। उसने पुलिस के दफ्तर में जाकर पूछा कि तेरह तारीख को कितनी हत्याएं हुईं। उसने मनोवैज्ञानिकों से पूछा कि तेरह तारीख को कितने लोग आत्महत्या करने को उत्सुक रहते हैं। उसने जेलों में जाकर पता लगाया कि तेरह तारीख को कितने लोग जेल में आकर सजा काटना शुरू करते हैं। उसने अदालतों में पता लगाया कि तेरह तारीख को कितने लोगों को दंड होता है। उसने सड़कों पर म्यनिसिपेलिटी से पूछा कि तेरह तारीख को कितने एक्सीडेंट होते हैं। उसने तेरह तारीख को जितना बुरा होता है, वह सारी दुनिया का इकट्ठा कर लिया। फिर उसने एक बड़ी किताब लिखी। वह किताब आप पढ़ेंगे तो फिर आप तेरह तारीख से नहीं बच सकते। फिर आप मरे। उस किताब को पढ़ कर अमरीका की बहुत सी होटलों ने तेरह नंबर के कमरे ड्राप कर दिए, तेरह नंबर का कमरा खत्म कर दिया। बाहर के बाद सीधा चौदह आ जाता है। तेरह नंबर की मंजिल खत्म कर दी, थर्टींथ फ्लोर खत्म हो गया। बारह फ्लोर के बाद सीधा चौदहवां फ्लोर। बारह फ्लोर के बाद सीधा तेरहवां फ्लोर पर कोई रहने को राजी नहीं। तेरहवें कमरे में जाने को कोई राजी नहीं। स्वभावतः अगर वह आदमी बारह तारीख के पक्ष में ऐसा काम करे तो यह भी हो जाए। जिंदगी बहुत बड़ी है। असल में हुआ क्या है कि आज से तीन-चार हजार वर्ष पहले जिन लोगों ने समाज छोड़ कर जो लोग भागे उन लोगों को ईश्वर का अनुभव हुआ। उन सारे लोगों ने समझा कि समाज छोड़ कर भागना ही ईश्वर के अनुभव के लिए जरूरी है। यह तेरह तारीख वाला मामला है क्योंकि यह भागे हुए लोग कह रहे हैं। लेकिन अब,

अब इस बात को कहा जा सकता है कि जिंदगी में वैसे भी लोगों को ईश्वर का अनुभव हुआ है। और एक को हुआ है तो दूसरे को भी हो सकता है।
असल में ईश्वर के अनुभव का कोई संबंध, जंगल की गुफा और घर के कमरे से नहीं है। ईश्वर को अनुभव करने का संबंध मेरी मनोदशा से है। अब हो सकता है किसी की मनोदशा, वैसी मनो-दशा गुफा में उपलब्ध होती है, वह बड़े मजे से अपनी गुफा में जाएं। लेकिन हो सकता है किसी को वैसी मनोदशा गुफा में उपलब्ध हो ही न सके। वैसी मनो-दशा ठीक अपने घर में भी उपलब्ध हो सकती है। वह अपने घर में पाए। ईश्वर के लिए कोई भी अनिवार्य कंडीशन नहीं है। ईश्वर के लिए कोई भी अनिवार्य शर्तें नहीं हैं। लेकिन अक्सर ऐसी भूल हो जाती है। अगर कोई आदमी सफेद कपड़े पहने हुए ईश्वर को पा ले, तो शायद उसे खयाल हो कि सफेद कपड़े पहनना ईश्वर को पाने की अनिवार्य शर्त है।
मैने सुना है कि अमरीका के एक छोटे से गांव में, एक पहाड़ी गांव में दो आदमियों का जन्म-दिन एक ही दिन पड़ा। दोनों ग्रामीण। गांव के लोगों ने कहा कि दोनों का जन्म-दिन एक ही दिन पड़ा, इन दोनों के स्वागत में हम कुछ इंतजाम करें। वे दोनों पचहत्तर वर्ष के हो गए थे। अब उनके विदा होने का क्षण भी था, उनके स्वागत में कुछ करना चाहिए। गांव वालों ने बहुत सिर लगाया। दो- चार दिन तक सोच-विचार चला, फिर जो सबसे बड़ी बात जो वे खोज पाए यह वह थी कि उन दिनों पहले-पहल रेलगाड़ी पहाड़ी के नीचे से निकली थी। तो गांव के लोगों ने कहाः गरीब से लोग थे, कि हम दो टिकटें खरीद लें और ये दोनों राजधानी तक ट्रेन में घूम आएं। इससे बढ़िया और क्या हो सकता था! ट्रेन में कोई गया भी नहीं था उस गांव में अब तक। यही पहले दो आदमी होंगे। गांव वालों ने पैसे इकट्ठे करके दो टिकटें उन्हें दे दीं। उन्हें जाकर स्टेशन पर ट्रेन में बिठाया। बड़ा स्वागत-समारोह से उनको गाड़ी में बिठाया गया। कुछ जेब खर्च के लिए पैसे भी दिए, आने-जाने के लिए, रास्ते में कुछ खाएंगे-पीएंगे, उसके लिए।
वे दोनों बूढ़े बिल्कुल बूढ़े नहीं रह गए थे, इतने जवान, इतने प्रफुल्लित थे, इतने बच्चे जैसे थे उस दिन। ऐसी घटना घट रही थी! ट्रेन में बैठ कर उन्होंने चारों तरफ देखना शुरू किया कि क्या-क्या है? कोई कुछ बेचने आया, कोई कुछ बेचने आया, और तब एक सोडा पॉप, कोई सोडा बेचने आया। उन दोनों बूढ़ों ने एक-दूसरे के तरफ आंख मिचका कर देखा कि जरूर इसमें कुछ राज होना चाहिए। बोतल, उन्होंने सिर्फ शराब की बोतल ही जानी थी। फिर किसी आदमी ने सोडा लेकर पीआ। तो उन्होंने कहा कि एक सोडा हम भी लेकर पीएं। लेकिन कहीं ज्यादा नशा न आ जाए, तो एक ही लें; आधा मैं पीऊं और आधा तुम पी लो। पहले अनुभव भी कर लें, तो फिर ज्यादा जरूरत होगी तो ज्यादा पी लेंगे। सोडा उन्होंने लिया। आधा सोडा एक आदमी ने पीआ, जब वह आदमी पी ही पाया था तभी ट्रेन एक टनल में, एक बोगदे में प्रविष्ट हुई, एकदम घनघोर अंधेरा छा गया। दूसरे आदमी ने कहा कि जल्दी करो भाई, पूरा मत पी जाना। पहले बूढ़े ने कहा कि भूल कर भी इस चीज को मत छूना। आई हैव बीन स्ट्रक ब्लाइंड। भूल कर भी मत छूना इस चीज को, मैं अंधा हो गया हूं। अच्छा ही हुआ कि मैंने ही पीआ तूने नहीं पीआ। मेरा तो कोई आगे-पीछे नहीं है, लेकिन तेरे तो बच्चे हैं, पत्नी है, सब हैं।